"प्रो. (डॉ.) तारा शंकर शर्मा 'पाण्डेय' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन"

Prof. (Dr.) Tara Shankar Sharma 'Panday' ki Kritiyon ka Shamikshatmak Adhyan

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच.डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी

प्रियंका शर्मा

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. (श्रीमती) उमा त्रिपाठी

संस्कृत विभाग

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

वर्ष 2019

प्रमाण–पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता है कि शोध–प्रबन्ध **"प्रो. (डॉ.) तारा शंकर शर्मा 'पाण्डेय' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन"** शोधार्थी प्रियंका शर्मा ने कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच.डी. के नियमों के अनुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ पूर्ण किया है–

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्स वर्क किया है।
2. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूर्ण किया है।
3. शोधार्थी ने नियमित रूप से अपना कार्य प्रगति प्रतिवेदन दिया है।
4. शोधार्थी ने विभाग एवं संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी को बताई गई शोध पत्रिका में शोध–पत्र का प्रकाशन हुआ है।

मैं इस शोध–प्रबंध को कोटा विश्वविद्यालय कोटा की पीएच.डी. (संस्कृत) की उपाधि हेतु मूल्याङ्कनार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति देती हूँ।

दिनांक :

हस्ताक्षर शोध पर्यवेक्षक

डॉ. (श्रीमती) उमा त्रिपाठी

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that PhD Thesis Titled **"प्रो. (डॉ.) तारा शंकर शर्मा 'पाण्डेय' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन"** by **Priyanka Sharma** has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.
b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of others have been presented as author's own work.
c. There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.
d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment of processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented inthe research record.
e. The thesis has been checked using Plagiarism checker plagiarismchecker.com, and found within limits as per HEC plagiarism Policy and instructions issued from time to time.

(Name & Signature of Research Scholar)	**(Name & Signature and Seal)**
Priyanka Sharma	**Dr. (Smt.) Uma Tripathi**
	Research Supervisor
Place :	Place :
Date :	Date :

शोध सार

विश्व वाङ्मय में संस्कृत साहित्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, पुराण, रामायण, महाभारत अन्यान्य सभी शास्त्र तथा सभी दृश्य एवं श्रव्य काव्यों की परिगणना होती है। संस्कृत साहित्य की कलेवर वृद्धि करने में वाल्मिकी एवं व्यास के पश्चात् कालिदास, भवभूति, अश्वघोष, बाणभट्ट, भारवि, महाकवि माघ, श्रीहर्ष, भास आदि कवियों का योगदान रहा।

आधुनिक कवियों ने संस्कृत भाषा को समृद्ध किया है उनमें डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, डॉ. रेवा प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रमाकान्त शुक्ल, डॉ. कृष्ण सेमवाल, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, आचार्य बलदेव उपाध्याय, आचार्य विजेन्द्र नाथ शास्त्र, डॉ. वीरेन्द्र कुमार अलंकार आदि गणनीय विद्वान् है।

राजस्थान में भी विशाल संस्कृत साहित्य लिखा गया है। राजस्थान के कवि विभूतियों में विद्वत् शिरोमणि पं. मधुसूदन ओझा, पं. मोतीलाल शास्त्री, पं. मोहनलाल पाण्डेय, विद्याधर शास्त्री, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री आदि ने वैविध्यपूर्ण रचनाओं का सृजन कर राजस्थान का गौरव बढ़ाया है। डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' भी इस नवीन रूप में प्रवाहित संस्कृत साहित्य रूपी अलकनन्दा के प्रवीण चितेरे कवि है।

प्रथम अध्याय में डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का परिचय (व्यक्तित्व व कृतित्व) है। अपराकाशी जयपुर में 05 अगस्त 1957 को जन्में डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' लब्ध राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त पं. मोहनलाल शर्मा 'पाण्डेय' के सुपुत्र है जो कि स्वयं भी संस्कृत के विद्वत् कवि है। डॉ. पाण्डेय ने विद्यार्थी जीवन में स्वयं को मेधावी, परिश्रमी, प्रतिभावान छात्र के रूप में प्रस्तुत किया। छात्रावस्था में ही आपने अनुष्टुप पद्य की रचना कर स्वजनों को आह्लादित किया है। डॉ. पाण्डेय का अनेक शोध पत्रों में योगदान रहा है। डॉ. पाण्डेय ने विभिन्न संस्थाओं द्वारा आयोजित काव्य गोष्ठियों में भाग लेकर संस्कृत साहित्य में अपनी सहयोगिता प्रदान की है।

द्वितीय अध्याय में संस्कृत साहित्य में पद्य गद्य व रूपक साहित्य का उद्भव तथा विकास है। संस्कृत साहित्य अपनी विविधता, समृद्धि, सक्रियता, विशिष्टता, सार्वभौमिकता, उपलब्धि आदि सभी दृष्टि से अनुपम है। आधुनिक कवि डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने अपनी कृति 'सारस्वतसौरभम्' में 42 मुक्तक कविताओं का संग्रह किया है। जहाँ एक ओर प्रत्येक मुक्तक अपने आपमें स्वतन्त्र

तथा पूर्ण है। छन्दों तथा अलंकारों में निबद्ध है। वहीं दूसरी ओर कुछ मुक्तक कविताएँ नवीन विधा का समर्थन करते हुए छन्दोमुक्त है। इस संग्रह ग्रन्थ में कवि ने वर्तमान समय में सहृदयों को प्रिय लगने वाली विविध समसामयिक विषयों पर लिखी गई मुक्तक कविताओं का संकलन किया है।

तृतीय अध्याय में डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' विरचित कृतियों का अध्ययन है। डॉ. पाण्डेय ने संस्कृत नाट्य प्रणेता–पं. हरिजीवन मिश्र की नाट्य कृतियों का समीक्षात्मक व समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। पं. हरिजीवन मिश्र आधुनिक काल के भास कहलाते हैं। इनके सभी रूपकों में मनोरंजन के साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश है। 'सारस्वतसौरभम्' में डॉ. पाण्डेय ने कथा, आलेख, नाटक एवं विभिन्न मुक्तक काव्यों का संग्रह प्रकाशित किया है। इसमें कवि ने न केवल स्तुति व प्रकृति से सम्बन्धित विषयों का समावेश किया है अपितु वर्तमान समाज व राष्ट्र में व्याप्त समसामयिक विषयों पर भी कवि ने अत्यन्त सफलतापूर्वक लेखनी चलाकर भावपक्ष को पुष्ट किया है। डॉ. पाण्डेय ने 'वृक्षरक्षणम्' में कहा है कि पर्यावरणीय संतुलन में वृक्षों की महत्ती भूमिका होती है। 'वृक्षरक्षणम्' डॉ. पाण्डेय कृत उत्तराखण्ड संस्कृत संस्थान व दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा राष्ट्र राष्ट्रीय स्तर पर प्रथमतया पुरस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत लघुनाटक है। इसमें कवि ने महात्मा गौतम बुद्ध द्वारा स्वाभाविक रूप से की गई हंस रक्षा की घटना को प्रस्तुत किया है। 'राष्ट्ररक्षणम्' डॉ. पाण्डेय कृत पुरस्कृत लघु नाटक है। 'राष्ट्ररक्षणम्' का कथानक राजस्थान का ऐतिहासिक पृष्ठ है। इसमें इतिहास प्रसिद्ध मेदपाटाधिपति महाराणा प्रताप के जीवनवृत्त की उस साहसिकता का परिचय दिया है, जिस पर समस्त राष्ट्र का शिर गौरवान्वित है।

चतुर्थ अध्याय में डॉ. पाण्डेय की कृतियों का साहित्यिक अध्ययन (रस, गुण, रीति, अलंकार, छन्द) है। डॉ. पाण्डेय ने अपनी कृतियों में वीर रस, करुण रस, शृंगार रस आदि रसों का वर्णन करते रति विषयक भाव या भक्ति भाव को प्रधानता दी है। कवि समसामयिक समस्याओं से व्यथित जान पड़ते है। अतः उन्होंने अपने शोक भाव को प्रकट करने के लिए करुण रस का प्रयोग किया है। डॉ. पाण्डेय की कृतियों में प्रसाद गुण सर्वाधिक रूचिकर गुण के रूप में उभर कर सामने आता है परन्तु जहाँ कहीं भी शृंगार या करुण रस की अभिव्यक्ति हुई है वहाँ प्रसंगानुकूल भाषा में माधुर्य गुण का समावेश हुआ है। जहाँ राष्ट्रप्रेम की भावना व्यक्त हुई है वहाँ वीर रस का प्राधान्य होने के कारण यत्र–तत्र ओजगुण भी दिखलाई देता है। डॉ. पाण्डेय ने वैदर्भी रीति को ही अपने मुक्तकों में प्रधानता दी है। कवि की रूचि वैदर्भी रीति युक्त पदों की संघटना में ही अधिक दिखलाई पड़ती है। डॉ. पाण्डेय ने अपने गद्यपद्यनाट्यसंग्रह 'सारस्वतसौरभम्' में बिना प्रयत्न

अनायास प्रयुक्त भिन्न–भिन्न अलंकारों का भावानुरूप सुन्दर प्रयोग किया है। डॉ. पाण्डेय विरचित 'सारस्वतसौरभम्' यद्यपि पूर्णरूपेण छन्दोबद्ध नहीं है। कवि ने इसमें कई छन्दोमुक्त रचनाओं का समावेश किया है।

पंचम अध्याय में डॉ. पाण्डेय की कृतियों का सामाजिक व सांस्कृतिक अध्ययन, सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य को अपनी उत्कृष्ट रचनाओं से संवर्द्धित करने वाले ऐसे महाकवियों की श्रेणी में विद्वत् कवि डॉ. पाण्डेय का स्थान महत्त्वपूर्ण है। डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्', वृक्षरक्षणम्, हंसरक्षणम्, राष्ट्ररक्षणम् कृति में अपनी लेखनी के माध्यम से भारतीय समाज व संस्कृति का जो चित्र खींचा है वह अद्वितीय है। सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत कवि ने भारतीय समाज के विविध पहलुओं का वर्णन करते हुए समाज में व्याप्त विविध समसामयिक समस्याओं का अत्यन्त जीवन्त रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। कवि ने भारतीय संस्कृति के अनुरूप विविध देवों का स्तवन किया है जो उनके सांस्कृतिक अनुराग का द्योतक है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में डॉ. पाण्डेय का भावपक्ष व कलापक्ष की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक संस्कृत कवियों के समान डॉ. पाण्डेय ने भी विविध समसामयिक समस्याओं का उल्लेख करते हुए उनका समीचीन समाधान भी प्रस्तुत किया है। डॉ. पाण्डेय प्रतिभा समृद्ध, गहन–अध्येता, व्याकरण का प्रौढ़ ज्ञान रखने वाले, शास्त्रीय परम्परा से जुड़े हुए किन्तु सामयिक वेदनाओं से संत्रस्त समर्थ कवि एवं लेखक है। अतः डॉ. पाण्डेय का आधुनिक संस्कृत साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

उपसंहार के अन्तर्गत शोध प्रबन्ध सार प्रस्तुत किया गया है।

≈≈≈≈

Candidate Declaration

I hereby certify that the work, which is being presented in this thesis, entitled "प्रो. (डॉ.) तारा शंकर शर्मा 'पाण्डेय' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन" in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of philosophy, carried under the supervision of Dr. Uma Tripathi and submitted to the research center University of Kota, University of kota, kota represents my ideas in my own words and whenever other ideas or words have been included I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted else where for the award any other degree or diploma from any institution.

I also declare that I have adhered to all principles of academics honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/date/fact/source in my submission. I understand that violation of the above will be a cause for disciplinary action by the university and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited from whom proper permission has not been taken when needed.

Date : **Priyanka Sharma**

Place :

This is to certify that the above statement made by Priyanka Sharma (Registration No. ..... is correct to the best of my knowledge

Date : **Dr. (Smt.) Uma Tripathi**

Place : **Supervisor**

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति और उस संस्कृति की प्रवाहिका संस्कृत भाषा अजस्त्र रूप में प्रवाहमान रही है। सम्पूर्ण विश्व संस्कृत भाषा की मधुरता, पवित्रता ज्ञान गौरव और कल्याण भावना से लाभान्वित होता रहा है और आगे भी होता रहेगा। किन्तु विभिन्न देशों में अनेकानेक भाषाएँ विद्यमान है। पर यह सत्य है कि संस्कृत भाषा का अपना ही कुल विलक्षण सौन्दर्य है।

"नियतिकृत नियमरहिता ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्रताम्।
नवरसरूचिरां निर्मितमांदधती भारती कवेर्जयति।।" **'काव्य प्रकाश'**

जो कवि–भारती, नियतिकृत नियमों से रहित केवल आनन्दमयी (कवि भारती) से अन्य की अधीनता से वियुक्त नवरसों से रमणीय काव्य सृष्टि को प्रकट करती है।

कवि काव्य रूपी सृष्टि की रचना करने वाला एक 'प्रजापति' है जिन्होंने इस भौतिक जगत को मधुर, अम्ल, कटु, कषाय, लवण और तिक्त नामक छः रस वाला कहा गया है। ये छः रस सदैव मधुर ही नहीं होते अपितु कटुकषाय रस औषधि रूप में भी असहनीय होते हैं किन्तु कवि की कृति नवरसों से विभुषित एक दिव्य वस्तु है, जो सदैव आनन्ददायी है।

कवि अपनी कृति का निर्माण करके मानवता में आनन्द का संचार करते हुए अनादि काल तक अपनी कीर्ति का प्रकाश फैलाता रहता है। ऐसे महाकवि को अपने जन्ममरण का भय नहीं रहता है, कहा भी गया कि–

"जयन्ति ते सुकृतिनों रसा सिद्धाः कवीश्वरा।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्।।"

विश्व वाङ्मय में संस्कृत साहित्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत वेद, ब्राह्मण, आवश्यक उपनिषद्, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, पुराण, रामायण, महाभारत अन्यान्य सभी शास्त्र तथा सभी दृश्य एवं श्रव्य काव्यों की परिगणना होती है।

संस्कृत साहित्य की कलेवर वृद्धि करने में वाल्मिकी एवं व्यास के पश्चात् कालिदास, भवभूति, अश्वघोष, बाणभट्ट भारवि, महाकवि माघ, श्रीहर्ष, भास आदि कवियों का विशेष योगदान है।

संस्कृत वाङ्मय को समृद्ध करने की यह परम्परा प्राचीनकाल से अभी तक अनवरत चली आ रही है। आधुनिक युग अर्थात् विगत दो शताब्दियों में असंख्य महाकाव्य, नाटक, गीतिकाव्य, मुक्तक काव्य, शतक काव्य, लिखे गये हैं। वर्तमान में अनेकों नवीन विधाओं में रचनाऐं लिखी जा रही है। रेडियो नाटक, आकाशवाणी के रूपक, संस्कृत गीत, छन्दहीन एवं छन्दोबद्ध संस्कृत कविताएँ नए–नए रूप धारण करके सामने आ रही है।

समस्त भारत के आधुनिक कवियों द्वारा केवल काव्य नाटक और गीत ही नहीं अपितु शास्त्रीय ग्रन्थों का निर्माण भी सतत् गति से किया जा रहा है। भारत के जिन प्रख्यात् आधुनिक कवियों ने संस्कृत भाषा को समृद्ध किया है। उनमें डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, डॉ. रमाकान्त शुक्ल, डॉ. श्री कृष्णसेमवाल, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, आचार्य बलदेव उपाध्याय, आचार्य विजेन्द्रनाथ शास्त्र, डॉ. वीरेन्द्र कुमार अलंकार आदि गणनीय विद्वान् है।

राजस्थान में भी विशाल संस्कृत साहित्य लिखा गया है विगत दो शताब्दियों में 300 से अधिक महाकाव्य, असंख्य नाटक, गद्य रचनाएँ ऐतिहासिक काव्य आधुनिक विषयों को लेकर लिखे गए काव्य प्रचुर संख्या में लिखे गए।

राजस्थान के कवि विभूतियों में विद्वत शिरोमणि मधुसूदन ओझा, पं. मोतीलाल शास्त्री, मोहनलाल पाण्डेय आदि विशेष उल्लेखनीय है। पं. विद्याधर शास्त्री, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री आदि ने वैविध्यपूर्ण रचनाओं का सृजन कर राजस्थान का गौरव बढ़ाया है।

पं. श्रीरामदवे, डॉ. हरिराम आचार्य, डॉ. पद्मशास्त्री, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, डॉ. नारायण शास्त्री कांकर, विद्याधर शास्त्री आदि कवियों ने युगानुकूल रचनाएँ लिखकर संस्कृत साहित्य की श्री विधि की है।

जब मेरे समक्ष शोध विषय चयन का प्रश्न उपस्थित हुआ तो मैंने आधुनिक संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान रखने वाले, अपने काव्य सृजन के अमृत से

संस्कृत अनुरागियों को असीम आनन्द प्रदान करने वाले व्यक्तित्व "प्रो. (डॉ.) तारा शंकर शर्मा 'पाण्डेय' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन" को अपने शोध प्रबन्ध का विषय बनाया।

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' लब्ध राष्ट्रपति पुरस्कार पं. श्री मोहन लाल शर्मा 'पाण्डेय' के सुपुत्र है। जो कि स्वयं भी संस्कृत के विद्वत् कवि है। जयपुर में जन्में डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने विविध ग्रन्थों की रचना की है साथ ही अनेक ग्रन्थों का सम्पादन व पत्रिकाओं का सम्पादन कार्य भी किया है। आपको समय–समय पर अनेक पुरस्कारों से भी पुरस्कृत किया जा चुका है। आपकी रचनाओं में 'संस्कृत नाट्य प्रणेता पं. हरिजीवन मिश्र', (समीक्षा प्रबन्ध), 'राष्ट्ररक्षणम्' (पुरस्कृत लघुनाटक), 'हंसरक्षणम्' (पुरस्कृत लघुनाटक) 'वृक्षरक्षणम्' (पुरस्कृत लघुनाटक), सारस्वत–सौरभम्' (गद्य–पद्य नाट्य संग्रह) व 'अहमेव राधा, अहमेव कृष्णः' (संस्कृतानुवाद) आदि प्रमुख है।

मैंने अपने शोध प्रबन्ध के लिए 'प्रो. (डॉ.) ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन' विषय निर्धारित किया है। उपर्युक्त विषय को मैंने पाँच अध्यायों में विभाजित किया, जो इस प्रकार है–

प्रथम अध्याय : डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

द्वितीय अध्यायः संस्कृत साहित्य में पद्य (मुक्तक) गद्य (कथा एवं निबन्ध) व रूपक साहित्य का उद्भव एवं विकास तथा डॉ. पाण्डेय विरचित कृतियाँ।

तृतीय अध्याय : संस्कृत नाट्य प्रणेता–पं. हरिजीवन मिश्र, सारस्वत सौरभम्, राष्ट्ररक्षणम्, हंसरक्षणम् व वृक्षरक्षणम् का परिचयात्मक अध्ययन

चतुर्थ अध्याय : डॉ. पाण्डेय की कृतियों का साहित्यिक अध्ययन

पंचम अध्याय : डॉ. पाण्डेय की कृतियों का सामाजिक व सांस्कृतिक अध्ययन एवं संदेश, सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना

शोध प्रबन्ध के अन्त में उपसंहार व निष्कर्ष है। अन्ततः समापन संदर्भ ग्रन्थ सूची के साथ किया गया है।

अनुसंधान कार्य में प्रवृत्त होने पर सहायक सामग्री की आदि कई समस्याएँ मेरे समक्ष उपस्थित होने लगी परन्तु 'यथाचितं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रिया' इस उक्ति को चरितार्थ करने वाली, अपत्यस्नेहा, मेरी शोध निर्देशिका डॉ. (श्रीमती) उमा त्रिपाठी ने 'वारित्रा' बनकर मुझे इन सभी समस्याओं से उबार लिया, उन्होंने मेरा मार्गदर्शन करके अपने विद्यानुराग तथा स्नेहशीलता का जो परिचय दिया है। उसके लिए मैं आजन्म उनकी चिरऋणी रहूंगी।

मेरे शोध प्रबन्ध की नींव डालने वाले मेरे प्रेरणास्त्रोत अपने मम्मी–पापा को मैं श्रद्धा से नमन करती हूँ तथा अपने समस्त परिवारजनों के प्रति नतमस्तक हूँ। जिन्होंने कभी भी पारिवारिक क्रियाकलापों से मेरे शोधकार्य को बाधित नहीं होने दिया।

अन्त में मैं टंकण कार्य तथा इस शोध–प्रबन्ध को आकार रूप देने के लिए शबनम खान स्टेशन, कोटा को धन्यवाद देती हूँ। जिन्होंने यथा समय पर मेरे इस शोध–प्रबन्ध का टंकण कार्य पूर्ण किया।

संदर्भ ग्रन्थों के विद्वान् लेखकों की भी मैं हृदय से आभारी रहूंगी, जिनके अमूल्य ग्रन्थ रत्न मेरे उपजीव्य बने व सहायक सिद्ध हुए। मेरा यह शोध शोधार्थियों व ज्ञानार्थियों में अमृतरूपी ज्ञान का सिञ्चन करेगा। प्रस्तुत शोध कार्य में निश्चय ही अनेक त्रुटियाँ रह गई होगी। अपेक्षा करती हूँ कि विद्वान् परीक्षक, सुधी सज्जन व जिज्ञासु पाठक मुझसे हुई त्रुटियों की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट करते हुए मुझ अल्पज्ञा शोधार्थिनी को सुझाव देंगे एवं त्रुटियों के लिए क्षमा करेंगे।

शोधार्थी

प्रियंका शर्मा

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ सं.
	शोध सार	**i - iii**
	प्राक्कथन	**iv - vii**
	प्रथम अध्याय	**1–54**
1.0	**डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का व्यक्तित्व एवं कृतित्व**	
1.1	सामान्य परिचय	
1.2	शिक्षा	
1.3	कार्यभार / कर्मक्षेत्र	
1.4	सम्मान एवं पुरस्कार	
1.5	अन्य	
1.6	व्यक्तित्व	
1.7	कृतित्व	
	द्वितीय अध्याय	**55–91**
2.0	**संस्कृत साहित्य में पद्य (मुक्तक), गद्य (कथा एवं निबन्ध) व रूपक साहित्य का उद्भव एवं विकास तथा डॉ. पाण्डेय विरचित कृतियाँ**	
2.1	मुक्तक काव्य का स्वरूप	
2.2.	मुक्तक काव्य का उद्भव और विकास	
2.3	मुक्तक काव्य की परम्परा	
2.4	संस्कृत साहित्य में गद्य कथा व निबन्ध का उद्भव व विकास	
2.5	संस्कृत साहित्य में रूपक का उद्भव एवं विकास	
	सन्दर्भ सूची	
3.0	**नाट्य विधा (नाटक साहित्य)**	**92–172**
3.1	संस्कृत नाट्य प्रणेता पं. हरिजीवन मिश्रः का परिचयात्मक अध्ययन	
3.2	सारस्वतसौरभम् का परिचयात्मक अध्ययन	
3.2.1	स्तुति	
3.2.2	प्रकृतिः	
3.2.3	कालिदासीयम्	
3.2.4	राष्ट्रीयम्	
3.2.5	किं चतुष्कम्	

क्र.सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ सं.
3.2.6	संस्कृतम्	
3.2.7	मौक्तिकम्	
3.2.8	गद्य परिचय	
3.2.9	रूपक परिचय	
3.3	राष्ट्ररक्षणम् का परिचयात्मक अध्ययन	
3.4	हंसरक्षणम् का परिचयात्मक अध्ययन	
3.5	वृक्षरक्षणम् का परिचयात्मक अध्ययन	
	सन्दर्भ सूची	
	चतुर्थ अध्याय	**173–216**
4.0	**डॉ. पाण्डेय की सम्पूर्ण कृतियों का साहित्यिक अध्ययन**	
4.1	रस योजना	
4.2	गुण योजना	
4.3	रीति योजना	
4.4	अलंकार योजना	
4.5	छन्द योजना	
	सन्दर्भ सूची	
	पंचम अध्याय	**217–231**
5.0	**डॉ. पाण्डेय की सम्पूर्ण कृतियों का सामाजिक व सांस्कृतिक अध्ययन एवं संदेश, सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना**	
5.1	सामाजिक व सांस्कृतिक अध्ययन	
5.2	सामाजिक चेतना	
5.3	राष्ट्रीय चेतना	
	सन्दर्भ सूची	
	उपसंहार	**232–238**
	शोध सारांश	**239–251**
	संदर्भ ग्रन्थ सूची	**252–255**
	आधार ग्रन्थ	
	पत्र–पत्रिकाएँ	
	परिशिष्ट	**256–258**
	रिसर्च पेपर	

प्रथम अध्याय

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रथम – अध्याय

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

सतरङ्गे इन्द्रधनुष से सम्मोहक, उदात्त व्यक्तित्व के धनी अनेक संस्कृत कवियों ने वैदिक काल से लेकर अब तक अपने अप्रितम कालजयी काव्यकृतित्व से जीवन्त संस्कृत साहित्य को पल्लवित, पुष्पित तथा सुसमृद्ध बनाकर विश्ववाङ्मय में प्रतिष्ठापित किया है।

महापुरुषों का अवतरण लोक–कल्याण के लिये होता है। जगत् में आकर अपने प्रशंसनीय कार्यों द्वारा वे साधारण प्राणियों से पृथक् अपनी पहचान बनाते हैं, तथा श्रमसाध्य गौरवमय व लोकोत्तर कृत्यों से जगत् को आनन्दित करते हुए कीर्ति प्राप्त करते हैं।

इतिहास के पन्ने उलट कर देखा जाये तो ऐसे अनेक उदाहरण विदित होते हैं, जहाँ अनेक पुरोधाओं ने पंचतत्त्वों से युक्त इस नश्वर शरीर की तुलना यशरूपी शरीर को उत्तम माना है। यथा–

"किमप्यहिंसस्यतववचेन्महतोऽहं यशः शरीर भव में दयालुः
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकपुरुष।।"

भारत में ऐसे अनेक महामहनीय पुरुष है, जिन्होंने अपने ज्ञानचक्षु से सम्पूर्ण मानव समाज को राहे दिखलाई हैं, ऐसे ही एक महामहनीय पुरुष है– डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय'। जिन्होंने संस्कृत के क्षेत्र में अपने अथक परिश्रम एवं उत्कृष्ट प्रयासों द्वारा सृजन कार्य कर उज्ज्वल यश व सफलता प्राप्त की है। काव्य सृजन यश के लिये होता है। कहा भी गया है कि–

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिवृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेश युजे।।"

वस्तुतः संस्कृत एवं संस्कृति के अनन्य उपासक यशस्वी, सुकवि एवं विद्वान् डॉ. पाण्डेय ने वर्तमान में राजस्थान संस्कृत विद्वत् परम्परा में आधुनिक एवं समसामयिक विषयों पर सृजन को नूतन आयाम प्रदान किया है। संस्कृत साहित्य के सुधी समीक्षक शोध कार्य विशेषज्ञ एवं सुपरिचित कवि डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का परिचय निम्न बिन्दुओं से प्रकाशित किया जा सकता है–

1.1 परिचय

डॉ. पाण्डेय का जन्म व पारिवारिक परिचय निम्न बिन्दुओं से जाना जा सकता है–

(i) जन्म (परिचय)–वृत्तान्त

डॉ. तराशंकर शर्मा पाण्डेय का जन्म 05 अगस्त 1957 भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी (ऋषि पञ्चमी) को राष्ट्रपति सम्मानित मनीषी महाकवि पं. मोहनलाल जी शर्मा 'पाण्डेय' की धर्मपत्नी श्रीमती मुन्नी देवी के गर्भ से हुआ। जिस समय डॉ. ताराशंकर शर्मा पाण्डेय का जन्म हुआ उस समय आपके पिता एवं पितामह गालव तीर्थ में श्रावणी कर्म (ऋषि पूजा) कर रहे थे। पौत्र जन्म का समाचार सुनते ही वे अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा आपको 'ऋषि' कहकर सम्बोधित किया।

जिस समय डॉ. ताराशंकर शर्मा पाण्डेय का जन्म हुआ उस समय आपके पिता श्री मोहनलाल शर्मा पाण्डेय गौड़ विप्र विद्यालय, जयपुर में वरिष्ठ शिक्षक के रूप में साहित्यशास्त्र का अध्यापन करा रहे थे। पं. श्री मोहनलाल पाण्डेय ने सुप्रसिद्ध विद्वान् राजव्रसा पं. श्री रामकृष्ण चतुर्वेदी से कर्मकाण्ड एवं पौराहित्य शास्त्र तथा पं. श्री ग्यारसीलाल जी वेदाचार्य से वेद का अध्ययन किया शिक्षक के रूप में कार्य करने से पूर्व पं. मोहनलाल पाण्डेय ने श्री रामकृष्ण चतुर्वेदी के सान्निध्य में पं. श्री शिवदत्त जोशी के साथ अनेक यज्ञों एवं अनुष्ठानों को सम्पादित किया यज्ञानुष्ठानों को सम्पादित करने के कारण शास्त्रानुसार संस्कारों के सम्पादन में पं. श्री मोहनलाल पाण्डेय की प्रगाढ़ आस्था थी फलतः उनका नाम शास्त्रोक्त विधि से ताराशंकर रखते हुए अन्य संस्कार यथा विद्यारम्भ, मुण्डन एवं उपनयन आदि यथासमय पूर्ण वैदिक विधि के अनुसार ही सम्पन्न कराये एवं सुसंस्कारों से संस्कृत डॉ. ताराशंकर शर्मा पाण्डेय की प्रतिभा भी अत्यन्त शीघ्र ही प्रस्फुटित होने लगी डॉ. ताराशंकर शर्मा पाण्डेय पर अपनी पैतृक सम्पदा का पूर्ण प्रभाव है अतः बाल्यकाल से ही संस्कृत विषय के प्रति गहन निष्ठा के कारण डॉ. पाण्डेय देवगिरा संस्कृत के क्षेत्र में आये तथा अपनी बहुमुखी प्रतिभा से उसे पल्लवित, संवर्द्धित, सरस तथा मञ्जुल बनाने में पूर्ण निष्ठा एवं परिश्रम से जुट गये।

(ii) पारिवारिक (परिचय) स्थिति

सम्पूर्ण विश्व में अपनी रचना एवं स्थापत्य कला के लिए सुप्रसिद्ध 'गुलाबी नगर' जयपुर का प्राचीनतम स्थान महर्षि गालव का आश्रम गलतातीर्थ के नाम से जाना जाता है। इस पीठ के महन्तो के प्रत्येक धार्मिक एवं पौरोहित्य कार्य में इनके पूज्य पण्डित (जोशी) पं. गंगाबक्ष शर्मा की प्रधानता रहती थी। इसी गालव तीर्थ के यज्ञकुण्ड नाम के जलाशय में ऋषि पंचमी के शुभ अवसर पर जब पं. गंगाबक्ष जी पौत्र पं. श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा अपने सहयोगियों के साथ सायंकाल 4.30 बजे ऋषि तर्पण कार्यक्रम में व्यस्त थे। तभी अपने यहाँ पौत्र जन्म का समाचार मिला। अकस्मात् ही अतीव हर्षोत्फुल्ल मन से पण्डित जी ने ऋषि पंचमी को जन्म होने से पौत्र का नाम 'ऋषि शंकर' रखा जो कालान्तर में

शिक्षाक्षेत्र में प्रवेश के समय से ताराशंकर के रूप में परिवर्तित हुआ। इनके वंश का परिचय 'नतिति' खण्डकाव्य के अधोलिखित पद्य से स्पष्ट होता है–

"श्रीगंगाबक्षशर्मा जनकगुरुगुरुः कर्मकाण्ड प्रवीणः
जोशी श्वोदत्तशर्मा पितृवरजनको गालवर्षेः सुधाम्नः
पूज्यो दुर्गाप्रसादः पितृवरचरणः सुरजाखया च माता
राजन्तां पूर्वजा में हरिपदरसिकाः कीर्तिशेषाः प्रपूज्याः।।"

पं. दुर्गाप्रसाद जी के ज्येष्ठ पुत्र पं. मोहनलाल शर्मा संस्कृत क्षेत्र में अपना विशेष स्थान रखते हैं। इन्होंने पत्रदूतम् व नतिति खण्डकाव्य व रसकपुरमः (अनूदित) पद्मिनी उपन्यास की रचना कादम्बरी जैसी प्रौढ़ शैली में कर संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया तथा गद्य पद्य में अपनी प्रौढ़ शैली की रचना के आधार पर राष्ट्रपति सम्मान, वाचस्पति पुरस्कार (के.के. बिड़ला फाउन्डेशन, नई दिल्ली) अखिल भारतीय संस्कृत पुरस्कार, माघ पुरस्कार आदि अनेक पुरस्कारों के साथ–साथ शास्त्र महोदधि, विद्यासागर, प्रतिनव बाणभट्ट आदि मानद उपाधियाँ प्राप्त की, इनके वंश का संक्षिप्त पचिय निम्न प्रकार है–

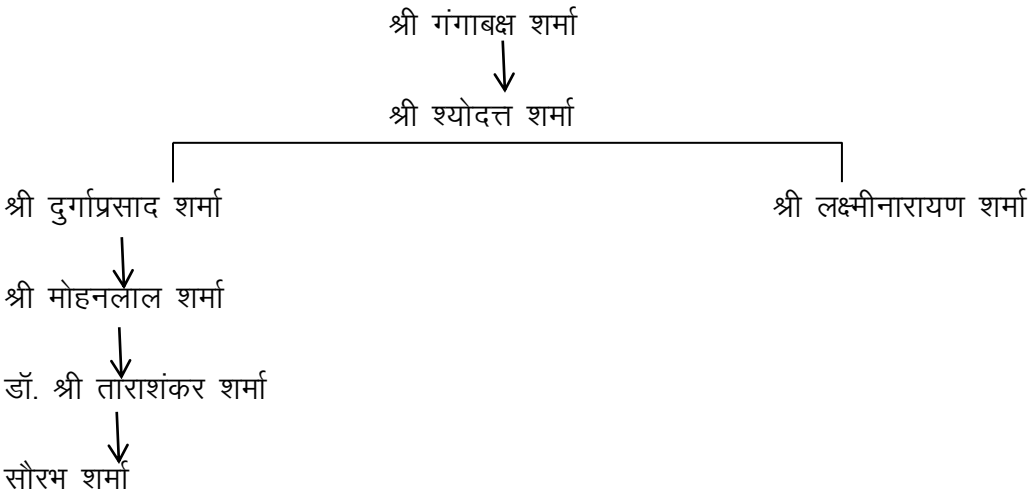

1.2 शिक्षा

ऐसे वंश परम्परागत धार्मिक एवं आस्तिक विचारों से परिपूर्ण संस्कृत वातावरण में पं. मोहनलाल शर्मा के पुत्र रत्न के रूप में 05 अगस्त 1957 को जन्में डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने विद्यार्थी जीवन में स्वयं को मेधावी, परिश्रमी प्रतिभावान छात्र के रूप में प्रस्तुत किया आपकी शिक्षा की नींव आपके पिता श्री मोहनलाल पाण्डेय के सान्निध्य में तैयार की गई। पिता श्री ने बचपन से ही अमरकोष, शब्दरूप, धातुरूप एवं लघुसिद्धान्त कौमुदी के अध्ययन एवं कष्ठाग्रीकरण पर अधिक बल

दिया फलस्वरूप प्रो. पाण्डेय को अनेक शब्दों के विभिन्न अर्थों के निष्पादन में व्युत्पन्नता प्राप्त होने लगी छात्रावस्था में ही आपने अनुष्टुप् पद्य की रचना कर स्वजनों को आह्लादित किया।

उपाध्याय ग्यारहवीं – डॉ. ताराशंकर शर्मा ने अपनी शिक्षा के पारिवारिक संस्कारों के साथ अपना पहला कदम निवास स्थान के समीपस्थ श्री खाण्डल विप्र. उपाध्याय संस्कृत विद्यालय जयपुर में रखा। इस विद्यालय में प्रारम्भिक प्राथमिक शिक्षा के पश्चात् आप अपने पिता के साथ 1967 से लेकर 1971 तक अलवर जिलान्तर्गत कोटकासिम ग्राम गये और वहाँ दो वर्ष तक अध्ययन किया। पिता श्री मोहनलाल शर्मा 'पाण्डेय' के जोधपुर नगरस्थ राजकीय दरबार आचार्य संस्कृत महाविद्यालय में व्याख्याता पद पर स्थानान्तरित हो जाने पर डॉ. शर्मा को भी वहाँ जाना पड़ा और इसी महाविद्यालय के साथ चलने वाले विद्यालय में कक्षा अष्टम् से उपाध्याय (ग्यारहवीं) तक अध्ययन किया। संस्कृत विषय में विशेष योग्यता के साथ आपने साहित्य शास्त्र एवं विशेष हिन्दी वैकल्पिक विषयों से सन् 1975 में उपाध्याय परीक्षा उत्तीर्ण की।

शास्त्री (स्नातक) – विद्यालयीय शिक्षा पूर्ण कर आपने उक्त राजकीय दरबार आचार्य संस्कृत महाविद्यालय में ही अध्ययन करते हुए मुख्य वैकल्पिक विषय साहित्य एवं वैकल्पिक विषय हिन्दी साहित्य तथा अंग्रेजी साहित्य (English Literature) से सन् 1978 में शास्त्री (स्नातक) परीक्षा राजस्थान विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। शास्त्री (स्नातक)

शिक्षा में शास्त्री करते हुए ही रचनाधर्मिता से जुड़े और संस्कृत काव्य की रचना में लग गये।

शास्त्री कक्षा के अन्तिम वर्ष में एक प्रश्नपत्र में कुछ अंकों की रचना करना आवश्यक होता था। इसी अभ्यास पूर्ति के लिए शास्त्री द्वितीय वर्ष में ही रचना करना प्रारम्भ कर दिया। अतः

"विष्णुपादप्रभुता या शिवशिरोविधारिता।
अमृतसदृशक्षीरा लोके गङ्गा विराजते।।"

पद्य की रचना की। इसमें प्रथम पंक्ति के दोनों विशेषण कवि के पौराणिक ज्ञान की ओर संङ्केत करते है। भगवान विष्णु के पादाङ्गुष्ठ से गङ्गा का आविर्भाव होने सम्पूर्ण कथा इस 'विष्णुपादप्रभुता' एक विशेषण में अन्तर्निहित है।

गङ्गा के वेग को कौन धारण करेगा? अन्यथा यह पाताल में प्रविष्ट हो जायेगी, इस स्थिति से बचने के लिए भागीरथ ने शिवजी की तपस्या की और प्रसन्न होकर शिव ने उसे अपने मस्तक पर धारण किया।

यह पौराणिक कथा 'शिवशिरोविधारिता' में अन्तर्निहित है। तृतीय विशेषण 'अमृतसदृशक्षीरा' गङ्गाजल की सातिशय पवित्रता को प्रदर्शित करता है।

स्नातकोत्तर (आचार्य) – जोधपुर में परम्परागत पद्धति की आचार्य (स्नातकोत्तर) कक्षाओं के अध्यापन की व्यवस्था न होने से आप जयपुर आये तथा पितामही सुरजदेवी के साथ रहते हुए जयपुर के सुप्रसिद्ध महाराज संस्कृत कॉलेज में आचार्य कक्षा में साहित्य विषय लेकर अध्ययन किया। वहाँ से पूर्वार्द्ध उत्तीर्ण कर अध्यापन व्यवस्थ सुचारू न होने से आपने जयपुर के मणिहारों के रास्ता स्थित श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर में साहित्याचार्य, उत्तरार्द्ध में प्रवेश लिया। महाविद्यालय के प्राचार्य श्री गुलाबचन्द जैन के निर्देशन एवं साहित्य के प्रोफेसर डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी के सान्निध्य एवं पितृचरण के मार्ग निर्देशन में अध्ययन करते हुए 1980 में साहित्याचार्य परीक्षा में राजस्थान विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते हुए स्पर्ण पदक प्राप्त किया। आचार्य उत्तरार्द्ध परीक्षा में चतुर्थ प्रश्न पत्र के विकल्प रूप में आपने प्रोफेसर त्रिपाठी के निर्देशन में 'पण्डित हरिजीवन मिश्रस्य प्रमुख संस्कृत नाट्यकृतीनां समीक्षात्मकमध्ययनम्' विषय पर लघु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया। साहित्याचार्य की पूर्वार्द्ध परीक्षा में विश्वविद्यालय में सर्वोच्च अंक प्राप्ति के उपलक्ष्य में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, जयपुर द्वारा 27 फरवरी 1980 को मेधावी छात्र अभिनन्दन समारोह जो कि जयपुर के मेडिकल आडिटोरियम में आयोजित हुआ में प्रशस्ति–पत्र प्रदान किया गया। आचार्य उत्तरार्द्ध में अध्ययन के दौरान ही संस्कृत विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा 10 दिसम्बर 1979 को आयोजित कालिदास समारोह के अन्तर्गत आयोजित निबन्ध प्रतियोगिता व शोध पत्र वाचन प्रतियोगिता दोनों ही में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

विद्यावारिधि – वर्ष 2004 में श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय जयपुर में प्रोफेसर डॉ. लल्लन पाण्डेय के निर्देशन में राजस्थान विश्वविद्यालय से विद्यावारिधि (पी.एच.डी.) की उपाधि प्राप्त की जिसमें आपका शोध विषय रहा–

'राष्ट्रपतिसम्मानितं देवर्षि कलानाथ शास्त्रिणां व्यक्तित्व कृतित्व समीक्षा'

इस प्रकार डॉ. पाण्डेय ने अपनी निष्ठा व प्रतिभा से शैक्षिक क्षेत्र में अग्रणी रहते हुए सीढ़ी दर सीढ़ी बहुमुखी सफलता प्राप्त की।

प्राप्तशिक्षोपाधिविवरणम्

क्र.सं.	परीक्षा	वर्षम्	संस्थानम्	श्रेणी	विशेषः
1.	प्रवेशिका (सैकण्डरी)	1974	माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर	द्वितीय	
2.	उपाध्याय (हायर सै.)	1975	माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर	प्रथम	सामान्य संस्कृत विषय में विशेष योग्यता प्राप्त की।
3.	शास्त्री (स्नात्तक) (साहित्य, हिन्दी साहित्य, अंग्रेजी सा.)	1975	राजस्थान विश्व–विद्यालयः जयपुरम्	द्वितीय	
4.	आचार्य (स्नात्तकोत्तर साहित्य)	1980	राजस्थान विश्व–विद्यालयः जयपुरम्	प्रथम	स्वर्णपदक प्राप्त किया।
5.	विद्यावारिधि (Ph.D.)	2004	राजस्थान विश्व–विद्यालयः जयपुरम्		

1.3 कार्यभार / कर्मक्षेत्र

डॉ. पाण्डेय के कार्यभार का विवेचन निम्न बिन्दुओं के माध्यम से सरलता से किया जा सकता है–

(i) शैक्षिक राज्य दायित्व सेवा कार्य

डॉ. ताराशंकर पाण्डेय ने साहित्याचार्य करने के पश्चात् 6 जनवरी 1981 से 12 मई, 1981 तक दादू आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर में ही व्याख्याता पद पर कार्य किया तथा वहीं से राजस्थान लोक सेवा आयोग के माध्यम से व्याख्याता पद पर चयनित हो 10 दिसम्बर, 1981 में प्रथम बार राज्य सेवा में प्रवेश कर राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय चिराणा (झुंझुनूँ) में व्याख्याता पद पर कार्यारम्भ किया तथा 17 जनवरी, 1984 तक वहीं कार्यरत रहे। इसके पश्चात् 18 जनवरी, 1984 से 5 अप्रेल 1988 तक राजकीय शास्त्री संस्कृत कॉलेज, महापुरा, जयपुर में व्याख्याता पद पर कार्य

किया राज्य सेवा में रहते हुए पुनः राजस्थान लोक सेवा आयोग से प्रोफेसर साहित्य पद पर चयनित हो आपने उदयपुर के महाराणा आचार्य संस्कृत महाविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर 06 अप्रेल 1988 को कार्यारम्भ किया तथा विभागीय पदोन्नति के माध्यम से स्नातकोत्तर स्तर के प्राचार्य पद पर प्रौन्नति प्राप्त कर 25 सितम्बर 1999 को राजकीय धूलेश्वर आचार्य संस्कृत महाविद्यालय मनोहरपुर, जयपुर में कार्यारम्भ किया। 'आत्मा वै जायते पुत्रः' उक्ति को चरितार्थ करते हुए वैदुष्य के साथ आपने कुशल प्रशासकीय गुणों से मनोहरपुर के आचार्य महाविद्यालय को सुप्रतिष्ठा प्रदान की। 7 जनवरी 2001 से 23 जुलाई 2002 तक राजकीय महाराणा आचार्य संस्कृत कॉलेज, उदयपुर में प्राचार्य पद पर कार्य किया। ज.रा. राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर में प्रोफेसर, साहित्य विभागाध्यक्ष, कुलानुशासक, प्रभारी अनुसन्धान केन्द्र आदि पर नियुक्त रहते हुए वर्तमान में आप ज.रा. राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय जयपुर में प्रोफेसर, साहित्य विभागाध्यक्ष, कुलानुशासक, प्रभारी अनुसन्धान केन्द्र आदि पर नियुक्त रहते हुए वर्तमान में आप ज.रा. राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय जयपुर में ही 05 दिसम्बर 2005 से प्रोफेसर साहित्य के पद पर नियमित कार्यरत है।

शैक्षिक दायित्व के अन्तर्गत ही आपने आस्था सांस्कृतिक संस्था, जयपुर द्वारा 30–31 जुलाई 2006 को आयोजित राज्यस्तरीय संस्कृत साहित्यकार एवं प्रकाशक सम्मेलन में संयोजक रूप में कार्य किया। ज.रा. राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर के समस्त शैक्षिक विभाग के समन्वयक के रूप में आप 31 अगस्त 2008 से लेकर अधुनातन कार्यरत है। इसी विश्वविद्यारलय द्वारा आयोजित व्याख्यानमाला कार्यक्रम के समन्वयक पद पर आपने 7 मार्च 2007 से 28 मार्च 2007 तक कार्य किया। इसी तरह आपनी योग्यता के कारण ज.रा. राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा आयोजित विविध कार्यक्रमों यथा पर्यावरण कार्यशाला, पुनश्चर्या पाठ्यक्रम व साहित्यिक स्पर्धा आदि में भी समन्वयक के रूप में कार्य किया।

कार्यक्षेत्र विवरणम्

क्र.सं.	धारितपदम्	संस्था	कार्यकालः
1.	व्याख्याता (साहित्य)	दादू आचार्य संस्कृत महाविद्यालयः जयपुरम्	(6/1/1981–12/5/1981)
2.	"	राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालयः चिराणा झुन्झुनु	(10/12/81–17/1/84)

3.	″	राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालयः महापुरा, जयपुरम्	(18/01/84–05/04/88)
4.	प्रोफेसर (साहित्य)	राजकीय महाराणा आचार्य संस्कृत महाविद्यालयः उदयपुरम्	(06/04/88–03/11/92)
5.	″	राजकीय महाराज आचार्य संस्कृत महाविद्यालयः जयपुरम्	(04/11/92–25/09/99)
6.	प्राचार्यः (कार्यवाहक)	राजकीय महाराज आचार्य संस्कृत महाविद्यालयः जयपुरम्	
7.	प्राचार्यः	राजकीय धूलेश्वर आचार्य संस्कृत महाविद्यालयः मनोहरपुर, जयपुरम्	(25/09/99–06/01/2001)
8.	″	राजकीय महाराणा आचार्य संस्कृत महाविद्यालयः उदयपुरम्	(07/01/2001–23/07/2002)
9.	प्राचार्यः	स्नात्तकोत्तर महाविद्यालय	03 वर्षम्
10.	अध्यक्षः	साहित्य विभाग	(13 वर्षम्) 24/07/2002 तो निरन्तरम्
11.	समन्वयकः	समस्त शैक्षणिक विभागः (दो सत्रम्)	(31/08/2006–15/06/2008)
12.	अधिष्ठाताः	शोध	03/11/2003 तः एक वर्षम्
13.	प्रभारी	अनुसंधान केन्द्र	(20/11/04–30/9/2005)
14.	कार्यवाहकः निदेशकश्च	अनुसंधान केन्द्र	(01/10/2005–09/12/2007)
15.	कुलानुशासक		26.07.2002 तः एक वर्षम्
16.	निदेशकः	शैक्षणिक परिसर	07/07/2011–01/07/2012
17.	निदेशकः	अनुसन्धान केन्द्र	(04/04/2013) तो निरन्तरम्

(ii) शोध निर्देशन

अद्वितीय प्रतिभा के धनी डॉ. पाण्डेय के निर्देशन में 1999 से निरन्तर ही छात्रों द्वारा शोध कार्य किया जा रहा है जिनमें विद्यावारिधि (पी.एच.डी.) उपाधि हेतुकमलाकरभट्टविरचित–शास्त्रदीपिकाऽऽलोक टीकायाः सम्पादनम् वर्ष 2002 (राज. विश्वविद्यालय जयपुर) व श्री मण्डन सूत्र धारविरचितस्य वास्तु मण्डनस्य सम्पादनम् समीक्षा च (राज. विश्वविद्यालय, जयपुर) तथा लघुशोध उपाधि हेतु उदयान्वयवर्णनखण्डकाव्यस्य समालोचनात्मकमध्ययनम् वर्ष 2002 (राज. विश्वविद्यालय, जयपुर) व अभिनव संस्कृत सुभाषित सप्तशती के सांस्कृतिक तत्त्व वर्ष 2003–04 (कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र) प्रमुख है जिनके शोध निर्देशक मनीषी विद्वान् डॉ. ताराशंकर शर्मा पाण्डेय है।

(iii) सदस्यता

डॉ. ताराशंकर शर्मा पाण्डेय अपनी प्रखर प्रतिभा के कारण विविध विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम समितियों के सदस्य व साहित्यिक संस्थाओं में सहभागिता प्राप्त कर चुके हैं। मार्च 2004 से अद्यावधि आप राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर की प्रकाशन समिति के सदस्य के रूप में नियुक्त है, राज्यस्तरीय संस्कृत दिवस समारोह 2006 संस्कृत शिक्षा राज. की सम्मानार्थ विद्वच्चयन समिति के सदस्य पद पर कार्य कर चुके हैं इसी के साथ ज.रा. राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर के कार्यपरिषद, विद्यापरिषद, साहित्य एवं संस्कृति संकाय आदि के सदस्य पद पर नियुक्ति प्राप्त कर चुके हैं। वर्ष 2005 से आप ज.रा. राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर के ही साहित्य एवं संस्कृत वाङ्मय अध्ययन मण्डल के संयोजक है साथ ही वर्तमान में आप ज.रा. राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर के ही अधिष्ठा पद पर कार्यरत है। 1995 से 1998 तक माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान के पाठ्यक्रम समिति के सदस्य रहे हैं। जनवरी 1999 से अद्यावधि आप श्री वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ जयपुर (राज.) के प्रकाश मंत्री व संयुक्त मंत्री है।

डॉ. पाण्डेय ने अपनी प्रखर प्रतिभा से, अपने प्राक्तन जन्म संस्कारों एवं वर्तमान के शास्त्राभ्यास एवं श्रेष्ठ विद्वानों की सङ्गति से विलक्षणता को प्राप्त किया। डॉ. पाण्डेय के अनुभवों (शैक्षणिक एवं प्रशासनिक) का विस्तार से विवेचन किया है।

संस्था–सदस्यताविवरणम्

क्र.सं.	पद	संस्था	अवधिः
(क)	चयन समिति		
1.	सदस्यः	राज्यस्तरीय पुरस्कारार्थ संस्कृत विद्वत् चयन	1999 तः 2009 तो निरन्तरम् एवं 2011=12 वर्षम्

		समिति, संस्कृत शिक्षा राजस्थान सरकार	
2.	सदस्यः	संस्कृत विद्वानों को पारितोषिक/प्रोत्साहनार्थ चयन समिति, संस्कृत शिक्षा विभाग राजस्थान सरकार	(2004–5'उपवेशन 17/10/2005) (2005–6– उपवेशन 09.03.2006) (2009–10–उपवेशन 19.03.2010) (2010–11–उपवेशन 07.03.2011) (2011–12–उपवेशन 05.03.2012)
3.	सदस्यः	पुरस्कार हेतु प्राथमिकी चयन समिति, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली	2007
4.	सदस्यः	शिक्षक चयन समिति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार	2009
5.	सदस्यः	शिक्षक चयन समिति जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर	मार्च 2006 एवं मार्च 2012
6.		सरस्वती सम्मान	2010–11, 2011–12
7.	सदस्यः	चयन समिति, व्यास बालाबक्ष शोधसंस्थान, जयपुर	2013–14
8.	सदस्यः	शिक्षक चयन समिति उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग हरिद्वार	2013
9.	सदस्यः	शिक्षक चयन समिति, काशी हिन्दी विश्वविद्यालय, वाराणसी	.....नवम्बर 2013 एवं .....दिसम्बर 2014

ख	विश्वविद्यालय		
10.	सदस्यः	संस्कृत संकाय, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर	1988 तः 21 नवम्बर 1992
11.	सदस्यः	संस्कृत संकाय राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	1993 तः 21 जनवरी 2001
12.	सदस्यः	पाठ्यक्रम समिति–संस्कृत संकाय राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	1995 तः 1998 पुनश्च 6.9.2000 तः तीन वर्षम्
13.	सदस्यः	पाठ्यक्रम समिति–संस्कृत संकाय, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर	10/02/99 तः तीन वर्षम्
14.	संयोजकः	पाठ्यक्रम समिति–संस्कृत संकाय, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर	10/02/1991 तः तीन वर्षम्
15.	प्राचार्यत्वेन	विद्या परिषद्, राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर " पुनश्च	जुलाई 2001 तः तथा 26/08/2002 तः 25/08/2005 1/09/2008 तः 31/08/2010
16.	अधिष्ठाता	साहित्य संस्कृति संकाय, राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर	26/08/02 तः 28/08/05 पुनः 01/08/08 तः 31/09/10 पुनः जून 2013 तः तीन वर्षम्
17.	सदस्यः	कार्यपरिषद् ज.रा. राजस्थान संस्कृत	29/08/05 तः 28/08/08

		विश्वविद्यालय जयपुर	पुनः 22.03.10 तः 31.08.10
18.	सदस्यः	पाठ्यक्रम समिति–उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय हरिद्वार	अप्रेल 2009
19.	सदस्यः	पाठ्यक्रम समिति–विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन म.प्र.	
(ग)	**माध्यमिक शिक्षा बोर्ड**		
20.	सदस्यः	पाठ्यक्रम समिति–माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान	1995 तः 1998
21.	आजीवन सदस्यः	ऑल इण्डिया ओरियंटल कान्फ्रेंस, पुणे, महाराष्ट्र	19/03/2010 तो निरन्तरम्
22.	संस्थापक अध्यक्षः	संस्कृत भाषा परिषद् जयपुर	फरवरी 2008 तो निरन्तरम्
23.	सदस्यः	महासमिति, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर	28/02/2005 तः 25/03/2008 31/08/2004 तः 31/03/2007
24.	उपाध्यक्षः	श्री वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ, जयपुर	सितम्बर 2013 तो निरन्तरम्..
25.	सदस्यः	राजगंगा चैरिटेबल ट्रस्ट, जयपुर	अगस्त 2009 तो निरन्तरम्
26.	सदस्यः कार्यकारिणी	व्यास बालाबक्ष शोध संस्थान, सोढाला, जयपुर	07.05.2012 तो निरन्तरम्.....
27.	प्रकाशन मंत्री	श्री वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ, जयपुर	जनवरी 1999 तः अगस्त 2012

28.	सदस्यः	पाठ्यक्रम समिति साहित्य शास्त्र, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली	अक्टूबर 2012 तः तीन वर्षम्
29.	सचिव	राजगुरु पं. श्री विद्यानाथ ओझा शताब्दी ग्रन्थ समिति, वैशाली नगर, जयपुर	
30.	सदस्यः	अखिल भारतीय कालिदास समारोह 2011 समिति, विक्रम विश्वविद्याल, उज्जैन	
31.	सदस्यः	डॉ. मण्डन मिश्र स्मृति संस्थान, जयपुर	

1.4 सम्मान व पुरस्कार

संस्कृत साहित्य के निष्णात विद्वान् तथा बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. ताराशंकर शर्मा पाण्डेय को संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अपनी प्रखर प्रतिभा, उत्कृष्ट रचनाओं तथा प्रशंसनीय कार्यों के लिए अनेक पुरस्कारों, मानपत्रों तथा पदक प्रदान कर सम्मानित किया गया है। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, जयपुर द्वारा आयोजित मेधावी छात्र अभिनन्दन समारोह वर्ष 1980 में आपको प्रशस्ति पत्र प्रदान कर साहित्याचार्य परीक्षा में सर्वोच्च अंक प्राप्ति हेतु सम्मानित किया गया। साहित्याचार्य में ही प्रथम स्थान प्राप्त करने पर राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा वर्ष 1980 में आपको स्वर्ण पदक से नवाजा गया। संस्कृत साहित्य परिषद् विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा 10 दिसम्बर 1979 को आयोजित संस्कृत निबन्ध प्रतियोगिता व संस्कृत पत्र वाचन प्रतियोगिता, दोनों में आपने प्रथम स्थान प्राप्त किया। जो आपके संस्कृत विषय के प्रति विद्यानुराग के द्योतक है वर्ष 2001–02 में दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली सरकार द्वारा आयोजित अखिल भारतीय मौलिक संस्कृत लघु नाटक लेखन प्रतियोगिता, में आपको द्वितीय पुरस्कार की प्राप्ति हुई। व्यास बालाबक्ष शोध–संस्थान, जयपुर द्वारा वर्ष 2000.01 में आपको संस्कृत' नव–कविता सृजन पर 29 जुलाई 2001 को दस हजार रूपये का महर्षि पुरस्कार दिल्ली संस्थान द्वारा प्रदान किया गया।

पुरस्कारों की इसी परम्परा में 24 जून 2001 में श्री गौड़ विप्र समाज जयपुर ने संस्कृत साहित्य व समाज सेवा के क्षेत्र में शाश्वत व उत्कृष्ट सेवा से समाज को संवर्द्धित करने के लिए आपको 'गौड़–विप्र–रत्न' सम्मान प्रदान किया गया। 18 जुलाई 2007 को आयोजित संस्कृत विद्वत् सम्मान समारोह में आपको शिवमय जीवनधारा पावटा, जयपुर राज, द्वारा सम्मान पत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया। संस्कृत वाङ्मय के विभिन्न पक्षों का संरक्षण एवं भारतीय संस्कृति के संवर्द्धन तथा उत्कृष्ट धार्मिक सेवा द्वारा समाज में नव चेतना स्थापित करने हेतु भागीरथ प्रयास करने के उपलक्ष्य में 'श्री गोपुष्टि नवकुण्डात्मक महायज्ञ समिति' ने 11 अगस्त 2008 को सम्मान पत्र प्रदान कर आपको सम्मानित किया। 21 व 22 अगस्त 2004 में आयोजित 'श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदास जयन्ती समारोह' में 21 अगस्त 2004 को 'तुलसी सम्मान पत्र' से सम्मानित किया गया। संस्कृत शिक्षा राजस्थान, जयपुर द्वारा वर्ष 2006–07 में साहित्य–सौरभम् पुस्तक पर योग्यता पारितोषिक पुरस्कार प्रदान किया गया।

अखिल भारतीय संस्कृत लघु नाटक लेख प्रतियोगिता 2007–08 के अन्तर्गत आपकी नवीन रचना 'हंसरक्षणम्' पर आपको तृतीय पुरस्कार दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा प्रदान किया गया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों के सुदूर अञ्चलों में समय–समय पर आपका सारस्वत सम्मान होता रहा है।

संस्कृत साहित्य के निष्णात विद्वान् तथा बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. पाण्डेय को संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अपनी प्रखर प्रतिभा, उत्कृष्ट रचनाओं तथा प्रशंसनीय कार्यों के लिए अनेक पुरस्कारों, मानपत्रों तथा पदक प्रदान कर सम्मानित किया है।

डॉ. पाण्डेय को समाज, मनीषिमण्डल केन्द्र सरकार व राज्य शासकों के द्वारा समय–समय पर प्रशस्ति पत्र व सम्मान पत्र से सम्मानित किया गया। सम्मान–पुरस्कार विशेष का परिचय व उनका विवरण यहाँ दिया गया है।

1. राज्यस्तरीय–उत्कृष्ट लेखन पुरस्कार

संस्कृत साहित्य परिषद्, विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा 10 दिसम्बर 1979 को आयोजित संस्कृत निबन्ध प्रतियोगिता व संस्कृत वाचन प्रतियोगिता दोनों में आपने प्रथम स्थान प्राप्त किया।

2. राज्यस्तरीय सम्मान

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, जयपुर द्वारा आयोजित मेधावी छात्र अभिनन्दन समारोह वर्ष 1980 में आपको प्रशस्ति पत्र प्रदान कर साहित्याचार्य परीक्षा में सर्वोच्च अंक प्राप्ति हेतु सम्मानित किया गया।

साहित्याचार्य में ही प्रथम स्थान प्राप्त करने पर राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा वर्ष 1980 में आपको स्वर्ण पदक से नवाजा गया।

3. अकादमी सम्मान

वर्ष 2001–02 में दिल्ली संस्कृत, अकादमी, दिल्ली सरकार द्वारा आयोजित अखिल भारतीय मौलिक संस्कृत लघु नाटक लेखन प्रतियोगिता में आपको द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ।

लघु नाटक लेख प्रतियोगिता 2007–08 के अन्तर्गत आपकी नवीन रचना 'हंसरक्षणम्' पर आपको तृतीय पुरस्कार दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा प्रदान किया गया।

4. तुलसी सम्मान–पत्र

21 एवं 22 अगस्त 2004 जयपुर में श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जयन्ती के पावन अवसर पर समायोजित विद्वत् सम्मान समारोह में आपकी सतत साहित्य साधना के उपलक्ष्य में तुलसी सम्मान से सम्मानित किया।

5. गौड़–विप्र–रत्न

आपके संस्कृत साहित्य एवं समाज सेवा क्षेत्र में शाश्वत एवं उत्कृष्ट सेवा से समाज को संवर्धन एवं सम्बल प्राप्त हुआ। अतः श्री गौड़ विप्र समाज 24 जून 2001 को गौड़–विप्र–रत्न से सम्मानित किया।

6. महर्षि पुरस्कार

आपको व्यास बालाबक्ष शोध संस्थान, जयपुर द्वारा संस्कृत–नव–कविता सृजन पर 2000–01 में दस हजार रुपये का महर्षि पुरस्कार प्रदान किया गया तथा सम्मानित किया गया।

7. विक्रम कालिदास पुरस्कार

वर्ष 2010 में शोध पत्र परिषद् में प्रस्तुत कालिदास की परवर्ती साहित्यकारों में छाप शीर्षक से उत्कृष्ट शोध पत्र प्रस्तुत करने पर आपको विक्रम कालिदास पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

प्राप्तसम्मानपुरस्कारविवरणम्

क्र.सं.	शीर्षकम्	संस्था	वर्षम्	विशेषविवरणम्
1.	प्रशस्ति पत्र	मेधावी छात्र अभिनन्दन समारोह, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, जयपुर	1980	
2.	स्वर्णपदक	राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	1980	साहित्याचार्य परीक्षा में प्रथम स्थान
3.	प्रथम स्थान	संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	1980	संस्कृत निबन्ध प्रतियोगिता
4.	प्रथम स्थान	———"———	1980	संस्कृत पत्र वाचन
5.	द्वितीय पुरस्कार	दिल्ली संस्कृत अकादमी दिल्ली सरकार	2000–01	संस्कृत लघु नाटक लेखन में राष्ट्ररक्षणं पर
6.	सम्मानः	श्री गौड़ विप्र समाज, जयपुर	24/06/01	गौड़ विप्र रत्न
7.	महर्षि पुरस्कार (10 हजार)	व्यास बाला बक्ष शोध संस्थान, जयपुर	29/8/01	संस्कृत–नव–कविता सृजन
8.	सम्मान पत्र	शिवमय जीवनधारा, पावटा, जयपुर	18/7/04	संस्कृत विद्वत् सम्मान समारोह
9.	सम्मान पत्र	श्री गोपुष्टि नव–कुण्डात्मक महायज्ञ समिति जयपुर	11/8/04	
10.	तुलसी सम्मानः	श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जयन्ती समारोह, जयपुर	21/08/04	राज्य–स्तरीय पुरस्कारः
11.	योग्यता पारितोषिक	निदेशालय, संस्कृत शिक्षा राजस्थान, जयपुर	2006–07	
12.	सम्मान पत्र	अंजनी हनुमान धाम, हाड़ोता, चौमू, जयपुर	24/06/07	श्री अंजनीनन्दन महायज्ञ 17–25 जून 2007 के अवसर पर
13.	प्रशस्ति पत्र	जयपुर मण्डल शाखा हरिशेवा निम्बार्क संस्कृत समिति, भीलवाड़ा	29/10/07	

14.	तृतीय पुरस्कार	दिल्ली संस्कृत अकादमी दिल्ली सरकार	2007–08	संस्कृत लघु नाटक लेखन में 'हंसरक्षरणम्' पर
15.	संस्कृतसाहित्य रत्न सम्मान	श्री बादरायण पीठ, प्रपूर्णा एवं झुन्झुनूमण्डलीय ब्रह्मण महासभा, झुन्झुनू	08/06/09	
16.	साहित्यमार्तण्ड सम्मान	श्री वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ, जयपुर	24/08/09	
17.	सम्मान पत्र	श्रीराम महायज्ञ आयोजक अग्रपीठाधीश्वर रेवासा धाम, सीकर	19/02/10	
18.	प्रशस्ति पत्र	राजस्थान सरकार, संस्कृत दिवस समारोह, जयपुर	24/08/10	श्रावणी पूर्णिमा सम्वत् 2067
19.	प्रथम पुरस्कार	दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली सरकार	2010–11	संस्कृत लघु नाटक लेखन प्रतियोगिता में वुक्षरक्षणम् पर
20.	प्रथम पुरस्कार	उत्तराखण्ड संस्कृत संस्थान, हरिद्वार	2010–11	———"———
21.	विक्रम कालिदास पुरस्कार	विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)	2010	उत्कृष्ट शोध पत्र पर
22.	संस्कृतप्रतिभासम्मानः	निम्बार्क वैदिक संस्कृत समिति, भीलवाड़ा	26/02/11	राज्यस्तरीय प्रशस्तिपत्रम्
23.	विद्वत्सम्मानः	प्रो. वैद्य लक्ष्मीनारायण स्मृति जनकल्याण न्यास, जयपुर	05/11/11	
24.	प्रशस्तिपत्र	श्री लक्ष्मीनारायण दिव्यधाम, श्री सिद्धदाता आश्रम, फरीदाबाद, हरियाणा	11/01/12	
25.	सम्मान पत्र	श्रीभगवद् धर्म संस्कृत वेद विद्यालय, जिन्दोली–घाटी, अलवर	05/02/12	

26.	द्वितीय पुरस्कार	उत्तराखण्ड संस्कृत संस्थान, हरिद्वार	2013–14	अखिल भारतीय मौलिक संस्कृत लघु कथा लेखन प्रतियोगिता 'नारा' पर
27.	संस्कृत अनुवाद पुरस्कार 2015 साहित्य अकादमी दिल्ली (मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार)	अहमेव राधा अहमेव कृष्णः पुस्तक पर इम्फाल (मणिपुर 04 सितम्बर 2016 को	4 सितम्बर 2016	

1.5 अन्य

इनके अतिरिक्त भी डॉ. पाण्डेय के व्यक्तित्व के कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू भी है जिनका विवेचन किये बिना सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विवेचन करना अपर्याप्त होगा अतः डॉ. पाण्डेय के जीवन के अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू निम्न प्रकार है–

(i) फिल्म संवाद लेखन

डॉ. पाण्डेय का संस्कृत साहित्य को अप्रतिम योगदान है। संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं में लेखनी चलाकर जहाँ आपने अद्वितीय रचना कौशल का परिचय दिया है वही उत्तर भारत की प्रथम संस्कृत फिल्म मुद्राराक्षसम्, जो कि मुद्राराक्षस नाटक पर आधारित है एवं व्यास बाला बक्ष शोध संस्थान, जयपुर के बेनर तले जिसका निर्माण कार्य हुआ है, में संवाद लेखन का कार्य कर सहृदय रसिकों को अपनी योग्यता व प्रतिभा से सहज ही आकृष्ट कर लिया है।

(ii) विदेश यात्रा मॉरिशस

डॉ. पाण्डेय की प्रतिभा न केवल भारत तक ही सीमित है अपितु विदेशों में भी उनकी प्रतिभा का प्रस्फुटन धीरे–धीरे हो रहा है। मॉरिशस में 13–14 सितम्बर, 2003 को आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार में डॉ. पाण्डेय ने संस्कृत एवं कर्मकाण्ड 'द मॉरिशस सनातन धर्म टेम्पल फेडरेशन पोर्ट लुईस' (THE MARITIUS SANATAN DHARM TEMPLES FEDERATION PORTLOUIS) मॉरिशस में प्रतिभागिता की।

(iii) शोध पत्रों में योगदान

डॉ. पाण्डेय का शोधपत्रों में योगदान का विवेचन निम्न प्रकार किया जा सकता है–

क्र.सं.	शोध पत्र विषय	सेमीनार/संगोष्ठी	आयोजक–संस्था
1.	प्रतिभागिता	नेशनल कान्फ्रेन्स ऑन हायर एज्युकेशनः रेस्टोस्पेक्ट एण्ड प्रोस्पेक्टस 21–22 जनवरी 2006	राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
2.	जननी–जन्मभूमिमहत्ता	मातृसमर्चना संगोष्ठी 05–08 मार्च 2006	राजस्थान संस्कृत अकादमी लक्ष्मणगढ़ स्थापना समारोह द्विशताब्दी एवं श्री ऋषिकुल विद्यापीठ, लक्ष्मणगढ़, सीकर
3.	वैदिक एप्रोच ऑफ यूनिवर्सल किनशिप फोर ग्लोबल पीस (शोध पत्र स्वीकृत)	वैदिक आईडियाज फॉर ग्लोबल हारमनी एण्ड पीस इन माडर्न कान्टेस्ट 8–10 जुलाई 2006	ह्युस्टन विश्वविद्यालय, टेम्सास, यू.एस.ए. के तत्वाधान द्वारा वर्ल्ड एसोसिएशन फार वैदिक स्टडीज।
4.	राजस्थान की संस्कृत गद्य साधना	द्विदिवसीय राष्ट्रीय संस्कृत संगोष्ठी 21–22 दिसम्बर 2006	संस्कृत विभाग राज. विश्वविद्यालय एवं राज. संस्कृत अकादमी, जयपुर
5.	संस्कृत वाङ्मय और कृषि विज्ञान	राष्ट्रीय संगोष्ठी संस्कृत वाङ्मय में कृषि अर्थ एवं प्रबन्ध चिन्तन	यु.जी.सी. राज. संस्कृत अकादमी, आई.ई.टी ग्रुप एवं जी.डी. राजकीय महिला

			महाविद्यालय, अलवर
6.	राजवातायनम् 2007 के सम्पादक के रूप में प्रतिभागिता एवं स्मारिका लोकर्पण	संस्कृत साहित्य सम्मान समारोह एवं अखिल भारतीय, भारतीय, वैदिक सम्मेलन 22–23 फरवरी, 2007	राजस्थान संस्कृत अकादमी एवं श्रीराम धाम, कोटा

(iv) संस्कृत काव्यगोष्ठी सहभागिता

संस्कृत साहित्य के विद्वान् मनीषी डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने विभिन्न संस्थाओं द्वारा आयोजित काव्यगोष्ठीयों में भाग लेकर संस्कृत साहित्य में अपनी सहयोगिता प्रदान की है, जिसमें से प्रमुख इस प्रकार है–

क्र.सं.	**कार्यक्रम**	**आयोजक–संस्था**
1.	अखिल भारतीय कवि सम्मेलन	1997 राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर
2.	अखिल भारतीय कवि सम्मेलन	1998 राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर
3.	प्रादेशिक संस्कृत कवि सम्मेलन	18 अगस्त, 1998 राजस्थान संस्कृत अकादमी एवं राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन,जयपुर
4.	संस्कृति कवि सम्मेलन	7 फरवरी 1999, कालिदास जयन्ती समारोह समिति, कोटा (राज.)
5.	संस्कृति कवि सम्मेलन	23 अक्टूबर, 1999 संस्कृत अकादमी एवं संस्कृतोत्थान समिति, बांसवाड़ा (राज.)
6.	अखिल भारतीय संस्कृत काव्य संगोष्ठी	14 फरवरी 2000, राजस्थान संस्कृत अकादमी एवं संस्कृतम्, कोटा (राज.)
7.	अखिल भारतीय संस्कृत कवि सम्मेलन	10 फरवरी, 2001, राजस्थान संस्कृत अकादमी, एवं संस्कृतम्, कोटा (राज.)

8.	अखिल भारतीय संस्कृत कवि सम्मेलन	5 अगस्त, 2001 को राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर
9.	अखिल भारतीय संस्कृत कवि सम्मेलन	24 दिसम्बर, 2003 राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान जयपुर परिसर, जयपुर
10.	संस्कृत कवि सम्मेलन	25 मई 2004, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार एवं आस्था सांस्कृतिक संस्था, जयपुर
11.	संस्कृत कवि सम्मेलन	18.8.2005 राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर
12.	संस्कृत कवि सम्मेलन	8 अगस्त 2006, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर
13.	संस्कृत कवि सम्मेलन	27 अगस्त 2005 राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर
14.	(भारतीय पर्व एक चिन्तन)	प्रसारण 28 अक्टूबर 2006 सायं 4.30 बजे परिचर्चा, अक्षरा कार्यक्रम जयपुर दूरदर्शन केन्द्र, जयपुर
15.	(अक्षरा मधुच्छन्दा)	प्रसारण 28 अक्टूबर 2006 सायं 4.30 बजे परिचर्चा, संस्कृत दिवस पर अक्षरा कार्यक्रम जयपुर दूरदर्शन केन्द्र, जयपुर

(v) संस्कृति एवं संस्कृत को योगदान

1. सन् 1979 में डॉ. पाण्डेय ने डाबड़ी, चौमू, जिला जयपुर में आयोजित 108 कुण्डीय यज्ञ में पौराहित्यकर्म किया।
2. सन् 1993 में धनिता, जिला जयपुर में आयोजित 108 कुण्डीय यज्ञ में भी पौरोहित्यकर्म सम्पन्न किया।

3. 10 फरवरी, 2000 में राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, में 'मन्दिर' का निर्माण करवाकर सरस्वती मूर्ति की स्थापना की।
4. 16 मार्च 2000 में संस्कृत पत्रकारिता विषय राज्यस्तरीय आयोजन।
5. 26 अगस्त 2000 को संस्कृत बाल कवि सम्मेलन तथा संस्कृत नुक्कड़ नाटक का आयोजन।
6. 28 मार्च, 2001 को राजकीय महाराणा आचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, उदयपुर में संस्कृत वर्ष के अन्तर्गत सम्भागीय स्तर पर संस्कृत समारोह का आयोजन।
7. 26–27 मई, 2001 को संस्कृत वाङ्मय में नारी स्थिति विषय पर राज्य स्तरीय सेमीनार का आयोजन किया।
8. संस्कृत एवं कर्मकाण्ड विषय पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार 'द मारिशॅस धर्म टेम्पल फेडरेशन पोर्ट लुईस, मारिशॅस' में प्रतिभागिता।
9. 10 दिसम्बर 2003 को पेरिस विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. जैन इ.एम. ह्युबैन के विशिष्ट व्याख्यान को संयोजन।
10. 23–25 मई 2004 राज्य स्तरीय संस्कृत साहित्यकार एवं प्रकाशन सम्मेलन के आयोजन का संयोजन।
11. संस्कृत के व्याख्याता प्रोफेसर के लिए 11 फरवरी 2004 से 2 मार्च 2004 तक इक्कीस दिवसीय राज्य स्तरीय पुनश्चर्या पाठ्यक्रम के आयोजन का संयोजन।
12. अखिल भारतीय स्तर पर 3 से 5 मार्च 2005 तक त्रिदिवसीय विशिष्ट व्याख्यान माला के आयोजन का संयोजन।
13. 30–31 जुलाई, 2006 राज्य स्तरीय संस्कृत साहित्यकार एवं प्रकाशन सम्मेलन के आयोजन का संयोजन।

1.6 व्यक्तित्व

किसी भी व्यक्ति की सम्पूर्ण शारीरिक विषमताओं एवं मानसिक प्रवृत्तियों की समन्वित ईकाई ही उसका व्यक्तित्व है। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व में सामान्यतया उस व्यक्ति की प्रवृत्तियों अनुभवजन्य मानसिक दशाओं, प्रेरणाओं, रूचि, दृष्टिकोण, विचार, आदर्श आदि की गणना की जाती है। यद्यपि व्यक्तित्त्व के पक्ष अनन्त है। तथापि मोटे तौर पर व्यक्तिव तीन स्तरों पर बनता है– शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक इन तीनों स्तरों पर जो मानव कल्याण के कार्य व्यक्ति करता है वही उस व्यक्ति का व्यक्तित्व समेकित रूप में कहलाता है। कोई भी कलाकृति उसकी रचना करने वाले कलाकार के अनुरूप होती है। यदि हमें कलाकार के व्यक्तित्व का ज्ञान है तो

हमें उसकी कृति के अन्तः स्थल तक पहुँचने में सहायता प्राप्त होती है। आचार्य मम्मट इस विषय में एक सटीक बात कहते हैं–

"या स्थिवरमिव हसन्ती कविवदनाम्बुरुहबद्धविनिवेशा।
दर्शयति भुवनमण्डलमखिलमन्यदिव जयति सा वीणा।"

वह वाणी विजयिनी है, जो मानों बूढ़े ब्रह्मा का उपहास करती हुई कवि वदनकल में निवास करती हुई संसार का कुछ दूसरे ही प्रकार से प्राकट्य करती है अर्थात् जिस प्रकार इस संसार के वैविध्य वैचित्र्य या सौन्दर्य में हम प्रजापति के विराट् रूप का अनुमान लगा सकते हैं, उसी प्रकार काव्य के अध्ययन से हम कवि के व्यक्तित्व को समझ सकते हैं।

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का व्यक्तित्व असाधारण गुणों के से अभिमण्डित है। इस बात पर बिल्कुल सन्देह नहीं किया जा सकता है कि डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' विराट् व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति है तथा आपने अपने बहुमुखी व्यक्तित्व से जनसाधारण को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है। इनके सहज एवं सर्वजनाभिन्न व्यक्तित्व का चाहे शारीरिक पक्ष हो, चाहे मानसिक पक्ष हो, हार्दिक आत्मिक या सामाजिक पक्ष हो अथवा सैद्धान्तिक पक्ष हो, उनमें सर्वत्र समान रूप से वह मनोहरता एवं सरलता प्रकट हुआ करती जो महान् व्यक्ति के व्यक्तित्व में विद्यमान रहती है। डॉ. पाण्डेय का चारू चरित्र अद्वितीय है। उनके बहुआयामी आनन्त्य–भाववेष्टित विशद व्यक्तित्व में क्षुद्रता, राग, द्वेष, ईर्ष्या, असूया प्रभृति कलुषित भावनाएँ प्रविष्ट नहीं हो पाती है उनकी ओजस्विनी वाणी एवं तेजपूर्ण मुख मण्डल के समक्ष दुष्प्रवृत्तियों एवं दुर्भावनाओं की सत्ता का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि एक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति में जितने गुण होते हैं उन सभी गुणों के वे धनी है तथा कर्मण्यवाधिकारस्ते.....की उक्ति के अनुसार एक कर्मयोगी की भाँति अपने रचना सृजन रूपी कर्मपथ पर वे निर्द्वन्द होकर अग्रसर होते चले जा रहे हैं। निश्चित्त रूप से डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का जीवन एक प्रेरणा स्त्रोत है, मानवता के लिए मापदण्ड है, शिक्षकों के लिए एक प्रज्ज्वलित मशाल है, अध्येताओं के लिए एक आलोकस्तम्भ है, विद्यार्थियों के लिए एक वरदान है हम जितना भी इनके व्यक्तित्व के विषय में कहे, वह बहुत कम है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि डॉ. ताराशंकर शर्मा पाण्डेय का व्यक्तित्व अनेक मानवीय दुर्लभ गुणों से अभिमण्डित है, उनमें विद्ववता के साथ ही लोक व्यवहारिकता, भावुकता, सुकुमार कल्पनाशीलता का अद्‌भुत सम्मिश्रण होने से उनका व्यक्तित्व इन्द्रधनुष सा हो गया है।

1.7 कृतित्व

डॉ. ताराशंकर शर्मा पाण्डेय का संस्कृत साहित्य को अप्रतिम योगदान है। अपने अनूठे साहित्यिक अवदान से आपको माँ भारती के श्री चरणों में अपनी रचनाएँ समर्पित कर भारत को विश्व में गौरवान्वित किया है। आपके द्वारा रचित 'राष्ट्ररक्षणम्' नामक एकांकी रूपक जिस पर अखिल भारतीय मौलिक संस्कृत लघुनाटक लेखन प्रतियोगिता में द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ है। साथ ही आपके द्वारा प्रणीत संस्कृत नाट्यप्रणेता 'पं. हरिजीवनमिश्रः (समीक्षा प्रबन्ध)' भी अत्यन्त महत्त्व रखने वाला है। 'सरस्वत सौरभम्' नामक 'पद्यगद्यनाट्यसंग्रह' में विविध विषयों को लेकर गद्य, पद्य तथा नाटक का जो संग्रह किया गया है वह अद्वितीय है। 'सारस्वत–सौरभम्' के स्तुति खण्ड में सरस्वती, शिव, गणपति आदि की अराधना अद्‌भुत है। जिससे कवि का विविध देवों के प्रति अनन्य अनुराग अभिव्यक्त होता है। इन रचनाओं के पढ़ने से सहृदय पाठक के मन में श्रद्धा भाव स्वाभाविक रूप से जागृत हो जाता है तथा पाठक को असीम आनन्दानुभूति होती है। डॉ. ताराशंकर शर्मा पाण्डेय प्रणीत काव्य ग्रन्थों की सामान्य पृष्ठभूमि इस प्रकार है–

(क) लेखन

(i) संस्कृत नाट्य प्रणेता–पं. हरिजीवन मिश्रः 2000

(ii) राष्ट्ररक्षणम् (लघुनाटक) पुरस्कृत दिल्ली संस्कृत अकादमी

(iii) सारस्वत–सौरभम् 2004

(iv) हंसरक्षणम् नवीन लघुनाटक पुरस्कृत दिल्ली संस्कृत अकादमी

(ख) व्याख्या/टिप्पणी लेखन

(i) वृत्तरत्नाकरः (प्रथमोऽध्यायः प्रमुख छन्दांसि च) 1998

(ii) पद्मिनी (संस्कृत उपन्यास) टिप्पणी लेखन 1999

(iii) पत्रदूतम् (खण्डकाव्य) टिप्पणी लेखन

(ग) पाठ्य पुस्तक पाठ–लेखन–माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान अजमेर

(i) संस्कृत गद्य कुसुमाञ्जलि–कक्षा 11 में पाठ 13 स्वातन्त्र्यहुतात्मानां सन् 2003 से निरन्तर।

(ii) संस्कृत नाट्य–निर्झर–कक्षा 11 में पाठ 'राष्ट्ररक्षणायमरणं वरम्' सन् 2003 से निरन्तर।

(घ) ग्रन्थ सम्पादन

(i) स्वातन्त्र्य सहयोगिनः 1998 (राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर)

(ii) याज्ञिक सम्राटः पुण्य स्मरण 1999

(iii) राजस्थान गौरवम् (राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर)

(iv) श्री हरिशास्त्री ग्रन्थमाला 2003

(v) व्याख्यान मणिमाला 2005 ज.रा.रा.सं. विश्व विद्यालय, जयपुर

(vi) श्री हनुमत्पूजा–पद्धतिः 2007 (एस मीटर्स प्रा.लि. देरा बसई पंजाब)

(vii) श्री रामपूजा–पद्धतिः 2007 (बद्री नारायण गौड़, एम.डी. बिल्डर्स एण्ड डबलपर्स प्रा. लि. जयपुर)

(viii) कथा कौमुदी 2007 हंसा प्रकाशन, जयपुर

(ix) संस्कार सोपान 2007 पाण्डेय प्रकाशन, जयपुर

(x) नतिततति 2007

(xi) श्री गणेश पूजापद्धति 2007 कैलाशचन्द बटवाड़ा प्रताप नगर, जयपुर

(ङ) पत्रिका सम्पादन

(i) क्रीडाञ्जलि (स्मारिका) 1987–88 राजकीय संस्कृत कॉलेज महापुरा–जयपुर

(ii) संविरा (राज. संस्कृत शिक्षा विभागीय पत्रिका) 1997

(iii) संस्तवः पत्रिका (राज. संस्कृत साहित्य सम्मेलन, जयपुर) 2001

(iv) स्वरमंगला (त्रेमासिक संस्कृत पत्रिका) जनवरी 1998 से मार्च 2001

(v) रचना विमर्श संस्कृत/हिन्दी (त्रेमासिक पत्रिका) अप्रेल 2001 से निरन्तर

(vi) अक्षरा 2004 ज.रा.रा. संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर

(vii) ऋषि प्रज्ञा 2005 श्री वैदिक प्रचारक संघ, जयपुर

(viii) कथा कौमुदी 2007 (हंसा प्रकाशन, जयपुर)

(ix) संस्कार सोपान 2007 पाण्डेय प्रकाशन, जयपुर

(x) नतिततति 2007

(xi) श्री गणेश पूजापद्धति 2007 कैलाशचन्द बटवाड़ा प्रताप नगर, जयपुर

(ङ) पत्रिका सम्पादन

(i) क्रीडाञ्जलि (स्मारिका) 1987–88 राजकीय संस्कृत कॉलेज, महापुरा–जयपुर

(ii) संविरा (राज. संस्कृत शिक्षा विभागीय पत्रिका) 1997

(iii) संस्तपः पत्रिका (राज. संस्कृत साहित्य सम्मेलन, जयपुर) 2001

(iv) स्वरमंगला (त्रेमासिक संस्कृत पत्रिका) जनवरी 1998 से मार्च 2001

(v) रचना विमर्श संस्कृत/हिन्दी (त्रेमासिक पत्रिका) अप्रेल 2001 से निरन्तर

(vi) अक्षरा 2004 ज.रा.रा. संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर

(vii) विप्रकीर्ति 2005 राज. गौड़ ब्रह्माण समाज, जयपुर

(viii) ऋषि प्रज्ञा 2005 श्री वैदिक प्रचारक संघ, जयपुर

(ix) राजवातायनम् (रजतजयन्ती वर्ष स्मारिका राजस्थान संस्कृत अकादमी) 2007

(x) वयम् (त्रेमासिक पत्रिका) ज.रा.रा. संस्कृत विश्विद्यालय, जयपुर

(xi) सुदर्शनालोक (प्राण प्रतिष्ठा महोत्सव स्मारिका) श्री सिद्धदाता आश्रम, सूरज कुण्ड बडखल रोड़ फरीदाबाद, हरियाणा।

(ङ) प्रकाशित एवं प्रसारित स्फुट साहित्य

राष्ट्रीय स्तर की संस्कृत एवं हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं में आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती रहती है। यथा–भारती, क्रीडांजली (स्मारिका), स्वरमंगला, अर्वाचीन संस्कृतम्, संस्कृतमञ्जरी, महर्षि वेदव्यास विद्यावैभवम् माघ–मनीषा, स्वातन्त्र्य सहयोगिनः विश्वसंस्कृतम्, पल्लवी पत्रिका अक्षरा, नन्दनकल्पतरु, दैनिक नवज्योति, श्री जगदीश प्रत्यभिज्ञानम्, वैद्यकुलगुरू काव्य वैभवम्, संस्कृत कथा वीथिका, गुरू उपदेश (प्रयाग महात्म्य) विप्रकीर्ति, श्रीरामचरितब्धिरत्नम्, दैनिक भास्कर (रसरंग परिशिष्ट) दृक् आदि पत्र–पत्रिकाओं में आपके अनेक लेख, कविताऐं, कहानियाँ एवं समीक्षात्मक लेख प्रकाशित हो चुके है।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शोध संगोष्ठियों एवं सेमीनारों में प्रस्तुत अनेक गवेषणापूर्ण शोधपत्र विद्वत्समाज में बहुचर्चित एवं प्रशंसित है। डॉ. पाण्डेय की अधिसंख्य साहित्यिक रचनाओं, कविता कथा रूपक (एकांकी, नाटक) लेख आदि का आकाशवाणी के जयपुर व उदयपुर केन्द्रों से प्रायः प्रसारण होता रहता है। दूरदर्शन के अक्षरा कार्यक्रम में अनेक बार स्वरचित छन्दोबन्धन युक्त सहृदयावर्जक काव्य पाठ किया। कवि गोष्ठियों में भाग लिया। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित वार्ताओं में

'विक्रमोर्वशीय–एक दृष्टि', 'भारत भारती वैभवम्', 'मृच्छकटिकम् के नायक का स्वरूप', 'संस्कृत पत्रकारिता–दशा एवं दिशा' आदि प्रमुख है।

प्रकाशित रचनाऐं

(क) मौलिक संस्कृत कविताऐं

क्र.सं.	शीर्षक	पत्र–पत्रिका	माह/वर्ष
1.	लोभस्य फलमेव मृत्युः	भारती	मई, 1980
2.	मुक्तक–पद्यानि	"	अक्टू. 1980
3.	दुरवस्था–संस्कृतस्य	"	अक्टू. 1983
4.	कौऽयं तस्या अपराधः	"	अप्रेल 1984
5.	दुखस्था संस्कृतस्य	"	अप्रेल 1984
6.	स्वागत–गीतिका	क्रिडाञ्जलि (स्मारिका)	1987–1988
7.	किं नामधेयं यौतकम्	स्वरमंगला	जुलाई–दिस. 1987
8.	भावना कुसुमाञ्जलि	"	जन.–दिस. 1987
9.	स्फुटम्	"	जुलाई–दिस. 1987
10.	मेघदूतः	अर्वाचीन संस्कृतम्	जुलाई 1990
11.	कालिदासः शिरोमणिः	"	जुलाई 1991
12.	भारतं नाम स्वतंत्रम्	भारती	नवम्बर 1991
13.	श्रीरामः स्तुतिः	"	मई 1993
14.	राम विना का गतिः	"	नवम्बर 1993
15.	कालिदासः शिरोमणिः	"	अप्रेल 1994
16.	मधुमासः	"	मई 1994
17.	मेघदूतः	"	जून 1994
18.	आक्षेपः	"	नवम्बर 1994

19.	सञ्जीभूता सिन्धोर्बाला	संस्कृत मंजरी	जन.–मार्च 1995
20.	सञ्जीभूता सिन्धोर्बाला	भारती	जनवरी 1995
21.	मेघे माघे गतं वयः	भारती	मई 1995
22.	गच्छरे! गच्छ क्लान्तकान्त	भारती	जून 1995
23.	किं नामधेयं यौतकम्	″	जनवरी 1996
24.	हले शकुन्तले!	″	जनवरी 1996
25.	परकीय धनम्	″	जून 1996
26.	त्रिवेणीसंगम्ः	″	अगस्त 1996
27.	मेघे माघे गतं वयः	स्वरमंगला	अक्टू. दिस. 1996
28.	ब्रह्मलीनाः शंकराचार्याः	भारती	अक्टू. 1996
29.	वेद विस्तारको व्यासः	महर्षि वेद व्यास विद्यावैभवम्	1997 (सं. 2054)
30.	कोऽयं तस्या अपराधः	संस्कृत मञ्जरी	अप्रेल–जून 1997
31.	अन्तरालः	भारती	अक्टूबर 1997
32.	बारहठ सिंह त्रयी	″	नवम्बर 1997
33.	प्रकृतिः	″	जनवरी 1998
34.	तत्र सदा निवासः	स्वरमंगला	जनवरी–जून 1998
35.	मेघे माघे गतं वयः	माघ–मनीषा	1998
36.	बारहठसिंहत्रयी	स्वातन्त्र्य सहयोगिनः	1998
37.	स्वातन्त्रता–प्राप्तिः	″	1998
38.	देवि! दिव्यभारती!	स्वरमंगला	अक्टू.–दिस. 1998
39.	माधवः	भारती	मार्च 2000
40.	नित्यं ग्राह्या सत्या शिक्षा	स्वरमंगला	जन.–मार्च 2000

41.	देविः दिव्य भारती	विश्वसंस्कृतम्	जन.मार्च 2000
42.	मदीयराष्ट्ररक्षणम्	भारती	अगस्त 2000
43.	हिमालयः	स्वरमंगला	जुलाई–दिस. 2001
44.	स्वतन्त्रता	स्वरमंगला	अक्टू.–दिस. 2002
45.	देवि! दिव्यभारति!	पल्लवी पत्रिका, संस्कृत विद्यालय, महापुरा, जयपुर	2003
46.	कालिदास प्रेरित कवितापञ्चकम्	स्वरमंगला	अप्रेल–जून 2003
47.	कालिदासः शिरोमणि	संस्कृतमञ्जरी	अप्रेल–जून 2004
48.	"	अक्षरा	2004
49.	देवि! दिव्य भारति!	"	2004
50.	"	नन्दनकल्पतरु	2004

(ख) शोधलेख / आलेख / कथा / नाटक

1.	कालिदासस्य परवर्तीकाव्यकारेषु प्रभावः	भारती	मार्च 1980
2.	बहुगुणा तुलसी	"	जुलाई 1995
3.	गुरोगौरवम्	"	जुलाई 1996
4.	शक्तिस्वरूपा दुर्गा (हिन्दी)	दैनिक नवज्योति (रविवारीय)	20 अक्टू. 1996
5.	संस्कृत दिवस समारोहः 96 (रिपोतार्ज)	भारती	नवम्बर 1996
6.	परिवर्तनम् (लघुकथा)	"	दिसम्बर 1996
7.	गुरुपादपद्मपूजैव पुरस्कारः	श्री जगदीश प्रत्यभिज्ञानम्	1997

8.	गुरुपादपद्मपूजैव पुरस्कारः	भारती	मार्चा 1997
9.	वागर्थो	″	फरवरी 1998
10.	कच्छवंश महाकाव्य–सप्तसर्ग समीक्षा	वैद्यकुलगुरू काव्य वैभवम्	1998
11.	आत्मसमर्पणम् (कथा)	स्वरमंगला	जन.–जून 1998
12.	संस्कृत दिवस समारोहः98 (रिपोतार्ज)	″	जुलाई–सित. 1998
13.	संस्कृत संस्कृतेर्मूलम्	″	अक्टू.–दिस. 1998
14.	स्वातन्त्र्यान्दोलनहुतात्मचतुष्टयी	स्वान्त्र्य सहयोगिनः	1998
15.	आम्रपाली	संस्कृत कथा विथिका	1999
16.	विद्वत्सम्मान समारोहः	स्वरमंगला	जुलाई–सित 1999
17.	सद्बुद्धि देहि (लघुकथा)	भारती	नवम्बर 2000
18.	शिक्षक प्राचीन व वर्तमान परिप्रेक्ष्य	गुरु उपदेश (प्रयाग महात्म्य) महाकुम्भ विशेषांक	जनवरी 2001
19.	राष्ट्ररक्षणम् नाटक	(मौलिक लघु नाटक)	संस्कृत लघु संग्रह
20.	″	स्वरमंगला	जन.–मार्च 2001
21.	″	भारती	मई 2001
22.	आदर्शराज्यम् (मौलिक लघु नाटक)	भारती	फरवरी 2004
23.	प्राचीन व वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षक	विप्रकीर्ति	14 सित. 2002

24.	काव्य के चतुर्दशसर्गों के चौदह रत्न	श्रीराम चरिताब्धिरत्नम्	2004
25.	तस्मै श्री गुरुवे नमः	दैनिक भास्कर (रसरंग परिशिष्ट)	5 सितः 2004
26.	भारतभारतीवैभवम्देशभक्ति	निम्बार्क गौरव ग्रन्थ	2004
27.	आदर्शराज्यम्	अक्षरा	2004
28.	राष्ट्ररक्षणम्	विश्वसंस्कृतम्	वर्ष 38 अंक3–4
29.	पुरातनी शिक्षा व्यवस्था	विप्रकीर्ति	11 अगस्त 2005
30.	राजस्थानीय राष्ट्रपति सम्मानित विद्वज्जन	विप्रकीर्ति	11 अगस्त 2005
31.	भारत भारती वैभवम् देशभक्ति का आदर्श काव्य	दृक् xiii	जनवरी–जून 2005
32.	प्ररोचना (व्याख्यान मणिमाला)	ज.रा. राज. संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर	2005

साहित्य समाज का दर्पण है और संस्कृति का अभिन्न अंग है। समाज साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है और साहित्य समाज को अपनी प्रभविष्णुता के अनुसार प्रभावित करता है। साहित्य जन–जीवन को प्रभावित करता है। मानवीय गुणों का संवर्द्धन करता है, शालीनता का प्रचार करता है, किन्तु इस प्रकार के साहित्य की सर्जना की आशा सभी साहित्यकारों से नहीं की जा सकती। साहित्य के मूल दो पक्ष स्वीकार किये गये हैं। 1. कलापक्ष 2. भावपक्ष, साहित्य जगत में कुछ साहित्यकार ऐसे हैं जो कला को कला के लिये मानते हैं, इस प्रकार के साहित्यकारों की साहित्यिक कृतियों मं कलात्मकता का प्राचुर्य हुआ करता है। उनमें रीति, छन्द, अलंकार आदि की योजना द्वारा कविता कामिनी के शृंगार पर विशेष ध्यान दिया जाता है। ऐसा साहित्य साहित्यकार के पाण्डित्य और उसकी लेखन प्रतिभा का तो प्रदर्शन करता है, किन्तु वह जन–जीवन से दूर होता है। किन्तु कुछ अन्य साहित्यकार ऐसे भी है जो कला को जीवन के लिए मानते हैं जो संवेदनशील है, भावुक है, ऐसे साहित्यकारों की रचनाओं में कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष प्रधान होता है, उनका साहित्य समाज के लिये आदर्श होता है। वह जन–जीवन का संस्पर्श करता है, समाज का पथ–प्रदर्शक होता है।

भाव पक्ष

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' प्रधानतः भक्तिवादी, राष्ट्रवादी तथा समसामयिक वेदनाओं से संत्रस्त प्रधान कवि है। उनकी रचनाओं में वाग्देवी सरस्वती, गणपति, मर्यादा पुरुषोत्तमराम, पवनसुत हनुमान, एश्वर्य की देवी लक्ष्मी, शिव, श्रीकृष्ण, भगवती, गंगा आदि देवी–देवताओं की स्तुति की गई है। डॉ. पाण्डेय की कृतियों में राष्ट्र–प्रेम की भावना कूट–कूट कर भरी हुई है। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने नूतन पीढ़ी को राष्ट्र रक्षा के निमित्त सदैव तत्पर रहने के लिए प्रेरित किया। यद्यपि प्रो. पाण्डेय ने सभी कवियों में सर्वाधिक महत्त्व कविकुलगुरु महाकवि कालिदास को प्रदान करते हुए उन्हें 'शिरोमणि' कहा है। इस आधार पर माँ भगवती के वरद पुत्र (महाकवि कालिदास) आपके अतिप्रिय कवि जान पड़ते है। तथापि प्रो. पाण्डेय की कृतियों में न तो कालिदास की कृतियों के सदृश कल्पना की उड़ान है और न ही आदर्शवादिता प्रत्युत् उन्होंने यथार्थता के धरातल पर रहते हुए ही अपने ग्रन्थों की रचना की है। उन्होंने यथार्थतः जो कुछ देखा व अनुभव किया उसे ही उन्होंने अपनी लेखनी से पुस्तकों में संजोया है, यही कारण है कि उनकी कृतियों में लोक जीवन का चारू चित्रण दिखाई देता है।

सम्प्रति अन्तर्राष्ट्रीय जगत की सबसे विकराल समस्या है आतंकवाद–आतंकवाद की आसुरी आँधी से आज राष्ट्र की पश्चिमी सीमा अशान्त होकर विनाशकारी युद्ध को चुनौती व आमन्त्रण दे रही है। सीमावर्ती राज्यों (जम्मू–कश्मीर, पंजाब, राजस्थान, गुजरात) पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। ऐसी विकट परिस्थिति में काव्य की सौन्दर्यमयी सृष्टि का प्रजापति कवि अपनी अद्भुत सृजनात्मकता से युवकों में नई उमंग व राष्ट्रप्रेम की भावना जागृत कर सकता है। हिम्मत–हार कर हताशु पढ़े हुए व्यक्तियों में नवीन आशा व उत्साह का संचार कर सकता है। कवि की कलम में अपूर्व शक्ति है वह चाहे तो क्षणभर में ही राजा को रंक बना दे और रंक को राजा बना सकता है। कहा भी गया है–

"अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्त्यते।।"
"शृंगारी चेत्कविः काव्ये जाते रसमयं जगत्।
स एव वीतरागश्चेन्नीरसं सर्वमेव तत्।।"
"भवान् चेतनानपि चेतनवद्चेतनानचेतनवत्।
व्यवहारयति यथेष्टं सुकविः काव्ये स्वतन्त्रतया।।"

(ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य)

यही कारण है कि नियमों से रहित, एकमात्र आह्लामयी स्वाधीन व नवरसों से रूचिर वाङ्निर्मित को विधाता कृत भौतिक सृष्टि से भी उत्कृष्ट माना गया है–

"नियतिकृत नियमरहितां हलादैक मयीमनन्यपरतन्त्रताम्
नवरसरूचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।।"

कवि प्रदीप डॉ. पाण्डेय ने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्र अभ्युत्थान का सराहनीय प्रयास किया है। आतंकवादरूपी पिशाच का नाश कर विविध जाति, भाषा, धर्मानुगामी नागरिकों को राष्ट्रीय एकता बनाये रखने के उद्बोधित करते हुए वे कहते हैं कि–

"प्रचण्डशूरवीर हे! विधेहि राष्ट्ररक्षणम्।
विधेहि धीरवीर हे। मदीयराष्ट्ररक्षणम्।।
विधेहि राष्ट्ररक्षणम्।।
मातृभूमिवन्दनं मदेकधर्म संश्रुतम्
आत्मराष्ट्ररक्षणे त्वदेककर्मसंगतम्
आत्मराष्ट्ररक्षणे क्षमा समस्तलोकबोधिका
धर्मकर्मपावना लसेन्मनः सु भावना।।"

आधुनिक समाज में पनप रही भ्रष्टाचार, यौतुक प्रथा, जनसंख्या समस्या, बेरोजगारी, कन्याभ्रूण हत्या जैसी महत्त्वपूर्ण समस्याओं को भी आपने अपनी रचनाओं में अंकित कर पाठकों का ध्यान केन्द्रित किया है। कवि ने 'आम्रपाली' नामक कथा के माध्यम से हमारे समाज में नारी की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुए नारी की महत्ता को प्रतिष्ठापित किया है जैसाकि मनु ने भी कहा है कि–

"न गृहं गृहमित्या गृहिणी गृहमुच्यते।"

उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त प्रकृति चित्रण, संस्कृत की वर्तमान समय में हो रही दुरवस्था, गरीबी व अमीरी के बीच बढ़ते अन्तराल के द्वारा लक्ष्मी की प्रकृति आदि के चित्रण पर भी अपनी लेखनी रूपी तूलीका चलाई है।

कला पक्ष

भावपक्ष के साथ–साथ कलापक्ष भी प्रो. पाण्डेय की कृतियों में दर्शनीय है। आपकी भाषा प्राञ्जल, परिमार्जित व परिष्कृत है। भाषा व शैली की दृष्टि से इनके काव्यग्रन्थ सरस, सरल व प्रभावोत्पादक व प्रवाहमय है। आपकी रचनाओं में माधुर्य व ओज की अपेक्षा प्रसाद गुण की अधिकता

है। गद्य लेखन में सामासिक शैली का साम्राज्य होने पर भी भाषा में कही भी दुरूहता नहीं है। आपने भाषा का बोझिल आडम्बर न रखकर कम से कम शब्दों में भावों की पूरी अभिव्यक्ति की है। डॉ. पाण्डेय का उद्देश्य अपने संदेशों को पाठकों तक पहुँचाना है। अतः भाषा में आलंकारिकता होने पर भी भावों के अनुरूप ही शब्दों का प्रयोग किया है। आपकी कृतियों में कहीं भी भाषागत कृत्रिमता या बनावटीपन नहीं है। अपितु अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविकरूप से आपने अपनी बात कह दी है। अपने उपमा, रूपक, श्लेष, यमक, विरोधाभास, स्वभावोक्ति आदि अलंकारों का कुशलता से यथास्थान सहज व सुन्दर रूप में प्रयोग किया है यथा–

"बुधालयो यो बिबुधलयो यः
सुरालयो यः श्वसुरालयो यः
वरालयो यो विवरालयो यो
हिमालयो यो महिमालयौऽसौ।।"

आपने अपनी कृतियों में आर्या, उपजाति, अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, मालिनी, भुजंगप्रयात, उपेन्द्रवज्रा, विद्युन्माला, स्रग्विणी आदि छन्दों को प्रस्तुत किया है। आपने छन्दों के बन्धन से मुक्त नवीन विधा को अपनाते हुए कई छन्दोमुक्त नवीन विधा में संस्कृत कविता का सर्जन कर विद्वानों के सम्मुख चिन्तन की नई धारा प्रवाहित की है।

उक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि भावपक्ष व कलापक्ष दोनों ही पक्षों की दृष्टि से डॉ. पाण्डेय की रचनाएँ अनुपम व अप्रतिम है। इनके ग्रन्थों की भाषा समासयुक्त होते हुए भी सरल व प्रसाद गुण से युक्त है। व्याकरण का संयत प्रयोग कवि का भाषाधिपत्य द्योतित करता है। स्थान–स्थान पर व्यंग्य शैली का प्रयोग रचना में चारुता प्रदान करता है। भावों के अनुसार आपने अपनी भाषा में परिवर्तन किया है। अपवाद तो प्रायः यत्र–तत्र मिल ही जाते हैं। किन्तु दो–चार अपवादों को छोड़कर सामान्यतया आपकी भाषा स्पष्ट है। आपकी अभिव्यक्ति में शक्ति है तथा थोड़े ही शब्दों में स्पष्ट चित्र खींच देने की कला है। यह सत्य है कि विद्वत् लेखक डॉ. पाण्डेय में अभिव्यक्ति की शक्ति तो है ही साथ ही भावों का भी सूक्ष्म रूप में चित्रण किया है। स्निग्ध पदलालित्य एवं काव्यात्मकता सौष्ठव भी आपकी रचनाओं में है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि डॉ. पाण्डेय साहित्यिक क्षेत्र में सर्वथा नूतन एवं कलापूर्ण काव्यों का सर्जन कर अपनी पृथक् पहचान कायम की है। उनके जीवन का सामान्य परिचय तथा उनकी कृतियों की सामान्य जानकारी प्रस्तुत करने का किंचित प्रयास मैंने इस अध्याय में किया है।

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का संस्कृत साहित्य में अप्रतिम योगदान है। बिल्हण की उक्ति कवि की रचनाओं में अपना साकार रूप प्राप्त करने लगी 'प्रौढिप्रकर्षेण पुराणरीते र्व्यतिक्रमः श्लाघ्यतमः पदानाम्' कवि ने छन्दों के बन्धन से मुक्त नवीन विधा में संस्कृत कविता का सर्जन कर विद्वानों के सम्मुख चिन्तन की नई धारा प्रवाहित की। डॉ. पाण्डेय की रचनाओं को देखने पर प्रतीत होता है कि कवि ने अपने पिताश्री मोहनलाल पाण्डेय की परम्परा से प्राप्त प्रौढ़पाण्डित्य भी स्वतः सन्निहित है और अनेक कविताओं में वह पाण्डित्य चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुआ है। डॉ. पाण्डेय के लेख विभिन्न विश्वविद्यालयों की संगोष्ठियों में व्याख्यान के रूप में प्रस्तुत किए जो आयोजित संस्था द्वारा प्रकाशित हुए है।

अखिल भारतीय श्री निम्बार्काचार्यपीठ के निम्बार्क–गौरव में डॉ. पाण्डेय ने 'भारत–भारती–वैभवम्' देशभक्ति का आदर्श काव्य लेख में लिखा है 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' यह वैदिक वाक्य भूमि के लिए माता का स्थान निर्धारित कर मानव मात्र को उसके पुत्र के रूप में प्रतिष्ठापित करता है। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति का अपनी जन्म–भूमि के प्रति महनीय लगाव रहता है, चाहे वह संसार के किसी भी कोने में रहे, जन्म स्थान उसकी स्मृति का एक अमिट अंश बना रहता है। भगवान श्रीराम ने भी जन्मभूमि के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करते हुए कहा है "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" माता एवं मातृभूमि के प्रति अगाध श्रद्धा का यह भाव भारतीय जनमानस में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत भाषा में रचित 'भारतभारतीवैभवम्' काव्य के रचयिता 'श्रीजी' महाराज निम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर है। 'भारतभारतीवैभवम्' काव्य को विषय के दृष्टिकोण से दो भागों में बाँटा गया है। जिनमें भारत–भारती के ललित स्वरूप को 20 सुमधुर गीतियों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। ये गीतियाँ कला एवं भाव पक्ष के साथ ही रस के दृष्टिकोण से अनुपम सिद्ध होती है। 'भारतभारतीवैभवम्' की गीतियाँ मणिमाला के समान है, जिनमें एक पद कौस्तुभ मणि का साम्य रखता है। आचार्यश्री ने भारत–वन्दना के रूप में अतीव सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत किया है–

"जयति मदीया भारतमाता!
निर्मलसुभगा मणिमयरूपा, रम्या विविधगुणैरवदाता।
सस्यश्यामला परमविशालाः हिमगिरिधवला परिसञ्जाता।
राधासर्वेश्वरशरणस्य, चकास्ति चेतसि भारतमाता।।"

विश्वगुरुत्व की प्राप्ति करवाने वाली हमारी भारतीय संस्कृति एवं भारत देश धन्य है, जहाँ देवता भी जन्म लेने को लालायित रहते है। यह भारतवर्ष आध्यात्मिक उपासना के लिए प्रत्येक मानव के आकर्षण का केन्द्र रहा है और वर्तमान में भी है–

"भारतधरणी परमोपास्या!

वैदिकसंस्कृति केन्द्रस्वरूपा, नित्यं विबुधजनैरभिलाष्या।

इह खलु मुनयः सुधियः सन्तो, वसन्ति सततं तैरभिभाष्या।

श्री राधासर्वेश्वरशरणो, वदति मुदेति मनोहरहास्या।।"

राष्ट्ररक्षा के लिए भी राष्ट्रनायकों, युवकों से राष्ट्र के प्रति समर्पण भाव की अपेक्षा की गई है।

"भारतवर्षदेशस्याखण्डतार्थ सुनायकैः।

तस्य गौरवरक्षार्थ यतनीयं निरूतरम्।।"

इस प्रकार सिद्ध होता है कि रचनाकार की दृष्टि अतिसूक्ष्म है। परिणामस्वरूप यह काव्य भारत एवं भारती के स्वरूप को 'गागर में सागर' के समान संजोये हुए है।

डॉ. पाण्डेय ने 'राजतवातायनम्' राजस्थान संस्कृत–अकादमी, जयपुर द्वारा प्रकाशित पत्रिका में सम्पादक के रूप में कार्य किया। उन्होंने स्वरमङ्गला पत्रिका में भी सम्पादक का कार्य किया। इस पत्रिका की स्थापना वर्ष 1957 में राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा संस्कृत भाषा के प्रचार–प्रसार के लिए राजस्थान संस्कृत जगत में 'स्वरमङ्गला' नाम से संस्कृत पत्रिका के प्रकाशन का श्रीगणेश किया। आदि पूज्य देव गणेश देवता प्रथम सम्पादक भी स्वनामधन्य पं. गणेशराम शर्मा रहे। पत्रिका के सम्पादन में अनेक परिश्रमी विद्वानों का सहयोग रहा। सम्पादकत्वं निर्वहद्भिः पत्रिकाया माङ्गिलकत्वं व्यलेखि राष्ट्रपतिसम्मानितैर्वाचस्पतिपुरस्कार सभाजितैः पं. मोहनलालशर्मामहोदयैरेवम्–

"काव्यप्रभाभासितदिव्यरूपा, विज्ञानलेखैरूचिता गुणाढ्या।

कथासमीक्षा–रसभावरम्या, सेव्या सुधीभिः स्वरमङ्गलेयम्।।"

डॉ. पाण्डेय ने श्रीराम चरित्र के बारे में भी लिखा।

"भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।

हरषित महतारी मुनिमनहारी अद्भुत रूप बिचारी।।"

माता कौशल्या को आनन्द देने वाला तथा मुनियों के मन को भाने वाला भगवान विष्णु के अवतार श्रीराम का यह अद्भुत रूप स्वयं उनकी लीला का ही अंश है।

चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथ ने सन्तान न होने पर कुलगुरु मुनिराज वशिष्ठ के कृपा एवं महर्षि ऋव्यश्रृंग जी के आचार्यत्व में पुत्रेष्टि–यज्ञ सम्पादित कर भगवान् विष्णु से अंशों सहित अवतार लेने का आश्वासन प्राप्त किया था। भगवान् विष्णु का श्रीराम के रूप में अवतार का उद्देश्य लङ्कापति दशानन रावण के वध के साथ–साथ अन्यान्य दानवों एवं दैत्यों का विनाश कर धर्म की स्थापना एवं

सज्जनों की रक्षा करना था। व्रतराज में रामावतार के इस उद्देश्य को बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा है–

"दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च।
दानवानां विनाश्ज्ञाय दैत्यानां निधनाय च।।
परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः।"

महर्षि पाराशर ने इन सभी अवतारों में राम, कृष्ण, नृसिंह तथा शूकर अर्थात् वराह इन चार को ही पूर्णावतार माना है।

"रामः कृष्णश्च भो विप्र! नृसिंहः शूकरस्तथा।
एते पूर्णावतराश्च ह्यन्ये जीवांशकान्विताः।।"

अयोध्या नरेश महाराज दशरथ की तीनों रानियों में कौशल्या से नवनीरदश्याम भगवान् श्रीराम, सुमित्रा से गौरवर्ण लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न तथा कैकेयी से श्यामवर्ण भरत का जन्म हुआ। चारों राजकुमारों ने कुलगुरु वशिष्ठ से शास्त्र एवं शस्त्र की शिक्षा प्राप्त की। मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की पञ्चमी को जनकपुर में श्रीराम का सभी भाईयों के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। भगवान् श्रीराम अवतार का मुख्य उद्देश्य पुलस्त्य के पौत्र तथा विश्रवा के पुत्र लंकाधिपति रावध वध के साथ–साथ साधुओं की रक्षा और धर्म स्थापना करना था। अतः महाराज दशरथ द्वारा निश्चित किये गये राम के राज्याभिषेक के अवसर पर ही महारानी कैकेयी ने वचनबद्ध महाराज से भरत को राज्य व राम को चौदह वर्ष के वनवास का वर माँगा। रघुवंश की मर्यादा एवं पितृवचन की रक्षा के लिए भाई लक्ष्मण एवं पत्नी जानकी के साथ भगवान् राम ने वनगमन किया।

चित्रकूट से प्रस्थान कर भगवान् राम ने दण्डकारण्य में प्रवेश किया। वहीं पर रहते हुए विरोध का वध किया तथा जन्मस्थान में रहने वाली शूर्पणखा को लक्ष्मण ने विरूपित किया एवं दोनों भाइयों ने जनस्थान में विचरण करने वाले शूर्पणखा प्रेरित खर, दूषण, त्रिशिरा आदि चौदह हजार राक्षसों का वध किया। लङ्काधिपति रावण द्वारा सीताहरण के पश्चात् श्रीहनुमान जी ने सौ योजन विस्तृत समुद्र लांघकर सीता का पता लगाया। लङ्का पर आक्रमण करने के लिए सेना के प्रस्थान हेतु समुद्र पर नल और नील द्वारा पुल बाँधा गया, जो 'रामसेतु' के नाम से विख्यात हुआ। भगवान् श्रीराम ने शारदीय नवरात्र में देवी अर्चना की तथा विद्वानों के अनुसार आश्विन शुक्ल दशमी तिथि को श्रीराम ने अपनी विजय यात्रा का प्रारम्भ किया। अतएव यह तिथि विजय–यात्रा के लिए शास्त्र सम्मत मानी गई है–

"आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां तारकोदये।
स कालो विजयो नाम सर्वकार्यार्थसाधकः।।"

भगवान् श्रीराम ने रावणवध एवं लङ्काविजय के बाद राक्षसेन्द्र विभीषण का लङ्काधिपति के रूप में अभिषेक किया तथा पुष्पक विमान से अयोध्या प्रस्थान किया। कार्तिक मास की कृष्णा चतुर्दशी को भगवान् श्रीराम अयोध्या लौटे। दूसरे दिन कार्तिक अमावस्या को राम के आगमन पर दीपोत्सव मनाया गया। श्रीराम ने सौ अश्वमेघ यज्ञ किये तथा असंख्या गायें, स्वर्ण आदि का दान दिया।

संस्कृत साहित्य में शिव डॉ. पाण्डेय ने शिव पूजा पद्धति के बारे में लिखा है कि भारतीय संस्कृति के अध्यात्मवाद का मूल अनादि अनन्त शिव तत्व ही है जो समस्त ब्रह्माण्ड के स्थावर जङ्गमादि विविधरूपों का आधार स्तम्भ है तथा वाङ्मय जगत् का अप्रतिम स्वरूप है। वेद, वेदांग, उपनिषदादि समस्त शास्त्रों में शिव की महिमा का गुणगान नाना प्रकार से किया गया है। संस्कृत साहित्य के शिरोमणि–कवि कालिदास ने तो प्रायः अपनी काव्य रचनाओं में किसी न किसी रूप में शिव–महात्म्य को वर्ण्य के रूप में स्वीकार किया है। रघुवंश महाकाव्य का प्रारम्भ परमपिता परमेश्वर के अर्ध–नारीश्वर रूप को चित्रित करते हुए किया गया है जो समस्त वाङ्मय का आधारभूत शब्द और अर्थ के रूप में व्याप्त है–

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरो।।"

कालिदास ने कुमार–सम्भव के प्रथम श्लोक में शिव की प्रतीकात्मक उपासन करते हुए हिमालय का वर्णन किया है–

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरो तोयनिधि वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।।"

हिमालय के वर्णन से प्रारम्भ यह सम्पूर्ण महाकाव्य शिव को समर्पित है। आधुनिक काल के राजस्थानी संस्कृत साहित्यकारों में मञ्जुनाथ भट्टमथुरानाथ शास्त्री ने भी हिन्दी के छन्दों में शिव की स्तुति की है। इस पूजा पद्धति के प्रणेता पं. मोहनलाल जी पाण्डेय ने भी अनेक शिव स्तुतियों की रचना की जिनमें शिवाष्टमूर्तिस्तुतिः एवं द्वादशज्योतिर्लिङ्गध्यानानि प्रमुख है। यहाँ सौराष्ट्र के सोमनाथ का पद्य प्रस्तुत है–

"सर्पक्ष्वेडावसिक्तं शुभसुरसरिता–शीतलं यस्य शीर्षं
शुक्लं शुक्लांशुभाभिः सिततरवृषभे संस्थितं शान्तमूर्तिम्।
सिन्धोः पार्श्वे प्रभासे शशिविहितनतिं शङ्करं शङ्करं तं
सौराष्ट्रे सोमनाथं शुचितरवपुषं स्वान्तशान्तं नमामि।।"

इस तरह आशुतोष भगवान् शंकर काव्यों के माध्यम से जन–जन के मानस पटल पर विराजमान है।

डॉ. पाण्डेय ने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय की त्रैभाषिकी षाण्मासिकी पत्रिका 'वयम्' के तृतीय अंक में 'संस्कृत वाङ्मय और कृषि विज्ञान' लेख में वेद के इतिहास और पुराणों को प्रमाण मानकर प्राचीन भारतीय कृषि विज्ञान सम्बन्धि तत्त्वों का विशद विवेचन तथा भूमि कर्षण (खेत की जुताई करना), वपन (बीज बोना), लवन (पके सस्य अर्थात् धान की कटाई करना), मर्दन (मड़ाई करके स्वच्द अन्न प्राप्त करना) इन विषयों पर सप्रमाण विस्तार से चर्चा की गई है। कृषि संसाधन, कृषि को पोषण देने वाली फलवती (खाद) और कृषि संरक्षण के उपाय प्रकाशित है।

पृथ्वी को विस्फोरित कर उत्पन्न होने वाली सृष्टि को हम उद्भिज्ज के रूप में स्वीकार करते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में इसके चार भेदों का उल्लेख मिलता है– फलिनी, अफला, अपुष्पा तथा पुष्पिणी। महर्षि मनु ने इसके आठ भेदों को स्पष्ट किया है–

'ओषधयः, वनस्पतयः, वृक्षाः, गुच्छः, गुल्मम्, तृणजातयः, प्रतानाः वल्लयः।' (मनुस्मृति)

प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में कृषि विज्ञान से सम्बद्ध अनेक तात्विक तथ्य मिलते हैं जिसके आधार पर आज भी कृषि के क्षेत्र में नये आयामों को जोड़ा जा सकता है। कृषि शब्द कृष विलेखन धातु से बना है जिसका अर्थ है खेत जोतना। वेदों के अनुसार कृषि करना भी एक विद्या के रूप में जाना गया है। प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध कृषि सम्बन्धी सिद्धान्तों को वर्तमान युगानुरूप तथा भूमि परिष्कार, बीजोपचार, खाद आदि के प्रयोगों के रूप में स्वीकार किया जाना उपयुक्त प्रतीत होता है।

दर्शनशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा भारतीय दर्शन निबन्ध विशेषाङ्क में डॉ. पाण्डेय ने 'शाब्दिक शक्तिविज्ञान' लेख में लिखा है सृष्टि के दृश्यादृश्य, चेतन, अचेतन, चराचर आदि समस्त पदार्थों की गतिशीलता के सिद्धान्त का प्रतिपादन स्वयं जगत् संसार आदि शब्दों से सिद्ध होता है। गच्छति इति जगत्–संसरति इति संसारः, भवति इति भुवनम् आदि शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ भी गतिशीलता की पुष्टि करता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि इस सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ निरन्तर गतिशीलता के सिद्धान्त से जुड़ा है चाहे वह स्थावर हो या जङ्गम। यह गतिशीलता ही सृष्टि का मूल कारण है जिसे हम ब्रह्म नाम से अभिहित करते हैं। क्योंकि बृहति इति ब्रह्म अर्थात् जो वृद्धि को प्राप्त करता है वह ब्रह्म है, जहाँ गति हो, वृद्धि हो वहाँ नाद होना स्वाभाविक ही है। यह स्वाभाविक नाद ही सृष्टि की सूक्ष्म सत्ता का कारक हैं।

आधुनिक विज्ञान से जुड़े लोग इसे प्रकल्पन अर्थात् वाइब्रेशन कहते हैं। इस स्पन्दन को ही क्वान्टम सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करते हुए पैकेट्स ऑफ एनर्जी मानते हैं।

आधुनिक विज्ञान के सृष्टि उत्पादक तत्त्व इलैक्ट्रोन और प्रोटोन की परिकल्पना को इसी से समझा जा सकता है इनमें प्रोटोन स्थिर है ओर इलैक्ट्रोन उसके चारों तरफ चक्कर लगाता है। यहाँ सांख्य दर्शन के अनुसार ब्रह्म अक्षर पुरुष को प्रोटोन और क्रियाशील प्रकृति को इलैक्ट्रोन कहा जा सकता है। शास्त्राकारों ने इस ब्रह्म के दो स्वरूपों का वर्णन करते हुए कहा है–

"द्वे ब्रह्माणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्।
शब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।।"

यहाँ वर्णित शब्दब्रह्म अपरा विद्या का प्रतिपादक है तथा दूसरा ब्रह्म–शब्द ब्रह्म के जान लेने पर ब्रह्म की प्राप्ति का विषय है। महर्षि पतञ्जलि ने परब्रह्म का संकेत करते हुए उसे पूर्णकालावतार भगवान् श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र की कान्ति के रूप में प्रतिपादित किया है–

"यन्नखेन्दुरुचिर्ब्रह्म ध्येयं ब्रह्मादिभिः सुरैः।
गुणत्रयमतीतं तं वन्दे वृन्दावनेश्वरम्।।" (पातञ्जल 77/60)

भगवान् पाणिनी भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं–

"आकाशवायुप्रभवः शरीरात्, समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः।

स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानो, वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः।।1।।

तमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रं, गुहाशयं सम्यगुशन्ति विप्राः।

स श्रेयसा चाभ्युदयेन चैव, सम्यक् प्रयुक्तः पुरुषं युनक्ति।।2।।" (पाणिनीय शिक्षा)

महर्षि पाणिनि के मत से आकाश और वायु के प्रभाव से उत्पन्न नाद शरीर से उर्ध्व गति करता हुआ मुख विवर में आता है और विभिन्न उच्चारण स्थानों से आहत होकर जो वर्ण का स्वरूप धारण कर लेता है वह 'शब्द' कहलाता है। यह शब्द ही परम पवित्र परब्रह्म है।

अखिल भारतीय व्यास महोत्सव में डॉ. पाण्डेय ने 'महाभारत के काव्यार्थ की सिद्धता' लेख में लिखा है भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को सम्पूर्ण विश्व में प्रतिष्ठा दिलवाने का श्रेय वेद एवं वैदिक साहित्य को जाता है जिसकी निरन्तरता बनायें रखने के दो दृढ़ आधारस्तम्भ लौकिक साहित्य में परिगणित है। महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण तथा महर्षि वेद व्यास कृत महाभारत।

ऋग्वेद को आज सम्पूर्ण विश्व की प्रथम लिखित ग्रन्थ–थाती के रूप में सर्वमान्य सिद्धान्त से स्वीकार कर लिया गया है जो निर्विवाद सत्य है। सर्वप्रथम हम काव्य के बीज यहीं देखने का प्रयास करते हैं। कवि शब्द का प्रथम इन्द्र के लिए हुआ है और उसे असीम ओजस्वी युवा कवि के रूप में वर्णित किया गया है–

"युवा कविरमितौजा अजायत"। (ऋग्वेद 1/11/4)

कवि सत्य धर्म का रक्षक होता है अतः इसकी स्तुति की जानी चाहिए।

"कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणम्।" (ऋग्वेद 1/2/7)

महाभारत कृष्ण द्वैपायन महर्षि वेदव्यास का वाङ्मय काव्य है। लौकिक साहित्य में रामायण और महाभारत ये दोनों ग्रन्थ ऐसे है जिन पर अधिकांश परवर्ती साहित्य की रचना हुई। इसी कारण इन्हें उपजीव्य काव्य भी कहा जाता है। महाभारत अपने महत्त्व और विपुल के कारण ही अन्वर्थनाम है। इस महत्त्व का मूल आधार है कि भारत में सम्पूर्ण वेदों के गुप्ततम रहस्यों के साथ उनके शिक्षा, कल्प आदि छः अंगों एवं उपनिषदों का भी विस्तार से वर्णन किया गया है–

"ब्रह्मन् वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितं मया।
सांगोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया।।" (आदिपर्व प्रथम अध्याय, 62)

इसके साथ–साथ अन्य सभी शास्त्रों का सार भी महाभारत में संकलित किया गया है जिनमें समस्त स्मृतियाँ, पुराण, ज्योतिष, न्याय, शिक्षा, चिकित्सा आदि प्रमुख है। महर्षि वेदव्यास ने महाभारत की रचना पूर्व में मानसपटल पर अंकित कर ली थी परन्तु भगवान् गणेश की अनवरोध लिखने की शर्त पर समय–समय पर उसमें गूढ़ ग्रन्थियों का निपातन किया जिन्हें समझने में कवियों के सामर्थ्य का भी परीक्षण हो जाता है। इससे काव्य में प्रौढ़ि आ गई। इन गूढ़ग्रन्थियों के श्लोकों की कुल संख्या 880 है–

"अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च।
अहं वेदिम शुको वेत्ति वा न वा।।8।।" (आदिपर्व प्रथम अध्याय)

इस विशालकाय महाभारत की रचना कोई सरल कार्य नहीं है, इसके लिए महर्षि वेदव्यास ने अपने दैनन्दिन कार्य के दायित्व को पूरा करते हुए तपस्या और नियम का आश्रय लेकर निरन्तर तीन वर्षो तक अथक साधना की, तब जाकर महाभारत अपना मूलरूप धारण कर सका–

"त्रिभिर्वर्षैर्लवधकामः कृष्णद्वैपायनो मुनिः।।41।।
नित्योत्थितः शुचि शक्तो महाभारतमादितः।
तपोनियममास्थाय कृतमेतन्महर्षिणा।।42।।"

अपि च

"त्रिभिवर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।

महाभारतमारण्यानं कृतवानिदमद्भुतम।।52।।" (आदिपर्व, 62वाँ अध्याय)

महाभारत धर्म, अर्थ और काम का प्रतिपादन यथावसर करता है अतः इसे उन शास्त्रों के नामो से भी अभिहित किया जाता है। वस्तुतः भारतीय सभ्यता और संस्कृति में ही पुरुषार्थ चतुष्टयी की परिकल्पना दृष्टिगोचर होती है। विश्व की अन्यान्य संस्कृतियों में केवल अर्थ और काम में ही प्राधान्य पाया है जो कि केवल इहलोक के साधक है। यही कारण है कि भगवान् मनु ने पृथ्वी के समस्त मानवमात्र के लिए इस भारतवर्ष में उत्पन्न होने वाले अग्रजन्मा से अपने–अपने चरित्र की शिक्षा लेने का डिण्डिमघोष किया है–

"एतद्वेशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।" (मनुस्मृति द्वितीयाध्याय)

भारतवर्ष में धर्म की प्रधानता प्रारम्भिक काल से ही रही है अर्थात् मानवमात्र जो कुछ कार्य करे उसमें शास्त्रसम्मत, नीतिपूर्वक कर्त्तव्य का विवेकपूर्ण निर्वहण हो तथा वह कार्य सर्वजनहिताय और प्राणिमात्र का कल्याणकारक हो तो धर्म की श्रेणी में परिगणित किया जा सकता है। ऐसी उदात्तभावना का दर्शन भारतीय संस्कृति के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है। सम्पूर्ण महाभारत का तथा महाभारतयुद्ध का परमलक्ष्य यही रहा है जिसकी उद्घोषणा स्वयं भगवान् कृष्ण ने गीता में की है–

"यतो धर्मस्ततो जयः।"

अर्थात् किसी भी प्रसंग में किसी भी व्यक्ति द्वारा शास्त्र विधि सम्मत किया गया कार्य धर्म है जो कि निश्चित रूप से जय अर्थात् सफलतादायक सिद्ध होता है। भगवान् वासुदेव सत्य है, पवित्र है, पुण्य है, शाश्वत है, सनातन, स्थिर ज्योति है जिनके दिव्य कर्मों का गुणगान ऋषि–महर्षि अनादिकाल से करते आये हैं। यह परम सत्य ही मंगलकारी शिव है। जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण का सुन्दर शिवस्वरूप सत्य है, वहीं विजय है–

'सत्यमेव जयते नानृतम्'।

अतः परम ब्रह्म का प्रतिपादन करते हुए मोक्ष प्राप्ति के उपायभूत महाभारत को यदि किसी ने नहीं सुना तो उसका जन्म निरर्थक ही है–

"गीता विदुरवाक्यानि धर्माः शानतनवेरिताः।

न श्रुता भारते येन तस्य जन्म निरर्थकम्।।" (सरस्वतीकण्ठाभरणम्, प्रथम परिच्छेद)

ऐसे अमूल्य रत्न महाभारतकाव्य के रचयिता महर्षि वेदव्यास के लिए अपनी छन्दोरहित रचना की पुष्पाजंलि समर्पित करते हुए डॉ. पाण्डेय अपना अभिवन्दन प्रस्तुत करते हैं–

"वेद विस्तारको व्यासः
घनघटापूर्णगगनं
पराशरचित्तमननं
कोऽपि हरेरंशावतारः
भविता विश्वविश्वतारः
आषाढ़पूर्णिमा तदाऽऽस।
वेद विस्तारको व्यासः।।"

'कालिदास की परवर्ती साहित्यकारों पर छाप' प्रस्तुत किया। तथा अपने उत्कृष्ट शोध पत्र को प्रस्तुत करने के लिए विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा पुरस्कृत किया गया। डॉ. पाण्डेय ने लिखा है, कविकुलगुरु महाकवि कालिदास की कृतियों ने सम्पूर्ण विश्व के सहृदयों के मन को हठात् आकृष्ट किया है और उनका प्रभाव परवर्ती साहित्य पर स्पष्टतः परिलक्षित होता है। कालिदासीय काव्यों के भावों, कलापक्षों, अलंकारों आदि ने परवर्ती साहित्यकारों के अन्तर्मन को इस अतिसूक्ष्म स्थिति तक झकझोर दिया है कि उन्होंने अपने काव्यों में चाहे वह भावाभिव्यक्ति हो और चाहे अलङ्कारों का प्रायोगिक पक्ष या फिर कलापक्ष सभी दृष्टियों से कालिदास की छाया को स्वीकार किया है।

कालिदासीय कुमारसम्भव का अधोलिखित पद्य अमरूकशतक में तथा हिन्दी के महाकवि बिहारी द्वारा यथावत कल्पित किया गया है–

"कैतवेन शायिते कुतूहलात्पार्वती प्रतिमुखं निपातितम्।
चक्षुरुन्मिषति सस्मितं प्रिये विद्युता हतमिव न्यमीलयत्।।"

अमरूक शतक में–

"शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनै–
निर्द्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।
विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीं
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता।।"

नारी देह के लिए लता और दीपशिक्षा की उपमा तो साहित्य जगत् में चलते–चलते गोस्वामी से आज तक के कवियों में रूढ़ हो गई है। कालिदास ने पार्वती के लिए लता की उपमा दी है–

'आवर्जिता किञ्चिदिव स्तनाभ्यां वासो वसाना तरुणार्करागम्।

पर्याप्तपुष्पस्तबकावनम्रा सञ्चारिणी पल्लविनी लतेव।।'

मृच्छकटिक में महाकवि शुद्रक ने वसन्तसेना के लिए लता की उपमा इस प्रकार दी है–

'त्वं वापीव लतेव नौरिव जनं वेश्यसि सर्वं भज।' (1/32)

रघुवंश में इन्दुमती के लिए दी गई 'दीपशिखा' उपमा गङ्गा तो निरन्तर प्रवाहशील है।

'सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं त्यतीयाम पतिंवरा सा।

नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।।'

इनका अनुकरण महाकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस में विवाहपूर्व वाटिका प्रसङ्ग में सीता के लिए इन शब्दों में किया है–

'सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई।

छविगृहं दीपशिखा जनु बरई।।' (रामचरितमानस 1/230/7)

विदेशी भूमि पर दूतकाव्य परम्परा का प्रभाव शिलर नामक जर्मन कवि पर भी पड़ा और उसने मेघदूत पढ़ने के बाद 'मैरिया स्तुअर्ट' नामक काव्य बनाया जिसमें जेल में बछन स्कॉटलैण्ड की साम्राज्ञी को मेघ के माध्यम से सन्देश भिजवाया। जर्मन कवि गेटे ने शाकुन्तल नाटक के अनुसार ही अपने नाटक 'फाउस्ट' की प्रस्तावना का निर्माण किया। इस प्रकार कालिदास की कृतियाँ आज भी साहित्यकारों पर अपनी अमिट छाप छोड़ रही है।

'नवरसपरिपूर्णं शब्दवाच्यप्रतीतं

स्वकृतिषु कमनीयं काव्यकेलिप्रकर्षम्।

ध्वनयति सकलं यो भारतीभासमानः

कविकुलगुरुवर्य्यः कालिदासो ंगुरुर्मे।।'

डॉ. पाण्डेय ने संस्कृत वाङ्मय में नारी चित्रण–में 'नारी भूमिका की व्यापकता' लेख में लिखा है कि भारतीय दर्शन नारी के स्वरूप को अर्धनारीश्वर के रूप में देखता हैद्व जो परस्पर सामञ्जस्य, समन्वय एवं सहयोग भावना की उत्कृष्ट अभिव्यञ्जना का उदाहरण विश्व में कहीं अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता है। नारी का माहात्म्य स्वयं उसके लिए प्रसङ्गानुकूल समय–समय पर दी गई संज्ञाएँ प्रतिपादित करती है। एक ओर जहाँ कान्ता, ललना, रमणी आदि नाम उसके रमणीय स्वरूप का बोध करवाते हैं वहीं दूसरी ओर नारी, जाया, स्त्री आदि संज्ञाएँ उसके गुण, धर्म, कर्म एवं महत्त्व को प्रदर्शित करती है।

दश उपाध्यायों से आचार्य, सौ आचार्यों से पिता और हजार पिताओं से माता का गौरव अधिक हैं–

'उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते।।' **(मनुस्मृति 2/145)**

धार्मिक कृत्य, सुख, सन्तान यहाँ तक कि अपनी और पितरों की भी स्वर्ग प्राप्ति स्त्री की सहधर्मिता से ही सम्भव है–

'अपत्यं धर्मकर्माणि शुश्रूषा रतिस्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह।।' **(मनुस्मृति 9/28)**

नारी समस्त सुखों के साथ–साथ एक अपूर्व मातृत्व सुख का अनुभव कर वात्सल्य–सागर में डूबती उतरती संसार में अपने आपको धन्यतम मानती है, यह मातृत्व ही उसे पुरुष से भी अधिक सर्वोच्च स्थान प्राप्त करवाता है, हमारे शास्त्र नारी की वन्दना करते हुए स्पष्ट कहते हैं–

'पुरुषः पुत्ररूपेण भार्यामाश्रित्य जायते।
मातरं पितरं चोभौ दृष्ट्वा पुत्रस्तु धर्मवित्।।'

डॉ. पाण्डेय ने 'श्रावणी' संस्कृत विभाग की पत्रिका में 'शिक्षे–प्राचीन व वर्तमान परिप्रेक्ष्य में' लेख में लिखा है कि संसार का मानव मात्र अज्ञान के गहरे अंधेरे में थपेड़े खाता रहता है। जब तक उसको सही मार्गदर्शक के रूप में कोई शिक्षक अंधे की लाठी बनकर कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान कराते हुए प्रकाश की ओर नहीं ले जाता तब तक वह पशुवत विचरण करता रहता है। गुरु का महत्त्व तथा अर्थ का प्रतिपादन निम्न श्लोक से प्रदर्शित होता है–

'अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।'

ज्ञानरूपी अंजन की शलाका से अज्ञानरूपी अंधकार का नाश कर आँखे खोलने वाला गुरु ही है। इसलिए गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश की श्रेणी में ला खड़ा कर देना कोई आश्चर्य नहीं है।

बालक को प्रथम ज्ञान माता द्वारा करवाये जाने से प्रथम गुरु 'माँ' तथा उपनय संस्कार के समय गायत्री मंत्रोपदेश करने से 'पिता' द्वितीय गुरु तथा विद्या का अध्ययन करवाने वाला 'शिक्षक' गुरु की तीसरी श्रेणी में रखा गया है। मनु ऋषि के अनुसार–

'निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि।
संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते।।'

अर्थात् गर्भाधानादि संस्कारों को यथाविधि करवाकर अन्नादि से पालन करते हुए पढ़ाने वाला ब्राह्मण गुरु कहलाता है। गुरु का प्रयोग कोशानुसार–बृहस्पति, श्रेष्ठ–शिक्षक, पिता, दुर्भर आदि अनेक अर्थों में किया जाता है।

वास्तविक अर्थों में शिक्षा वही है जो मानव मात्र के लिए सच्चरित्र, सदाचार, परोपकार, कल्याण भावना, विवेक आदि संस्कारों को प्रचारित–प्रसारित कर उसका वैचारिक स्तर ऊँचा उठाये। महाकवि कालिदास के अनुसार–

'उपदेशं विदुः शुद्धं, सन्तस्तमुपदेशिनः।
श्यामायते न युष्मासु या काङ्चनमिवाग्निषु।।'

जैसे आग में डालने से सोना काला नहीं पड़ता वैसे ही जिस शिक्षा में शिक्षक के सिखलाने में किसी प्रकार की भूल दिखलाई न पड़े उसे ही सच्ची शिक्षा कहते हैं।

डॉ. पाण्डेय ने 'सुदर्शनालोक' स्मारिका में 'कलात्मक सृष्टि–विज्ञान' लेख में लिखा है कि भगवान् विष्णु ही सम्पूर्ण सृष्टि की उद्भावना कर देव, मनुष्य, पशु–पक्षी आदि योनियों में लीलावतार ग्रहण करते हैं तथा समस्त जीवों का पालन–पोषण करते हैं–

'भावयत्येष सत्तवेन लोकान् वै लोकभावनः।
लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु।।' **(भागवत–1/2/34)**

कलाओं से परिपूर्ण इस दैवीय–सृष्टि को करने वाले अनादि भगवान् शिव ही है जिनकी भावमयी उपासन करते हुए प्राणिमात्र सांसारिक देह त्याग कर मोक्ष प्राप्ति कर सकता है–

'भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम्।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्।।'

दैवीय सृष्टि–कारक इन कलाओं का संसार अद्भुत है जहाँ सत्त्व, रज और तम गुणों का साम्राज्य रहता है, इन तीन गुणों के सम्मिश्रण में होने वाली न्यूनाधिक्य की स्थिति ही सांसारिक सृष्टि को अनन्तता प्रदान करती है और सृष्टि चित्र विचित्र स्वरूपों को धारण कर रमणीयता प्राप्त करती है।

डॉ. पाण्डेय ने 'संस्कृति सन्देश' में 'शिव और शक्ति' लेख में लिखा है कि सांसारिक प्रत्येक मानव प्रारम्भ से ही अनेक उत्तरदायित्वों का भार लेकर जन्म लेता है जिनमें तीन उत्तरदायित्व अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं, जिन्हें भारतीय संस्कृति में ऋण की संज्ञा दी गई है और वे हैं– देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण, इन तीनों की पूर्ति करने के पश्चात् ही मनुष्य को परम पुरुषार्थ रूप मोक्ष में मन लगाना चाहिए अन्यथा वह अधोलोकगामी होता है–

'ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।

अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः।।' **(मनुस्मृति 6/35)**

ईश्वर में शक्ति उसी प्रकार अभिन्न रूप से स्थित है जिस प्रकार चन्द्ररश्मि चन्द्रमा से अभिन्न है। शक्ति सहज रूप है और जगत् उसकी अभिव्यक्ति है। सच्चिदानन्द परब्रह्म की स्वाभाविक जो परा शक्ति है वही शक्तितत्त्व है।

'ऐश्वर्यावचनः शश्च शक्तिः पराक्रमः एव च।

तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता।।' **(श्रीमद्देवी भागवत 9/2/10)**

भगवती शक्ति नित्या ब्रह्मलीला प्रकृति है अग्नि में दाहकता, चन्द्रमा में प्रभा और सूर्य में कान्ति की भांति वह सदा आत्मा से युक्त है–

'शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद् व्यतिरेकं न वाञ्छति।

तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहकयोरिव।।' **(शक्ति दर्शन)**

माँ भगवती की उपासना शाक्त–सम्प्रदाय की आधार–शिला है। इसी सम्प्रदाय का प्रतिफलक है। शैव–सम्प्रदाय जिसमें आशुतोष भगवान् शिव की उपासना की जाती है। शिव और शक्ति का समन्वित स्वरूप शिवलिंग में प्रतिभासित होता है, शिवपुराण, विद्येश्वर संहिता में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन मिलता है–

'लिङ्गमर्थं हि पुरुषं शिवं गमयतीत्यदः।

शिवशक्त्योश्च चिन्ह्स्य मेलनं लिङ्गमुच्यते।।'

शिव और शक्ति, श्रद्धा और विश्वास का मूल प्रणवरूप ओंकार ही सर्वस्व है वही अनादि, अनन्त, निर्गुण, निराकार ब्रह्म है तथा स्वेच्छा से स्पन्दित हो सृष्टिकारक बनता है।

'शरणागति' पत्रिका में डॉ. पाण्डेय ने 'प्रपन्नपरिजात का कर्मोपदेश' लेख में लिखा है कि भगवान् कृष्ण प्रपन्न अर्थात् शरण में आये व्यक्ति के लिए पारिजात अर्थात् सर्वमनः कामनापूरक है। सारथी बन चाबुक ग्रहण करने वाले इन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण ने ज्ञान–मुद्रा में गीतारूपी अमृत का दोहन किया–

'प्रपन्नपारिजाताय तोत्त्रवेत्रैकपाणये।

ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः।।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में उपदेश देते हुए अर्जुन को शरणागत होने का आदेश किया कि हे अर्जुन तू सांसारिक सम्पूर्ण पालन योग्य धर्म को छोड़ और एकमात्र मेरी शरण मैं आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पाप अर्थात् पापकर्मों के फल से मुक्त करुँगा–

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।' **(गीता 18/66)**

भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं– कि व्यक्ति को कर्म करने का अधिकार है फल प्राप्ति का नहीं। मनुष्य को फल की इच्छा नहीं होनी चाहिए और न ही कर्म से पलायन की। यह गीता का उपदेश है–

'कर्मण्यवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा ते कर्मफलहेतुर्भूमा ते सङ्गोऽर्स्तवकर्मणि।।' **(गीता 2/47)**

समय पर कर्म करते रहो सफलता स्वतः मिलती चली जाएगी। सिद्धि कर्म के साथ नित्य जुड़ी हुई है– 'सिद्धिर्भवति कर्मजा'।

कर्मयोग और भक्तियोग की अपेक्षा ज्ञानयोग का मार्ग श्रेष्ठ बतलाया गया है। ज्ञान योग की मूल भावना है जो ईशोपनिषद् में मिलती है– **'अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।'**

रजतपट का मुद्राराक्षस– 8 फरवरी 2006 की प्रातःकालीन 9.00 बजे की वेला संस्कृतज्ञों, संस्कृतप्रेमियों को राजस्थान के श्रेष्ठतम छविगृह राजमन्दिर की ओर बरबस आकृष्ट कर रही थी, वहाँ उपस्थित संस्कृत शिक्षक छात्र तथा अनुरागी सभी का चर्चा विषय था– 'मुद्राराक्षसम्' संस्कृत वाङ्मय के रूपक–साहित्य की महनीय कृति 'मुद्राराक्षसम्' जिसे महाकवि विशाखदत्त ने अखण्ड भारत राष्ट्र के स्वप्नद्रष्टा, कूटनीतिज्ञ आचार्य चाणक्य को कौटिल्य के रूप में प्रस्तुत किया। इसी नाट्य कृति को बड़े पर्दे पर प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया जयपुर के 'व्यास बालाबक्ष शोध संस्थान' के बैनर तले आचार्य उमेश शास्त्री ने।

इस फिल्म में संस्कृत गीत 'मृद्वीका ऋषिता मया.....प्रिया। मामवलोकय रे, तर्पय रे तारूण्यम्' ने पूर्ण संयोग श्रृंगार से दर्शकों को आप्लावित किया, वहीं 'मा रट, मा रट, मा रट रे व्याकरणम्, त्वं पठ, त्वं पठ, त्वं पठ रे कामाचरणम्' गीत ने प्रेमविह्वला नायिका की अधीरता को अभिव्यक्त किया है। 'किं करोभ्यहम् कुत्र याम्यहम्' गीत में करुण रस का उत्कर्ष है तो 'यमराजाय नमो नमः' में सामान्य घटना को प्रस्तुत कर मनोरंजन की स्थिति प्रस्तुत की गई है। गीतकार डॉ. हरिराम आचार्य, आचार्य उमेश शास्त्री तथा गिरिजा प्रसाद 'गिरीश' इन तीनों ने ही आत्मानुभूत रस–संवेग को शब्दों के माध्यम से रसिकों तक संक्रान्त किया है।

अतः 'मुद्राराक्षसम्' संस्कृत भाषा की एक अपूर्व अभिव्यक्ति देने वाली प्रथम सफल संस्कृत फिल्म कहीं जा सकती है। इस संस्कृत फिल्म के निर्देशक श्याम सोनी, निर्माता आचार्य उमेश शास्त्री तथा संस्कृत संवाद लेखक 'डॉ. ताराशंकर शर्मा' पाण्डेय है।

डॉ. पाण्डेय ने 'कोऽपि वंशीमनोज्ञः' में अखिल भारतीय निम्बार्क महासभा अध्यक्ष मेवाड़ महामण्डलेश्वर श्री महंत मुरलीमनोहरशरण शास्त्री जी को ऋद्धांजलि देते हुए–

'भक्तैः प्रचारसरणौ सततं रतैर्यै,
र्मेवाड़राज्यगरिमा निजकर्म्मपूरैः।
पूणीकृतो विविधसाधुविचारशीलेः
पूज्या महन्तमुरलीसुमनोहरास्ते।।'

डॉ. पाण्डेय ने 'वर्णवाग्विलासम्' काव्य में वर्णक्रमाधारित पद्य का निर्माण किया है जो अपने आप में अद्भुत है। प्रस्तुत पद्य भगवान् कृष्ण के बारे में है–

'कृष्णः खगेन्द्रं गरुडं धनाङ्गं,
चारुच्छटाजुष्टलाञ्चितायाम्।
टङ्गा–ठुकेनोड्डयनोपढौकोऽ–
णीयस्तमिस्त्राथुडितं दिशानः।।
धानुष्कनन्दापरिणाहफुल्लो
बभाण भूमौ मतयादवेन्द्रः।
रात्रिन्दिवं लालसवन्द्यमानः
शिवात्मषड्दर्शनसिद्धिहेतु।।'

अर्थात् कल्याणकारी छः दर्शनों की सिद्धि के लिए कारणभूत, धनुर्धर अर्जुन के आनन्द के विस्तार से प्रसन्न रहने वाले, अभिलाषा रखने वाले, व्यक्तियों द्वारा रात–दिन वन्दना किये जाते हुए (गरुड़ से प्राप्त) उड़ान की भेंट स्वीकार करने वाले तथा पाँव की ठोकर से (संकेत प्राप्त कर) सुन्दर छटा से व्याप्त प्रकाशमय भूमि की ओर निर्देश करते हुए सर्वपूजित यादवेन्द्र भगवान् कृष्ण ने बची हुई थोड़ी सी रात्रि के अन्धकार से आच्छादित बलवान् खगेन्द्र गरुड़ को कहा।

'वर्णवाग्विलासम्' में डॉ. पाण्डेय ने अपने नाम को लेकर ही पद्य की रचना की है। ऐसी रचना अनुपम व अद्भुत है। प्रस्तुत पद्य है–

'तारापतेः पावनरश्मिपूता,
रागेण शम्भोर्गिरिजात्मसारा।

शंकासमाधानकरं कलांशं

कदापि कर्तुं न करे शशाक।।

रमपिति–वाग्वरामाचकार

शर्मास्तु सम्पूर्णयशस्सुशर्मा।

पाण्डेयवर्णैर्वर–वाग्विलासं

श्रीकृष्णकाव्यञ्च सुपूर्णमस्तु।।'

डॉ. पाण्डेय ने 'राष्ट्रगौरवम्' काव्य में तिरङ्गे के बारे में बताया है। कि भारतीय देशप्रेम की खातिर अपने प्राणों की आहूति भी दे देते हैं पर तिरङ्गे पर कोई आँच नहीं आने देते। तिरङ्गा भारतीयों के स्वाभिमान का प्रतीक है–

'आकाशोत्तुङ्गता या ध्वजपरिधिगता राजते सा हि नित्यं,

वायोश्चांचल्यशोभा लहरिपरिसृतौ लोक्यते देशभक्तैः।

कौसुम्भे कान्तिरग्नेः सलिलसरलता घौतवर्णेः च चक्रं,

गोत्राया गौरवं युद्धरितविलसितौ पंचतत्त्वं त्रिरङ्गे।।'

'वेदांङ्गवाणी' में डॉ. पाण्डेय ने वेदान्त वाणी के बारे में बताया है कि वेदाङ्ग वाणी की व्याख्या करने वाले विद्यालङ्कारभूत वेद पारङ्गत प्रसिद्ध विद्वान् अपने निर्मल वचनों से वेदाङ्ग – वाणी को विभूषित करें।

'व्याख्यात्वेदाङ्गवचोविलासा,

विपश्चितो वेदविशारदा वै।

विद्यावतंसा वलयन्तु वित्ता,

वेदाङ्गवाणीं वचनैर्वदातैः।।'

डॉ. पाण्डेय के 'वर्णवाग्विलासम्' और 'राष्ट्रगौरवम्' दोनों खण्डकाव्य है जो रचना निरन्तरता में है और पूर्णता की ओर अग्रसर है। डॉ. पाण्डेय ने परमादरणीय–प्रो. युगलकिशोरमिश्रात्मजस्य आयुष्मतः श्री अरविन्दस्य 18 नवम्बर 2010, दिनाङ्के माङ्गलिकपरिणयावसरे प्रस्तुता 'दोहाचतुष्टयी'–

छायो उच्छब वयाह को न्योत्या सब दिस ओर।

नौबत बाजे द्वार पर श्री श्री युगल किशोर।।1।।

निस दिन घर डेरो हुयो पावण पूग्या आय।
घणी मान मनुहार सूँ व्यञ्जन सारा पाय।।2।।
पीठ्ठा हाथ कनुप्रिया अरविन्द दूल्हेराज।
द्वार पधारो देवगण सकल सुधारो काज।।3।।
दूधाँ नहाय नववधू पूत होय कुलदीप।
सगठ्ठा नित आसीस दे मोती सोहे सीप।।4।।
कुंकूँ पतरी मिली भली भेजूँ दोहा चार।
म्हारी मंगल कामना दो दूनी पर चार।।5।।

डॉ. पाण्डेय ने परमसुहृत् डॉ. मण्डन शर्मा के पौत्र जन्मोत्सव पर 'मंगल कामना' प्रेषित करते हुए कहा–

'मण्डन घर पोतो हुयो भवसागर को पोत।
कुल गंगा प्रवाह ज्यों निर्मल जल को सोत।।1।।
द्वार चौबार सब जगाँ बांधी वन्दन वार।
गणपत! घर परिवार पर किरपा अपरम्पार।।2।।
सगठ्ठो घर मण्डिल हुयो या छै कुल की रीत।
चौक बीज सुहासण्या गावै मंगल गीत।।3।।
आत्मबीज फठ्ठ फूठ्ठ कर जायो पूत सूपत।
'चिरं जीव' आसीस दे घर आया आहूत।।4।।
व्याज प्यारो मूठ्ठ सूँ राखो हृदां लगाय।
कला कला जुड्याँ भला चन्दा बढ़तो जाय।।5।।
मन हररण्यो सुण वार्ता आया पंचाँ पाँच।
म्हारी मंगल कामना भेजूँ दोहा पाँच।।6।।

डॉ. पाण्डेय द्वारा राष्ट्रपति सम्मानित डॉ. हरिराम आचार्य रा 'अमृत महोत्सव' पर घणा–मान सूँ 'आचार्याभिवन्दन–दोहादशी'–

कण–कण में सोनो मिले पग–पग चारुँ मेर।
वसुन्धरा की मरुधरा यो है जैसलमेर।।1।।
घर–घर जाया गीगला गावै गीत अमोल।
प्यारो लागै पावणो निसरै मीठा बोल।।2।।
धरती उगठ्ठे नित घणी सम्पत सोणी कूत।

ई धरती जायो भलो होवे पूत सपूत।।3।।
राम नाम की मीसरी मीठा हरि का बोल।
'हरिराम' मिल्याँ भला रसना मीठो घोठ्ठ।।4।।
लुप्ता दीखै सुरसती मरहट–वधू–कुचाभ।
कविता–कस्तूरी बसै कविपुंगव–मृगनाभ।।5।।
चार चाँद लागै सदा साहिल मिल संगीत।
कुल कला करामात, सूँ निपजै कविता प्रीत।।6।।
'मेंहदी रंग लाएगी', 'भूल न जाना' आप।
मन में ऊठे 'बवंडर' आछी छोड़ी छाप।।7।।
'ये पत्ते तूफान के' बढ़े 'दायरे' आज।
'कैदी के बच्चे' हुये देख 'विदूषक' काज।।8।।
कविता वनिता की छटा चढ़े कन्त के कन्ध।
कीरत–वल्ली नित फठ्ठै फैले गन्ध–सुगन्ध।।9।।
चम चम चमकै चाँदनी 'तारा' टिम टिम रात।
धोराँ धरती आँगणां 'शंकर' मीठी बात।।10।।
दोहा वन्दन मैं करुँ मन में लिया हुठ्ठास।
वरद हस्त बण्यो रहै जीवन भर की आस।।11।।

'फलै कीरति व्यास' में डॉ. पाण्डेय ने व्यास बालाबक्ष शोध संस्थान के आचार्य उमेश शास्त्री जिन्होंने संस्कृत फिल्म 'मुद्राराक्षसम्' का सफल निर्देशन किया–

'वैष्णव बल पढिया घणा कियो भागवत पाठ।
राजाव्यास बालाबक्ष पायो ठाठ 'र' बाठ।।1।।
मान–पान सम्मान सब पाया धी कै पाण।
बुद्धी बल पूज्या घणा जैपर राज–धराण।।2।।
व्यास वंश जाया बहुत रूपनारायण धाम।
मुखिया भरत गोरधना खूब कमायो नाम।।3।।
ताँका छः पूताँ बीच हुया विशेष उमेश।
ज्यूँ षणमुख होता भलाँ पूजै जगत गणेश।।4।।
काठ्ठी आखर रूप में उजठ्ठी कीरति माँय।
उजठ्ठी काठ्ठी रात सो रूप सुरसती छाय।।5।।

काठ्ठी किरपा सूँ भलो बणग्यो कालिदास।
काठ्ठी मूरत पूज यूँ फलै कीरति व्यास।।6।।
करियो करम उमेश यूँ पूरी मन में ठान।
थर्प्यो पुरखा नाम सूँ, व्यास शोध–संस्थान।।7।।
कविता–वनिता 'मेनका' करै पुरस्कृत हाथ।
'कण्व–कन्या' दियो 'उत्तरशकुन्तला' छै साथ।।8।।
'रसकपूर' के कारणां जोड़ी मेश उमेश।
उमेश 'मोह न' ही रह्यो बण्यो शेष महेश।।9।।
'मुद्राराक्षस' फिलम रच करियो बहुत कमाल।
संस्कृत का परचार सूँ कर दी पेश मिसाल।।10।।
ग्रहां की गती देखतां विद्या ज्योतिष आय।
सूक्ष्म रूप प्रकट भयी 'व्यास–सूत्र' कहलाय।।11।।
शिव सायुज्य उमेश को यों 'तारा' मुस्काय।
नैण भरा 'राजीव' नै 'शंकर' गठ्ठै लगाय।।12।।
ग्यारह दोहा याद में मुख सूँ निसरा जाय।
भावां बीच उमेश जी 'ताराशंकर' पाय।।13।।

राजस्थानी साहित्य में योगदान–आदिशंकराचार्य द्वारा आर्या छन्द में विरचित 'प्रश्नोत्तर–रत्नमालिका' का डॉ. पाण्डेय द्वारा किया गया 'राजस्थानी भाषा अनुवाद', 'साहित्य अकादमी' नई दिल्ली से प्रकाशित है। यह काव्य आध्यात्मिक विषयवस्तु से सम्बन्धित है। जिसमें आत्मा, मोक्ष इत्यादि पदार्थों को प्रश्न व उत्तर के रूप में संयोजित किया गया है। भारत सरकार के 'साहित्य अकादमी' द्वारा इस काव्य को देश की 22 भाषाओं में प्रतिष्ठित लेखकों से अनुवाद करवाय गया है। साहित्य अकादमी की इस योजना में 'राजस्थानी भाषा में अनुवाद' डॉ. प्रो. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' द्वारा किया गया है जो 2019 में नई दिल्ली से प्रकाशित है।

इन सबके अतिरिक्त भी डॉ. पाण्डेय द्वारा विशेष पर्वों एवं विद्वानों का विषय प्रस्तुति राजस्थानी भाषा में दोहे बनाए गए है जो सैंकड़ों की तादाद में उपलब्ध है। डॉ. पाण्डेय की हिन्दी, संस्कृत और राजस्थानी भाषा में कई मौलिक और अनूदित रचनाऐं हैं।

'तारा' नाम बीज	'तारा' नामाथ
मन्त्र	मन्त्रोऽयं
सीताराम क माय	सीतारामैक्यदैवते।
जपत जपत शंकर	तज्जापस्यप्रभावेण
भये तारा रूप	तारामयोऽस्ति
सुहाय।	शंकरः।।
डॉ. प्रो. ताराशंकर शर्मा	डॉ. प्रो. ताराशंकर शर्मा
'पाण्डेय'	'पाण्डेयः'

≈≈≈≈

द्वितीय अध्याय

संस्कृत साहित्य में पद्य (मुक्तक), गद्य (कथा एवं निबन्ध) व रूपक साहित्य का उद्‌भव एवं विकास तथा डॉ. पाण्डेय विरचित कृतियाँ

द्वितीय – अध्याय

संस्कृत साहित्य में पद्य (मुक्तक), गद्य (कथा एवं निबन्ध) व रूपक साहित्य का उद्‌भव एवं विकास तथा डॉ. पाण्डेय विरचित कृतियाँ

संस्कृत साहित्य अपनी विविधता, समृद्धि, सक्रियता, विशिष्टता, सार्वभौमिकता, उपलब्धि आदि सभी दृष्टि से अनुपम है। भारत के साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक स्वरूप का सर्वांगींण अङ्कन तथा प्रतिबिम्बन जितना प्रचुर प्राञ्जल रूप में संस्कृत साहित्य में हुआ है। उतना अन्यत्र दुर्लभ है। यदि हम केवल संस्कृत के विशुद्ध साहित्य का ही पर्यवेक्षण करें तो दृश्य एवं श्रव्य के व्यापक परिवेश में यह महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, कथा आख्यायिका, चम्पू तथा नाट्य साहित्य के विभिन्न रूपों में पर्याप्त विकसित दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत साहित्य का एक–एक अंग अपनी समृद्ध परम्परा लेकर चरम विकास के बिन्दु तक पहुँचा है।

संस्कृत काव्य शास्त्रियों ने रसात्मक वाक्य को काव्य माना है।

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"

प्रयोग की दृष्टि से पुनः काव्य के दो भेद किये है।

"दृश्यश्रव्यत्भेदेन पुनः काव्यं द्विघा मतम्"

भरत के अनन्तर भामह दण्डी वामन आदि आचार्यों के ग्रन्थों में काव्य के वर्गीकरण को अधिक विशद् रूप में प्रस्तुत किया गया। इसी क्रम में आचार्य विश्वनाथ ने काव्य की विभिन्न विधाओं का सुन्दर वर्गीकरण किया। आचार्य विश्वनाथ ने काव्य को दृश्य काव्य व श्रव्य काव्य में विभक्त करते हुए दृश्य काव्य के पुनः दो भेद किये हैं– रूपक और उपरूपक। रूपक भी पुनः नाटक आदि के भेद से दस प्रकार के होते हैं।

"नाटकमथ प्रकरणं भाणत्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।।"

श्रव्य काव्य को शैली की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया गया है यथा–

'श्रव्यं श्रोतव्यमात्रं तत्पद्यगद्यमयं द्विधा'

पद्य काव्य को पुनः दो भागों में विभक्त किया गया है। अनिबद्ध काव्य और प्रबन्ध काव्य। प्रबन्ध काव्य में किसी सुनियोजित कथा का आयोजन किया जाता है। महाकाव्य व खण्डकाव्य भेद से इसको दो भागों में विभक्त किया गया है। अनिबद्ध काव्य वे काव्य है जिनमें किसी सुनियोजित कथाबन्ध की आवश्यकता नहीं होती है। इस प्रकार के काव्य में एक, दो या कुछ अधिक श्लोकों में अन्य श्लोकों से सम्बन्ध हुए बिना काव्यत्व निहित होता है। सामान्यतः इस प्रकार के काव्य को मुक्तक कहा जाता है।

जो रचवना छन्दोबद्ध नहीं है उसको गद्य कहा जाता है। गद्य में जिस काव्य की रचना होती है उसे गद्य काव्य कहते है। जिसकी रचना छन्दोबद्ध होती है उसे पद्य कहते हैं तथा जो काव्य गद्य और पद्य दोनों में निबद्ध हो उसे चम्पू काव्य कहते हैं।

2.1 मुक्तक काव्य का स्वरूप

श्रव्य काव्य के अनिबद्ध काव्य भेद के अन्तर्गत मुक्तक काव्य को परिगणित किया गया है। मुक्तक काव्य को गीतिकाव्य, खण्डकाव्य के नाम से भी अभिहित किया जाता है। गीतिकाव्य काव्य का वह स्वरूप है जिसके काव्यत्व के साथ संगीतात्मकता प्रमुख होती है। इन पद्यों को वाद्यों के साथ गाया जा सकता है। अतः मुक्तक को गीति काव्य भी कहते हैं जो अंग्रेजी के 'Lyric' शब्द का ही पर्याय है।

लिरिक (Lyric) अपने आपमें पूर्ण, कवि की अंतरंग मनोभावनाओं को व्यक्त करने वाला एक गेय छंद या पद्य है। गीतिकाव्य में महाकाव्य के पूरे गुण नहीं होते है, अतः इसे खण्डकाव्य भी कहते हैं।

"खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च"

गीति काव्यों में प्रायः मुक्तक पद्य होते हैं, अतः साहित्यदर्पणकार ने मुक्तक का लक्षण बताते हुए कहा है कि छन्दोबद्ध पद वाले काव्य को पद्य कहते हैं। ओर इसी पद्य से मुक्त अर्थात् दूसरे पद्य से निरपेक्ष काव्य को 'मुक्तक' कहते हैं।

"छन्दोबद्धपदंपद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम्"

आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार मुक्तक पद्यों में पूर्वापर प्रसङ्ग की आवश्यकता नहीं होती है। वे अपने आप में पूर्ण होते हैं और पूरा भाव एक ही पद्य में आ जाता है।

"पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्"

ध्वन्यालोककार ने मुक्तक में रस परिपाक को आवश्यक बताते हुए लिखा है कि मुक्तक काव्य में प्रमुख औचित्य रस परिपाक ही है, जो सहृदय के मन को आनन्दित कर सकें।

"प्रबन्धे मुक्तके वापि रसादीन् बन्द्घुमिच्छता।
तत्र मुक्तकेषु रसबन्धाभिनिवेशिनः कवेस्तदाश्रयमौचित्यम्।।"

अग्निपुराणकार ने मुक्तक में चमत्कार को आवश्यक अङ्ग बताते हुए कहा है कि मुक्तक काव्य के एक श्लोक में ही सैंकड़ों चमत्कार होते हैं।

"मुक्तकं श्लोक एवैकचमत्कार क्षमः सताम्"

इस प्रकार काव्यशास्त्राचार्यों ने मुक्तक की अनेक परिभाषाएँ दी है।

मुक्तक या गीतिकाव्य भाव प्रधान होते है। इनमें अन्तरात्मा की ध्वनि होती है। जीवन का कोई एक पक्ष वर्णित होता है। महाकाव्य में यदि जीवन की समग्रता है तो गीतिकाव्य या मुक्तक में एकदेशीयता। महाकाव्य में यदि विस्तार है तो मुक्तक काव्य में घनत्व। महाकाव्य में अगर शिथिलता है तो गीतिकाव्य में एकाग्रता और तन्मयता। अतएव मुक्तक काव्य अधिक लोकप्रिय हुए है। वस्तुतः मुक्तक उन रस भरें मोदकों के समान है जिनके आस्वादनमात्र से सहृदयों का हृदय सद्यः परितृप्त हो जाता है और मुक्तक काव्य के सुन्दर उदाहरण भर्तृहरि के शतकत्रय और अमरूक के शतक है। प्रबन्धात्मक मुक्तक काव्य के दृष्टान्त कालिदास का मेघदूत और उसी के अनुकरण पर लिखें गए 'सन्देश काव्य' है। मुक्तक काव्यों के भावों की मधुरिमा प्रत्येक रसिक के हृदय को हठात् अपनी और आकृष्ट करती है। इसका कारण यह है कि इन गीति काव्यों का बाह्यस्वरूप जितना अभिराम और सुन्दर है उतना ही सुन्दर और पेशल उनका आभ्यान्तर रूप भी है। मुक्तक काव्य के नीतिकाव्य, उपदेशकाव्य, सूक्तिकाव्य, गीतिकाव्य, स्त्रोतकाव्य आदि प्रमख भेद है।

2.2 मुक्तक काव्य का उद्भव और विकास

समस्त संस्कृत साहित्य दो भागों में विभक्त है। वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य। अधिकतर विद्वत्वर्ग यह प्रमाणसहित स्वीकार करता है कि समस्त लौकिक साहित्य वैदिक साहित्य से ही आविर्भूत है। लौकिक साहित्य में अनेक विधाएँ परिगणित की जाती है। जैसे महाकाव्य, नाटक, ऐतिहासिक काव्य, मुक्तक काव्य, गद्यकाव्य इन सबका मूल स्त्रोत वैदिक साहित्य ही है। आचार्य भरत ने भी नाट्योत्पत्ति का मूल कारण वेदों को ही माना है।

"जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानार्थवणादपि।।"

अतः मुक्तक काव्य का बीज भी हमें वैदिक साहित्य में मिलता है तथा उसी का विकसित रूप लौकिक साहित्य में प्राप्त होता है। ऋग्वेद में ऐसे अनेक सूक्त है जो मुक्तक काव्य के उद्‌गमस्त्रोत के रूप में प्राप्त होते है। ऋग्वेद में उषा, विष्णु, इन्द्र, वरुण, सविता, अदिती, मरुत और वाक् आदि अनेक देवों की स्तुति की गई है और उनके गुणों का भावविह्‌लता के साथ वर्णन किया गया है।

पं. बलदेव–उपाध्यायजी ने वैदिक ऋषियों की 'उषा की सुषमा' को काव्य की दृष्टि से नितान्त सरल, सहज, सरस तथा भव्य भावना से मण्डित बताया है। उन्होंने लिखा है कि "वैदिक ऋषि उषा के स्वरूप की भावना को तीव्र रूप से प्रकट करने के लिए नाना अलङ्कारों का विधान प्रस्तुत करता है।" वह उषा कभी सुन्दर वस्त्र पहन पति को अपने प्रेमपाश में बाँधने के लिए मचलने वाली सुन्दरी के समान अपने पति के सामने अपने सुन्दर रूप को प्रकट करती है।

"अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये घनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषाहस्त्रेव निरीणीते अप्सः।।"

अतः ऋग्वेद में उषा की प्रशंसा में कहे गये मंत्र मुक्तक काव्य के अनुपम उदाहरण है। इसी प्रकार ऋग्वेद के दशम मण्डल में व्याकरण की महता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि व्याकरण से अनभिज्ञ व्यक्ति एक ऐसे जीव के समान है, जो वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता और सुनते हुए भी नहीं सुनता। किन्तु व्याकरण के ज्ञाता के लिए वाणी अपना स्वरूप उसी प्रकार प्रकट कर देती है, जिस प्रकार शोभन वस्त्रों से सुसज्जित कामिनी अपने आपको अपने पति के समक्ष समर्पित कर देती है।

"उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचम्,
उत त्वः शृण्वन् न शृणोत्यनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे
जायेव पत्य उशती सुवासाः।।"

काठक संहिता (24/1) में प्राप्त एक कथा के अनुसार स्त्री रूप में अवतरित वाणी को आकृष्ट करने के लिए देवों ने गाथाओं का गायन किया और मैत्रायणी संहिता (23/7/3) में बताया गया है कि विवाह में गाथाएँ गायी जाती है और गाथाओं का गायन करने वाले पुरुष स्त्रियों को प्रिय होते हैं। इस प्रकार निःसन्देह हम कह सकते है कि मुक्तक काव्य के बीज हमें ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं।

लौकिक साहित्य वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थल रसपेशल एवं कवि की गंभीर व तीव्र अनुभूतियों से युक्त स्वतः स्फुटित कहे जा सकते है। (Sopntaneous outbrust of power full fellings)

महाभारत में भी भावात्मक गेय स्थलों का अभाव नहीं है। बौद्धों की थेरगाथाओं में दुःखवाद की तीव्र एवं भावात्मक अभिव्यक्ति है। विण्टर निटज ने थेरगाथाओं की निर्वेदजन्य मार्मिक उक्तियों को, ऋग्वेद तथा कालिदास के मध्यकाल की सर्वोकृष्ट गीति काव्यात्मक रचना घोषित किया है। महान् वैयाकरणाचार्य पाणिनि के द्वारा रचित 'पाताल विजय' (जाम्बवती जय) नामक महाकाव्य माना जाता है। किन्तु सम्प्रति यह उपलब्ध नहीं है। यदि हम प्रमाणाभाव में पाणिनी को महाकवि न मान सके तब भी उनके उद्धत श्लोकों के आधार पर उन्हें गीति कवि या मुक्तक कवि माना जा सकता है। उनका काव्य मधुर, सरस, अलङ्कृत और मनोरम है। उसमें शृंगार और प्रकृति वर्णन का प्राधान्य है। पावस ऋतु के सम्बन्ध में कवि ने कितनी सुन्दर उपमा दी है कि कृष्णाभिसारिका के चन्द्रमा जैसे प्रकाशमान मुख को देखकर एवं भ्रमित होकर मेघ करुणक्रन्दन कर रहे हैं कि कहीं धारानिपात के साथ चन्द्रमा तो पृथ्वी पर नहीं गिर पड़ा।

"निरीक्ष्यविधुन्नयनैः पयोदोमुखं निशायामभिसारिकायाः।
धारानिपातैः सह किन्नु वात्तचन्द्रोऽयमित्यति तरंगरास।।"

इस प्रकार लौकिक साहित्य के पूर्ववर्ती साहित्य में मुक्तक काव्य या गीतिकाव्य के बीज अल्प रूप में देखें जा सकते हैं किन्तु लौकिक साहित्य में इनका स्वतन्त्र विकास कालिदास के गीतिकाव्य से ही प्रारम्भ होता है।

2.3 मुक्क काव्य की परम्परा

मुक्तक काव्य की परम्परा का विवेचन हम निम्न प्रकार से कर सकते है–

कालिदास के मुक्तक काव्य

कविकुलगुरु महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य रूपी आकाश के भगवान् भास्कर, कविकुल शिरोमणि, सरस्वती के वरद पुत्र और दीपशिखा की उपाधियों से विभूषित, उनकी अक्षय कीर्ति भारत वर्ष की सीमा को लाँघकर विश्व के दूसरे छोर तक पहुँची तो विदेशी जनता ने भी इन्हें 'विश्व कवि' की उपाधि से विभूषित किया। महाकवि कालिदास के ऋतुसंहार व मेघदूत दो मुक्तक काव्य संस्कृत साहित्य में प्रमुख है।

(अ) ऋतुसंहार

संस्कृत साहित्य में स्वतन्त्ररूप से मुक्तक या गीति काव्य का 'श्री गणेश' इसी कृति से हुआ है। ऋतुसंहार कालिदास की सर्वप्रथम रचना मानी जाती क्योंकि इस काव्य की शैली उस स्तर की नहीं है। जिस स्तर की अन्य रचनाओं में प्राप्त होती हैं संस्कृत साहित्य में केवल यही ग्रन्थ है जिसमें 6 ऋतुओं का पूरे विवरण के साथ वर्णन है। ऋतुसंहार का शरद् वर्णन तो इस कृति की आत्मा है, जो अन्यत्र अप्राप्य है। अतः कालिदास ने इस गीतिकाव्य में समस्त षड् ऋतुओं का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है।

(ब) मेघदूत

मेघदूत कालिदास की प्रौढ़ एवं परिष्कृत कृति है। इसमें कवि की प्रौढ़ कल्पना उदात्त भावना, परिष्कृत शैली एवं कोमलकान्त पदावली का मञ्जुल सामञ्जस्य है। यह कवि की कल्पना का प्रसून है। अतएव विश्व के सभी सहृदयों ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। सम्पूर्ण मेघदूत 2 खण्डों में विभक्त है जिसमें पूर्व मेघ में 66 श्लोक और उत्तरमेघ में 55 श्लोक है। पूर्व मेघ में मेघ के मार्ग का वर्णन है और उत्तर मेघ में यक्ष का सन्देश है।

इस काव्य में कवि ने प्रेम के विषय में नवीन सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है कि विरह में प्रेम घटता नहीं अपितु संपुष्ट होकर बढ़ता है, जो 'Out of sight out of mind' का सयुक्तिक खण्डन हैं।

"स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा।
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशी भवन्ति।।"

मेघदूत ने दूतकाव्य की एक समृद्ध परम्परा को जन्म दिया है।

भर्तृहरि के मुक्तक काव्य (शतक त्रय)

नीतिशतक, श्रृंगारशतक और वैराग्यशतक ये तीन शतक भर्तृहरि की रचना के रूप में प्राप्त होते है। इन रचनाओं के पद्य अत्यन्त सरल, सुबोध, मनोहर और श्रुति सुखद है। प्रत्येक पद्य अपने आपमें पूर्ण है। अतः यह पद्य मुक्तक के रूप में प्रसिद्ध है। भर्तृहरि के शतकत्रय का वर्णन इस प्रकार है–

(अ) श्रृंगारशतक

यह 100 पद्यों में निबद्ध कवि की प्रथम कृति है। जिसमें श्रृङ्गार रस का मनोहारी वर्णन किया गया है। श्रृङ्गार शतक में जीवन की श्रृङ्गारमयी प्रवृत्तियों का वर्णन शालीनता के साथ किया गया है।

इसमें यौवन, रमणियों के विलास, आलिङ्गन आदि चेष्टाओं के वर्णन के साथ गङ्गा तट पर निर्मित पर्णकुटी की स्मृति का उल्लेख है। तथा भोगविलास को मायात्मक व्यापार बताकर अन्त में शिवानन्द की सर्वोच्चता का प्रतिपादन किया है। शृंगार शतक में शैलीगत तार्किकता, रसनिष्पत्ति की सहजता वैदर्भी रीति की मधुरता एवं छन्दों की गेयता भर्तृहरि के कवित्व की प्रौढ़ता को स्वतः व्यक्त करती है।

(ब) नीतिशतक

भर्तृहरि के नीतिशतक में 110 श्लोक है और इसका प्रतिपाघ विषय लोक व्यवहार की ऐसी शिक्षा देना है, जिससे मानव जीवनोपयोगी, उत्कृष्ट नैतिक सिद्धान्तों एवं सद्गुणों का अनुशीलन कर तथा उन्हें अपनाकर सत्पुरुष बनने की प्रेरणा ले सकता है। इसमें उदात्तगुणों का वैशिष्ट्य बतलाकर मानव जीवन के लिए कल्याणकारी उपदेश दिया है। भर्तृहरि ने नीतिशतक में दुर्जनों की प्रकृति को असद्वृत्ति का प्रतीक मानकर उनसे दूर रहने का उपदेश दिया है।

(स) वैराग्य शतक

भर्तृहरि का 'वैराग्य शतक' 100 पद्यों में निबद्ध 'मोक्ष पुरुषार्थ' पर प्रतिपादित मुक्तक काव्य है। इसमें कवि ने सांसारिक विषयों की असारता का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है और भगवद्भक्ति द्वारा परमानन्द की प्राप्ति का उपदेश दिया है। डॉ. कीथ ने भर्तृहरि के काव्य की प्रशंसा करते हुए कहा है कि भर्तहरि की कविता संस्कृत को उत्कृष्ट रूप में प्रदर्शित करती है।

अमरूक शतक

प्राचीन शतक काव्यों में अमरूक कवि का शतक काव्य अति प्रसिद्ध है। अमरूक शतक शृंगार का एक पक्षी काव्य है, इसमें मान विप्रलम्भ की प्रधानता है। अमरूक शतक में व्यंग्य काव्य का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। अमरूक शतक के सम्बन्ध में यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि शृंगार और प्रेमरसोद्रेक ही अमरूक का सर्वस्व है। ध्वन्यालोककार ने अमरूक कवि के मुक्तकों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है–

"मुक्तकेषु हि प्रबन्धेष्विव रसाबनधामिनेविशिनः कवयो दृश्यन्ते। तथा अमरुकस्य कवेः मुक्तकाः शृंगारस्यन्दिनः प्रबन्धायमाणाः प्रसिद्धा एव।"

सूर्य शतक

श्री मयूर नामक कवि ने 'सर्यूशतकम्' नामक स्त्रोत ग्रंथ की रचना की। बाणभट्ट मयूर के समकालीन थे। तथा बाणभट्ट मयूर के जामाता थे। मयूरभट्ट ने शाप निवारण व आरोग्य की प्राप्ति हेतु सूर्य की संस्तुति में 100 पद्यों का निर्माण किया जो सूर्य शतक नाम से प्रसिद्ध है। स्त्रग्धरा छन्द में

लिखे गये काव्य में यही प्रथम काव्य है। इस स्त्रोत काव्य से ज्ञात होता है कि मयूर मुख्यतया 'शब्दकवि' है और नोंक–झोंक के शब्दों को रखने में बेजोड़ है।

चण्डीशतक

गद्य सम्राट 'बाणभट्ट' की 100 पद्यों में संगृहीत 'चण्डीशतक' एक उत्तम धार्मिक रचना है। जिसका वर्णन बाणभट्ट ने स्वयं हर्षचरित के प्रथमोच्छावास में किया है। चण्डीशतक में बाण ने दुर्गा की स्तुति में सौ स्त्रग्धरा छन्द प्रस्तुत किये है, इसकी शैली गाढबन्ध वाली है। बाण ने इस स्त्रोत काव्य में भक्तिभावना की अपेक्षा पाण्डित्य प्रदर्शन पर ही अधिक ध्यान दिया है।

शांति शतक

इसके रचयिता कवि शिल्हण है। इसके चार अध्यायों में परितापशमन, विवेकोदय, कर्त्तव्यता तथा ब्रह्म प्राप्ति है। यह सम्पूर्ण शतक वैदर्भी शैली में निबद्ध है।

सुन्दरी शतक

इसके रचयिता उत्प्रेक्षावल्लभ, शिव भक्तिदास तथा गोकुल है। इस शतक में आर्या छंद में स्त्री के सौन्दर्य का मनोहारी वर्णन है।

उपदेश शतक

गुमानि कवि का उपदेश शतक 100 आर्याओं में निबद्ध क्षेमेन्द्र के चारूचर्चा से प्रभावित प्रभावशाली नीतिकाव्य है। जिसके आदि तीन पादों में प्रख्यात कथा का उल्लेख है और अन्तिम चरण में तज्जन्य उपदेश अभिव्यक्त किया गया है। इनकी कविता प्रसाद गुण से युक्त है। इस काव्य में नानावृत्तों के माध्यम से विद्वत्प्रशंसा, दुर्जन त्याग, द्वैत–निन्दा, शिक्षा पद्धति, विषादपद्धति तथा ज्ञानपद्धति का वर्णन किया गया है। गुमानिकवि का समय 18वीं शती का उत्तरार्द्ध है।

रोमावली–शतकम्

इन दोनों कृतियों के रचयिता विश्वेश्वर पण्डित है। इनका प्रमाणिक समय 18वीं शताब्दी का पूर्वाद्ध है। इनके रचे बहुत से ग्रन्थ है, किन्तु मुक्तक काव्य के रूप में इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रोमावली शतक' है। यह 100 पद्यों में निबद्ध श्रृंगार रस का अत्यन्त चमत्कारी काव्य है, जिस पर कवि ने शरीर की रोमावली पर ही अपना श्रृंगार काव्य रच दिया। अतः रोमावली शतक में कवि ने श्रृंगार रस की नवीन विधा का प्रतिपादन किया।

गाथा सप्तसती

हाल कृत महाराष्ट्री प्राकृत रचना 'गाथा सप्तसती' प्राप्त होती है। यद्यपि यह संस्कृत रचना नहीं है किन्तु यह रचना संस्कृत के मुक्तकों की उपजीव्य रही है। गाथा सप्तसती में वर्णित श्रृंगार रस की सम्पत्ति, नूतन भावों की अभिव्यक्ति, गूढार्थ की अभिव्यञ्जना तथा सुकुमार शब्दों के विन्यास के कारण इस काव्य रत्न की उज्ज्वल गाथायें सैंकड़ों वर्षों से आलोचकों के अन्तरङ्ग को आकृष्ट किये हुई है। इस काव्य के पद्य ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश, रसगङ्गाधर आदि ग्रन्थों में रस तथा ध्वनि के भव्य उदाहरणों के रूप में उद्धृत है।

आर्या सप्तशती

इसके रयियता गोवर्धनाचार्य है जो षङ्गाल के अन्तिम राजा लक्ष्मणसेन की सभा के मान्य कवि थे। इनका समय 12वीं शती का उत्तरार्द्ध है। यह गाथा सप्तशती को आधार मानकर लिखा गया काव्य है। सम्पूर्ण काव्य में आर्या छन्द में निबद्ध होने के कारण इसका नाम 'आर्यासप्तशती' है। इस रचना में श्रृंगार रस के समस्त उपादानों की साङ्गोपाङ्ग अभिव्यक्ति हुई है। अतः गोवर्धनाचार्य का आर्याशप्तशती श्रृंगार रस का अपूर्व काव्य है।

चौर पञ्चाशिका

यह रचना ऐतिहासिक काव्य–धारा के सुप्रसिद्ध कवि 'विक्रमांकदेवचरितम्' के लेखक बिल्हण की है। यह 50 श्लोकों में निबद्ध काव्य हैं। यह काव्य एक राजकुमारी के साथ गुप्त प्रेम का वर्णन के लिए लिखा गया है। इसी गुप्त प्रेम के कारण कवि को मृत्युदण्ड दिया जाता है। परन्तु इसी काव्य की सरसता व सलिलता के कारण राजा द्रवित होकर उसका राजकुमारी के साथ विवाह करवा देता है। इस काव्य में श्रृंगार रस का उत्कण्ठित रूप से वर्णन किया गया है।

वक्रोक्ति पञ्चाशिका

'हरविजय' नामक प्रसिद्ध महाकाव्य के रचयिता रत्नाकर का यह एक मुक्तक काव्य है। महाकवि रत्नाकर कश्मीर देश के राजा अवन्ति वर्मा के समकालीन थे। कल्हण ने अपनी राजतरङ्गिणी में इनका वर्णन किया है। इस काव्य के नाम से ही ज्ञात होता है कि इसमें वक्र उक्ति अर्थात् वक्रोक्तिविषयक पद्यों का गुम्फन है। अतः यह अपने विषय का अनुपम काव्य है।

सदुक्ति कर्णामृत

इसके रचयिता बंगाल के प्रसिद्ध राजा लक्ष्मणसेन के धर्माध्यक्ष के पुत्र श्रीधरदास थे। इनका प्रामाणिक समय लगभग 12वीं शताब्दी है। सूक्तिग्रन्थों में 'सदुक्तिकर्णामृत' सचमुच अपनी महत्ता और उपादेयता के कारण अद्वितीय माना जाता है, इसमें विषयों की व्यापकता अद्‌भुत है। वैष्णव काव्य का सङ्कलन ही इसका प्रकृष्ट वैशिष्ट्य है।

गीत गोविन्दम्

संस्कृत गीतिकाव्य के अनुपम सरस काव्य 'गीतगोविन्द' के रचयिता श्री कवीश्वर जयदेव पूर्वाञ्चल (बंगाल) के राजा लक्ष्मण सेन के दरबारी कवि थे। इसका अनुमानित समय 11वीं ईस्वी के लगभग है। गीत गोविन्द में कवि ने भक्ति रस की माधुर्यमय सरिता प्रवाहित की है। राधा की विरह व्यञ्जना तो मार्मिकता में बेजोड़ है। इस काव्य में राधा के मन की टीस, कसक एवं वेदना की बड़ी ही मार्मिक पदावली में करुण व्यञ्जना हुई है। 12 सर्गों में निबद्ध इस काव्य को वैष्णव समाज में राधाकृष्ण की लीलाओं का एक भक्तिपरक ग्रन्थ माना जाता है। इसमें भक्ति और शृंगार दोनों का उभयनिष्ठ प्रयोग हुआ है।

शृङ्गार तिलक

यह 23 पद्यों में निबद्ध शृङ्गार–परक मुक्तक काव्य है। इस रचना के लेखक तथा प्रणयन काल के सम्बन्ध में इतिहासकार मौन है। इस काव्य में सरल सरस सानुप्रास एवं प्रसादगुण युक्त भाषा शैली के माध्यम से कवि ने शृंगार के अनेक मनोरम चित्र प्रस्तुत करते हुए कहा है कि विधाता ने रमणी के सम्पूर्ण अङ्गस्थलों को पुष्पमय निर्मित कर हृदय को पाषाणमय बनाकर कितना अनौचित्य किया है। इस काव्य में व्याकरण चमत्कार भी दृष्टव्य है। अतः रचना सौष्ठव की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट रचना है।

कुट्टनी मतम्

कविवर दामोदर गुप्त की यह सरस–सरल कृति अपने विषय की महनीय रचना है। कल्हण की राजतरङ्गिणी में इन्हें कश्मीर नरेश जयपीड़ का प्रधान अमात्य होना सिद्ध किया है। 1051 आर्याओं में निबद्ध यह ग्रन्थ कामशास्त्र का एक शास्त्रीय ग्रंथ है। इसमें विकराला नामक कुट्टनी मालती नामक नौंची को नाना प्रकार के दृष्टान्तों से कामिजनों से धन ऐंठने की शिक्षा विस्तार दे देती है। इसमें प्राचीन भारत के दो नगर वाराणसी तथा पाटलिपुत्र की कामप्रवृत्ति का चित्रण किया है। आचार्य

मम्मट ने भी काव्य प्रकाश के उदाहरण इस ग्रन्थ से उद्धृत किये हैं। इस प्रकार कुट्टनीमत अपने विषय का अद्वितीय ग्रन्थ है।

सुभाषित सुधानिधि और पुरुषार्थ सुधानिधि

इन दोनों सुभाषित ग्रन्थों के रचनाकार वेदभाष्यकार आचार्य सायण है। इन दोनों सुभाषित ग्रन्थों का उद्देश्य एक है परन्तु पद्धति भिन्न है। 'सुभाषित सुधानिधि' में पुरुषार्थचतुष्टय के विषय में कवियों की रमणीय सूक्तियों का संग्रह है। 'पुरुषार्थ सुधानिधि' में भी चार पुरुषार्थों के वर्णन परक चार स्कन्ध है और प्रति स्कन्ध पृथक्–पृथक् अध्याय है। इस काव्य के सम्पादन में आचार्य सायण ने महाभारत, पुराणों और उपपुराणों का गाढ अनुशीलन कर तत्तत् विषयों का बड़ा ही विराट् और विशद् संकलन प्रस्तुत किया है। व्यास जी के उपदेश ही आख्यानों से संवलित होकर यहाँ एक स्थान पर प्रस्तुत है। इनका प्रामाणिक समय 14वीं शती का पूर्वार्द्ध हं।

दैवज्ञ सूर्यकवि का रामकृष्ण विलोम काव्य

इनकी सुप्रसिद्ध रचना 'रामकृष्ण विलोम काव्य' स्वकृत टीका सहित काव्यमाला के एकादश गुच्छक में प्रकाशित हुई है। दैवज्ञ सूर्य कवि पार्थपुर के ज्ञानाधिराज के सुपुत्र थे। इन्होंने श्लेष की सहायता के बिना ही 'द्वयर्थक विलोम काव्य' की रचना की। इसमें 36 श्लोक हैं, जिसमें प्रथमार्द्ध में राम की द्वितीयार्द्ध में कृष्ण की प्रशस्ति है। इसमें श्लोक का उत्तरार्द्ध ही पूर्वाद्ध का विपरीत क्रम से निबद्ध पाठ है। अतः यह विलोम काव्य है। इनका प्रमाणित समय 16वीं शती का पूर्वाद्ध है।

लक्ष्मी–सहस्त्र

यह 1000 पद्यों में निबद्ध वैंकटाध्वरि कृत उच्चकोटि का 'स्तुत्यात्मक काव्य' है। जिसमें लक्ष्मी जी की विविध प्रकार से स्तुति की गई है। कवि ने एक और लक्ष्मी के अङ्गो में दशावतारों का वर्णन किया है अर्थात् उनके शरीर में दश अवतारों का अपूर्व सम्मिलन दिखाया है तो दूसरी और उनके मुख को द्वितीय चन्द्रमा बताया है। इस काव्य में श्लेषालङ्कर की छटा सुतरां विलोकनीय है। अतः निश्चय ही संस्कृत साहित्य में रस पेशल तथा उत्प्रेक्षा मण्डिल 'लक्ष्मी–सहस्त्र' काव्य लिखकर वैंकटाध्वरि अमरता को प्राप्त हो गये हैं।

शोकगीतिका

अंग्रेजी में जिसे Elegy (शोकगीति) कहते हैं, उस ढंग की एक रचना दातार कुलोत्पन्न भगवन्तशर्मण (वी.एन.दातार) की अन्तिम यात्रा है। 166 श्लोकों में निबद्ध इस काव्य में नेहरू जी के

चरित्र की महनीयता और उनके जीवन की मार्मिक घटनाओं का वर्णन है। नेहरू जी की अन्तिम–यात्रा का इस काव्य में बहुत करुण–क्रन्दन किया गया है यथा–

"हा!हा! नोऽभिषिक्त भूपतिरिव स्वातंत्र्ययुद्धाग्रणी,
निर्माता नवभारतस्य नवतां देशाय दित्सु पुनः।।"

उन्नीसवीं और बीसवीं, शताब्दी में भी बहुसंख्यक शतक काव्य, खण्ड काव्य या लघु काव्य रचे गये जिसके प्रमुख रचनाकार इस प्रकार है–अप्पाशास्त्री राशिवंडेकर, भट्टमथुरानाथ शास्त्री, वेंकटराघवन, क्षमाराव, दत्तदीनेशचन्द्र, महालिङ्ग शास्त्री, बटुकनाथ शास्त्र खिस्ते, नागार्जुन, जानकी वल्लभ शास्त्री, रतिनाथ झा, त्र्यंबक शेवडे, श्रीधर भास्कर वर्णेकर, रामकरण शर्मा, जगन्नाथ पाठक, श्रीनिवास रथ, परमानन्द शास्त्री, रमाकान्त शुक्ल, श्री मोहनलाल पाण्डेय, डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पुष्पादीक्षित, हर्षदेव माधव, केशवचन्द्र दास आदि ने अपने मुक्तक काव्यों में विषय वस्तु तथा अभिव्यक्ति की दृष्टि से नूतन प्रयोग किया है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में विविध पत्र–पत्रिकाऐं प्रचलित है। इनका प्रचलन दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है तथा इनमें प्रकाशित होने वाली लघु रचनाओं में पाठकों की रूचि निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो रही है अतः इन पत्र–पत्रिकाओं में वर्तमान परिवेश से सम्बन्धित विविध समसामयिक मुक्तक कविताओं का भी प्रकाशन निरन्तर समाज व राष्ट्र के प्रति जागरूक कवियों द्वारा किया जा रहा है। अतः हम कह सकते हैं कि आधुनिक संस्कृत मुक्तक कविताओं में समसामयिकता से सम्बन्धित विविध मुक्तक कविताओं का प्रकाशन निरन्तर ही पत्र–पत्रिकाओं में होता रहता है। समसामयिकता से तात्पर्य दैनन्दित घटित होने वाली घटनाओं से है जो घटनाऐं घटित हुई, जो भावोद्रेक हुआ, जो मनोवृतियाँ अंकुरित हुई उसको आधार बनाकर सद्यः एक कवि की दृश्यश्रव्यानुभूति भावना से प्रस्फुटित पद्यमयी रचना समसामयिक कविता है। नित–नूतन भावाभिव्यक्ति से गुम्फित कविताऐं कवियों की तत्कालीन घटना की संवेदना को उजागर करती है।

स्वतन्त्र भारत में स्वतन्त्रता का वर्णन, पाकिस्तान–बांग्लादेश के साथ युद्ध, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, कश्मीर समस्या, कारगिल युद्ध, भारतीय संसद पर आतंवाद आक्रमण जैसी समसामयिक विषयों पर कविताऐं लिखी जा रही है। जिनमें से गुलबर्गा निवासी हरिश्चन्द्र रेणापुरकर की संसद् भवनोपयोतकवादाक्रमणम् श्री वाजपेयी अमेरिका यात्रा, कारगिल विजय, राष्ट्रपति क्लिन्टनस्य भारत–यात्रा, कश्मीरस्वायत्ततावादः, आरक्षणाभिशापः कश्मीरकूटम्, अफ्रीकाशठयम्, हजरतबल प्रकरणम् इत्यादि श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी की विधेर्होना निषेधानले, मधुसूदन पेन्नाः की नरमेधः वनमाली विश्वाल

जी की अन्तिमः प्रयाणः, श्री मोहनलाल पाण्डेय की वाजपेयी मुशर्रफ शिखरवार्ता आदि आधुनिक कवियों की कविताऐं प्रमुख हैं।

मुक्तक साहित्य व सारस्वतसौरभम्

मुक्तक काव्य की इसी परम्परा में आधुनिक कवि डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का स्थान महत्त्वपूर्ण है। 'सारस्वत–सौरभम्' कृति के पद्य खण्ड में कवि ने 42 मुक्तक कविताओं का संग्रह किया है। जहाँ एक ओर प्रत्येक मुक्तक अपने आपमें स्वतन्त्र तथा पूर्ण है एवं विविध छन्दों तथा अलंकारों में निबद्ध है। वहीं दूसरी और कुछ मुक्तक कविताऐं नवीन विधा का समर्थन करते हुए छन्दोंमुक्त है। वस्तुतः इस संग्रह ग्रन्थ में कवि ने वर्तमान समय में सहृदयों को प्रिय लगने वाली विविध समसामयिक विषयों पर लिखी गई मुक्तक कविताओं का संकलन किया है। प्रो. पाण्डेय ने अपने समय की सामाजिक और राजनैतिक स्थितियों पर कटाक्ष करने और अपनी व्यथा को व्यक्त करने के लिए व्यंग्यात्मक शैली का आश्रय लिया है। जीवन की निराशा और विषाद, मनन और गम्भीरता अधिक्षेप तथा विडम्बना, अनुभवों को सहज सटीक भाषा में प्रकट करने में अपनी सफलता के कारण डॉ. पाण्डेय का कृतित्व सराहनीय है। व्यंग्य के तीखेपन के साथ समाज की विसंगतियों का कवि ने यहाँ वर्णन किया है।

काव्यारम्भ में कवि ने 'स्तुतिः' खण्ड के माध्यम से विविध देवों की स्तुति करते हुए पाँच स्तुतिपरक मुक्तक कविताओं की रचना की है। प्रत्येक पद्य अपने आप में स्वतन्त्र है, विविध छन्द व अलंकारों में निबद्ध है साथ की एक–एक मुक्तक ही पूर्वापरनिरपेक्ष या अपने आपमें पूर्ण रहकर ही रसास्वादन कराने वाला है। इसी तरह कवि ने 'प्रकृतिः' खण्ड में चार मुक्तक कविताओं का संग्रह कर प्रकृति की सुषमा का स्वतन्त्र रूप से अत्यन्त मनोरम चित्रण किया है। कवि ने इन मुक्तकों को विविध छन्दों में निबद्ध कर अपनी कला कुशलता का परिचय तो दिया ही है साथ ही छन्दोमुक्त मुक्तकों के द्वारा कवि ने प्रकृति के सौन्दर्य का जो वर्णन किया है वह कवि का अपना नवीन प्रयोग ही जान पड़ता है। डॉ. पाण्डेय ने 'विश्वासः फलदायकः', 'नित्यं ग्राह्मा सत्या शिक्षा', 'लोभस्य फलमेव मृत्युः' आदि के माध्यम से उपदेशपरक मुक्तक काव्यों की रचना कर सर्वसाधारण को जागरूक बनाने का सफल, प्रयास किया है। वहीं 'स्वागतगीतिका', 'स्वागतगीतिः', 'होलिका रे सखे' आदि के माध्यम से गीति मुक्तकों की रचना कर नवीन विधा को पुष्ट किया है। समय के साथ चलते हुए डॉ. पाण्डेय भी समसामयिक भावबोध के प्रति सचेत हुए है। उन्होंने अपने स्वतन्त्र मुक्तकों के माध्यम से वर्तमान सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं को अपना निशाना बनाया है। यथा 'दूतश्च को भविता' छन्दोमुक्त मुक्तक कविता के माध्यम से कवि ने जहाँ एक और अनावृष्टि का चित्रण किया है वहीं दूसरी और

'हले शकुन्तलेः', 'शकुन्तला–प्रयाणम्', 'परकीयधनम्', 'किं नामधेयं यौतकम्', 'कोऽयं तस्या अपराधः', 'अन्तरालः', 'उदरस्य कृते', 'आक्षेपः कस्मिन्' प्रभृति मुक्तक कविताओं को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए समाज से प्रश्न किए है। 'राष्ट्रीयम्' खण्ड से इसी तरह कवि ने राष्ट्र में व्याप्त आतंकवाद, भ्रष्टाचार पाकिस्तान की कुटिल नीति आदि विषयों को आधार बनाकर जिन मुक्तकों की रचना की है। वे निश्चय ही 'सारस्वत–सौरभम्' को आधुनिक मुक्तक काव्य की नवीन विधा में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करने वाली है। ये कविताऐं मुक्तक काव्य की परम्परा का निर्वाह करते हुए जहाँ सहृदयों को स्वतन्त्र रूप से रसास्वादन कराने में समर्थ है। वहीं दूसरी और समाज तथा राष्ट्र की विविध समसामयिक समस्याओं को हमारे समक्ष व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत कर ज्वलन्त घटनाओं व समस्याओं को जीवन्त रूप प्रदान करने वाली है। नितनूतन भावाभिव्यक्ति से गुम्फित ये मुक्तक कविताऐं कवि की तत्कालीन घटना की संवेदना को उजागर करती है।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि मुक्तक काव्य की परम्परा के विकास के अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि इस काव्य विधा में उत्तरोत्तर नवीन विषयों का समावेश होता रहा है। शृंगारिकता, धार्मिकता, नैतिकता, संगीतात्मकता, मार्मिक अनुभूति, रस व्यञ्जना, भावों की उदात्तता, प्रेम और भक्ति, प्रकृति चित्रण, जीवन दर्शन आदि के साथ–साथ आधुनिक कवियों द्वारा समसामयिक विषयों को मुक्तक कविताओं का आधार बनाकर विविध मुक्तकों का सर्जन किया जा रहा है जो अपने नवीन विषयों व शैलियों के कारण सहज ही सहृदय पाठकों को अपनी और आकृष्ट कर रहे हैं। अतः विविधतापूर्ण काव्य कलाओं के कारण इन मुक्तकों का संस्कृत साहित्य में अपूर्व स्थान है। हमारे विद्वत् कवि डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने विविध विषयों व शैलियों से अलंकृत नवीन मुक्तक कविताओं को आधार बनाकर जिस संग्रह ग्रन्थ 'सारस्वत–सौरभम' की रचना की है वह सहृदय रसिक पाठकों के लिए नितान्त अनुकरणीय और श्लाघनीय है।

2.4 संस्कृत साहित्य में गद्य कथा व निबन्ध का उद्‌भव व विकास

गद्य का स्वरूप एवं विकास

'वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं' छन्द के अंश से रहित श्रव्य काव्य गद्य काव्य कहलाता है। संस्कृत गद्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक संहिताओं में हमें गद्य के प्रथम दर्शन मिलते है। वैदिक साहित्य में गद्य साहित्य का रूप उनमें वर्णित आख्यानों में दिखाई पड़ता है। वैदिक गद्य अत्यन्त सरल एवं सुबोध है। इसमें समासों का प्रायः अभाव है, उदाहरण एवं उपमा तथा अन्य सादृश्यमूलक अलंकार, विशेषकर रूपक आदि का सुन्दर संयोजन है यथा–

"ब्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत्।

प्रजपतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत्।।" (अथर्ववेद 15)

वैदिक गद्य के बाद पौराणिक या शास्त्रीय गद्य अत्यन्त प्रौढ़ समासबहुला एवं गाढ़बन्ध वाला है। इसके प्राचीन रूप सूत्र ग्रन्थों तथा यास्क के निरूक्त जैसे ग्रन्थों में देखे जा सकते हैं तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र, पतञ्जलि के महाभाष्य आदि में इस प्रकार के गद्य का प्राञ्जल और परिष्कृत स्वरूप विकसित हुआ है।

यथा–

"ये पुनः कार्यभावा निवृत्तौतावत् तेषां यत्नः क्रियते।

तद् यथा घटेन कार्य करिष्यन् कुम्भकारकुलं

गत्वाहकुरुघटं कार्यमनेन करिष्यामीति।।"

आख्यान साहित्य की दृष्टि से यदि संस्कृत गद्य काव्य के उद्भव का विवेचन किया जाए तो संस्कृत गद्य काव्य पर प्राचीनतम गाथाएँ एवं आख्यायिकाएँ आज उपलब्ध नहीं है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने तीन आख्यायिकाओं की चर्चा की है–वासवदत्ता, सुमनोत्तरा व भैमरथी। यथा–

"अधिकृत्य कृते ग्रन्थ बहुलं लुग्वक्तव्यः।

वासवदत्ता, सुमनोत्तरा न च भवति भैमरथी।।"

पतञ्जलि का महाभाष्य संस्कृत गद्यकाव्य की समृद्धि का परिचायक है। संस्कृत गद्यकाव्य का उद्भव पतञ्जलि के उल्लेख के आधार पर ई.पू. तीसरी शताब्दी माना जा सकता है, किन्तु प्रारम्भिक आख्यायिकाओं के उपलब्ध न होने से उनके स्वरूप का विवेचन किया जाना कठिन है किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि दण्डी, सुबन्धु व बाण में जिस गद्य काव्य का समृद्ध रूप मिलता है उसकी परम्परा बहुत प्राचीन है।

संस्कृत गद्य काव्य का स्वर्ण युग

संस्कृत गद्य काव्य का सिरमौर गद्यकाव्यकार दण्डी, सुबन्धु व बाण का युग माना जा सकता है। इन तीनों लेखकों ने संस्कृ गद्यकाव्य को अपनी उत्कृष्ट गद्य काव्यात्मक रचनाओं से चरम उन्नति प्रदान की है। इनकी रचनाएँ संस्कृत गद्य–काव्य परम्परा के चरम विकास काल की द्योतक है।

दण्डी

संस्कृत गद्यकाव्यकारों में दण्डी का विशिष्ट स्थान है। विद्वानों ने उनकी शैली का अध्ययन करके उन्हें बाण का पूर्ववर्ती सिद्ध किया है अतः उनका समय सप्तम् शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा

सकता है। अपने गद्यकाव्य की अपूर्वता के कारण उन्हें कविपरम्परा में सर्वोच्च पद पर स्थापित किया गया है। यथा–

"जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।
कवि इति ततो व्यासे कवयत्वयि दण्डिनि।।"

साहित्य संसार में दण्डी की तीन रचनाऐं प्रसिद्ध रही है।

यथा–

"त्रयोऽग्नयस्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः।
त्रयो दण्डि प्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुता।।"

इस प्रकार दण्डी की तीन रचनाओं में से दशकुमारचरितम् व अवन्तिसुन्दरी कथा–ये दो ही गद्यकाव्य है और तीसरी रचना काव्यादर्श है। दण्डी की गद्यशैली प्रसाद गुण युक्त तथा सशक्त है। दण्डी ने वर्ण्य विषय और शैली शिल्प के बीच सामन्जस्य रखा है समस्त पदों का विरलता से प्रयोग तथा माधुर्य व्यञ्जक ललित वर्णों की सुन्दर योजना दण्डी गद्य शैली की उल्लेखनीय विशेषताएँ है जिसके कारण 'दण्डिनः पद लालित्यम्' की उक्ति प्राचीन काल से विद्वत् समाज में प्रचलित है।

सुबन्धु

दण्डी के बाद संस्कृत–गद्य अधिक जटिलता तथा कृत्रिमता की और उन्मुख होने लगा। गद्य का सुबोध व्यवहारिक रूप प्रायः विरलता से प्राप्त होने लगा। गद्य को शब्दाडम्बर युक्त तथा प्रत्यक्षश्लेषमय बनाना अधिक अच्छा समझा गया। इस शैली का चरमोत्कर्ष हमें सुबन्धु के गद्य में मिलता है। सुबन्धु का समय 600 ई. के लगभग माना जाता है। उनकी एकमात्र रचना 'वासवदत्ता' कथा प्राप्त होती है। 'हर्षचरित' में बाण ने सुबन्धुकृत 'वासवदत्ता' का उल्लेख इस प्रकार किया है–

"कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।" (हर्षचरितम्, 1/11)

सुबन्धु गौड़ी रीति के आचार्य है जिसमें अक्षर आडम्बर व समस्त पदावली का बाहुल्य है। सुबन्धु के काव्य में कलापक्ष का उत्कर्ष है भावपक्ष प्रायः उपेक्षित है। पौराणिक सन्दर्भों की बहुलता, श्लेषों की भरमार तथा शब्दाडम्बर युक्त दीर्घकाव्य काव्यों की योजना से सुबन्धु का काव्य अधिक दुरूह बन गया है। हाँ अपवाद स्वरूप कुछ स्थलों पर जहाँ कवि ने सामासिक पदावली और श्लेष के मोह को तोड़ा है, वहाँ कवि की गद्य शैली अत्यन्त स्वभाविक एवं सुगम बन पड़ी है।

बाणभट्ट

बाणभट्ट संस्कृत गद्य–काव्य गगन के दिनमणि है। बाण राजा हर्ष (606–647ई.) के समकालीन थे। विश्वसाहित्य में कादम्बरी की समता करने वाला दूसरा गद्य–काव्य नहीं है। बाण की 'कादम्बरी' कथा व 'हर्षचरित' आख्यायिका ये दोनों ही गद्यकाव्य है। बाण प्रशंसा में विद्वत्समाज में यह उक्ति बहुत प्रसिद्ध है–

"बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्"।

सातवीं शती की भारतीय संस्कृति का रूप चित्रण करने के लिए बाणभट्ट किसी विशिष्ट कला संग्रह के उस संग्रहालयाध्यक्ष की भाँति है, जो प्रत्येक कलात्मक वस्तु का पूरा–पूरा ब्यौरा दर्शक को देकर उसके ज्ञान व आनन्द की वृद्धि करना चाहता है।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने बाण की गद्य शैली तीन प्रकार की बतलाई है–एक दीर्घ समास, दूसरी अल्पसमास तथा तीसरी समास रहित। बाण की शैली की सुन्दर अभिव्यक्ति इन शब्दों में मिलती है।

"उनकी रीति है कि समासबहुल शैली के बाद फिर ढील छोड़ देते है। प्रचण्ड निदाघकाल उसमें चलने वाली गरम लू और वनों को जलाती हुई दावाग्नि के वर्णन में इस शैली की अच्छी झाँकी मिलती है कभी–कभी एक ही वर्णन में शब्दाडम्बर पूर्ण शेली से प्रारम्भ करके समास रहित शैली से अन्त करते है बाण ने भट्टार हरिश्चन्द्र के गद्य–काव्य की शैली को आदर्श माना है उसमें पदों की सुन्दर रचना थी और उसकी शैली या रीति भी मनोहर थी।"

परवर्ती गद्यकाव्यकार

परवर्ती गद्यकाव्यकारों में तिलकमञ्जरी कथा के प्रणेता धनपाल, गद्यचिन्ता मणि के रचयिता वाडीभसिंह (ओडेयदेव), वेमभूपाल चरित के लेखक वामनभट्ट (बाण) तथा गद्य कर्णामृत के रचयिता सकलविद्या चक्रवर्ती आदि का प्रमुख स्थान है।

अठाहरवीं से बीसवीं शताब्दी के गद्यकाव्यकारों में शिवराजविजयम् के लेखक पं. अम्बिकादत्तव्यास, मंदारमंजरी के रचयिता विश्वेश्वर पाण्डेय, अभिनव कादम्बरी के लेखक अहोविल नरसिंह, गुणामंदारमञ्जरी कथा के लेखक रंगनाथदीक्षित, श्री कृष्णाभ्युदय के रचयिता श्री शैल दीक्षित तिरुमलाचार्य, प्रबन्ध मञ्जरी के रचयिता पं. ह्रषिकेषशास्त्री भट्टचार्य, कथा मुक्तावली संग्रह की लेखिका पण्डिता क्षमाराव, श्री पादशास्त्र हसूरकर, श्री कृष्णमाचार्य, पं. मेधाव्रत कविरत्न, श्रीमती

राजम्माश्री म.म. नारायणशास्त्री खिस्ते, श्री व्यवसाय शास्त्री, हरिचरण भट्टाचार्य, प.टी.के. गणपति शास्त्री, डॉ. मंगलदेव शास्त्री आदि का स्थान प्रमुख है।

गद्य काव्य के भेद

गद्यकाव्य के दो भेद माने गए हैं–कथा व आख्यायिका। कथा व आख्यायिका का लक्षण करते हुए कविराज विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में लिखा है कि–

"कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्।"

"आख्यायिका कथावत्स्यात्कवेर्वशानुकीर्तिनम्।"

आचार्य भामह के अनुसार आख्यायिका की कथावस्तु यथार्थ पर आधारित होती है। उसका नायक स्वयं वक्ता होता है। जबकि कथा की विषयवस्तु कल्पित होती है तथा उसका वक्ता नामक के अतिरिक्त कोई व्यक्ति होता है। इस प्रकार साहित्य जगत में गद्यकाव्य के दो प्रमुख भेद है–कथा व आख्यायिका।

संस्कृत कथा साहित्य का उद्‌भव व विकास एवं नवविधा लघुकथा

संस्कृत साहित्य में कथा साहित्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में हमें आख्यान मिलते हैं। आख्यान परम्परा का विकास ब्राह्मणों, उपनिषदों तथा पुराणों में मिलता है। रामायण व महाभारत में भी आख्यान उपलब्ध है। संस्कृत कथा का मूल रूप ऋग्वेद के आख्यानात्मक संवाद सूक्तों में मिलता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन आख्यानों का और अधिक विकास हुआ, उसमें लौकिक प्रसङ्ग भी आने से बौद्ध काल में जातक कथाओं के रूप में कहानी साहित्य का विकास हुआ, जिसमें नीति व धर्म की शिक्षा अत्यन्त मनोरञ्जन ढंग से दी जाती है। इस तरह संस्कृत कथा साहित्य की परम्परा बराबर चलती रही। पंचतन्त्र संस्कृत कथा साहित्य का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ है जिसकी मूल प्रेरणा बौद्ध धर्म की जातक कथाऐं मानी जाती है। प्राचीन व परवर्ती कथा साहित्य दो रूपों में मिलता है– नीति कथा व लोककथा के रूप में।

नीतिकथा के रूप में जो साहित्य है उसमें कुछ राजनीति की शिक्षा से सम्बन्धित है, कुछ धार्मिक शिक्षा और कुछ व्यावहारिक, जीवन के आचार–विचार की शिक्षा देते हैं। लोककथाऐं मुख्यतः शिक्षात्मक व मनोरंजनात्मक है। इस प्रकार वैदिक युग में जिस कथा साहित्य का उद्‌भव हुआ, प्राचीन व परवर्ती साहित्यकारों ने अपनी प्रतिभा के बल पर उसे निरन्तर ही पल्लवित कर अपने प्रयासों से संवर्द्धित किया। प्राचीनकाल में जिन कथाओं का सृजन किया जाता था उनमें निरन्तर ही व्यापक परिवर्तन होते जा रहे हैं। आधुनिक संस्कृत साहित्य में सर्जकों की रूचि अब विशाल कलेवर

युक्त कथाओं की अपेक्षा लघुकथाओं का प्रणयन करने में अधिक दिखाई दे रही है। ये लघुकथाऐं सामाजिक यथार्थ का पर्याय है, आज के लघुकथाकारों की प्रवृत्ति दलित, शोषित उत्पीड़ीत तथा विभिन्न समस्याओं से आक्रान्त पात्रों के माध्यम से समाज की विषमताओं को लघुकथा के द्वारा उजागर करने में अधिक है। ये लघुकथाएँ अपने लघु कलेवर के माध्यम से सर्वहारा वर्ग की ज्वलन्त समस्याओं को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती है। अतः कहा जा सकता है कि आधुनिक कथाकार की प्रवृत्ति नीतिकथा या लोककथाओं तक ही सीमित नहीं है अपितु वर्तमान कथाकार प्राचीन कथाओं में वर्णित सीमित आयामों से बाहर निकलकर समाज व राष्ट्र में व्याप्त विविध समसामयिक समस्याओं पर सृजन कार्य कर रहें है। विषय व शैली की दृष्टि से ये लघुकथाऐं प्राचीन कथाओं की अपेक्षा अधिक सशक्त है साथ ही पाठकों को अपनी लघुता के कारण आकृष्ट करने में भी अधिक समर्थ है। वैदिक पौराणिक, आख्यान व उपाख्यान आदि में निबद्ध प्राचीन कथा साहित्य व पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि परवर्ती संस्कृत कथा साहित्य में कथा की जिन शैलियों एवं वर्णनों का रूप विद्यमान है उसकी अपेक्षा उन्नीसवीं शती के अन्त से लेकर आद्यावधि जिन लघुकथाओं की रचना की जा रही है। वे अधिक व्यापक, सशक्त व नवीन शैलियों से युक्त है, आधुनिक लघुकथाकार विविध विषयों को आधार बनाकर लघुकथाओं का प्रणयन कर रहे हैं। आधुनिक कथा साहित्य जगत में कथाओं की विविध विधाऐं है यथा–

1. प्रणयवर्णन परक कथा
2. सामाजिक कथा
3. भावप्रधान कथा
4. ऐतिहासिक कथा
5. उपदेश कथा
6. हास्य कथा
7. व्यंग्य प्रधान कथा आदि।

इस प्रकार आधुनिक कथा साहित्य में विविध विषयों व शैलियों को आधार बनाकर विपुल कथा साहित्य का सृजन किया जा रहा है। इन सभी विषयों पर कथाकारों द्वारा नवीन व नूतन लघुकथाऐं अनवरत रची जा रही है। संस्कृत भाषा की पत्र–पत्रिकाओं में लघुकथाओं की विपुल संख्या देख सकते हैं। कथाकारों का उद्देश्य पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित लघुकथाओं के माध्यम से पाठकों को नवीन सन्देश प्रदान कर राष्ट्र व समाज के प्रति जागरुक बनाना है तथा वे अपनी लघुकथाओं के माध्यम से इस कार्य में सफलता को भी प्राप्त कर रहे हैं। जयचन्द्र सिद्धान्तभूषण, श्रीमदप्पाशास्त्रि–राशिवडेकर, भट्ट–मथुरानाथ शास्त्री आदि विद्वानों ने विविध पत्र–पत्रिकाओं का

सम्पादन करते हुए अन्य भाषाओं की लघुकथाओं का अनुवाद संस्कृत भाषा में तो किया ही है साथ ही मौलिक रूप में भी लघुकथाओं की रचनाऐं की है। इनकी लघुकथाऐं निरन्तर ही पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होने के साथ ही कुछ लघुकथाओं के संकलन पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हुए है। सहृदया संस्कृत चन्द्रिका, संस्कृत साहित्यपरिषत्पत्रिका, संस्कृत रत्नाकर, सूर्योदय, मधुरवाणी, मंजूषा, अमृतवाणी, उद्यान पत्रिका, संस्कृत प्रतिभा, भारती, स्वरमङ्गला, अमृतलता, विश्वसंस्कृतम्, शारदा आदि पत्र–पत्रिकाओं में उन्नीसवीं शती के अन्त से लेकर आद्यावधि जितनी संस्कृत लघुकथाओं का प्रकाशन हो रहा है। उनकी गणना करना दुः साध्य कार्य है। पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित ये लघुकथाऐं अपनी लघुता व विशिष्टता के कारण सहृदय पाठकों को सहज ही अपनी और आकृष्ट कर रही है।

कथा साहित्य की परम्परा, आधुनिक लघु–कथाकार एवं लघु कथा संग्रह

कथा साहित्य का उद्भव वैदिक युग में ही हो गया था। अतः वैदिक युग से लेकर कथा साहित्य की दिशा एवं दशा में अनेक परिवर्तन हुए है। प्राचीन कथा साहित्य की परम्परा में गुणाढ्य की बृहत्कथा, बुधस्वामी की बृहत्कथाश्लोकसंग्रह, धर्मदासगाढ़ी की वसुदेव हिंडी, विष्णु शर्मा की पंचतन्त्र, नारायण पण्डित विरचित हितोपदेश, प्रभाचन्द्र तथा जनभद्र विरचित गद्यकथाकोश, शिवदास जंभलदत्त तथा वल्लभदेव विरचित बेतालपंचविंशति, सिंहासन द्वात्रिंशिका, शुकसप्तति, नरचन्द्रसूरि प्रणीत कथारत्नाकर, मेरूतुंगाचार्य की प्रबन्ध चिन्तामणि, राजशेखर की प्रबन्ध कोश, श्रीवर कवि विरचित कथाकौतुक, विद्यापति की पुरुष परीक्षा, भरकटद्वात्रिंशिका, बल्लालसेन रचित भोजप्रबन्ध, शिवदास कृत कथार्णव, जगन्नाथमिश्र रचित कथाप्रकाश, राजवल्लभ पताक प्रणीत चित्रसेन पद्मावती कथा, समयसुन्दर रचित कालिकाचार्य कथा, कविकुंजर की सभारंजनप्रबन्ध, राजानक भट्टाह्लादकवि विरचित देलाराम, आर्यशूर कृत जातकमाला, सिद्धार्थ प्रणीत उपमीति भाव प्रपंच कथा, नागदेव रचित मदनपराजय कथा आदि का स्थान प्रथमतः गणनीय है।

उन्नीसवीं शती के अन्त से लेकर अद्यावधि संस्कृत साहित्य में सहस्र की संख्या में लघुकथाओं का प्रणयन किया जा रहा है। जिनमें पं. अम्बिकादत्त व्यास विरचित, 'रत्नाष्टकम्' (1898), वेंकटरामशास्त्री का 'कथासप्तकम्' (भारतीय कथाओं का अनुवाद 1898), पं. अम्बिकादत्त व्यास विरचित ही 'कथाकुसुम' (1898), मदप्पाशास्त्रिराशि वडेकर का 'कथाकल्पद्रुमः' (1900), मेदपल्ली, वेंकट–रमणाचार्यका 'शेक्सपियर नाटका–कथावली' (1900), कोइलतम्बूरन केरलवर्मा का 'कथासंग्रह' (1900), अनन्ता–चार्य, कोडम्बकम् विरचित 'कथामंजरी' व 'नाटक कथा संग्रह' (1901), मन्दिकल रामशास्त्री का 'कथासप्ततिः' (1904), एम.के. तिरूनारायण अय्यगार्य का 'गद्यकथासंग्रह' (1910),

पण्डिता क्षमाराव रचित 'कथामुक्तावली' (1954) गणेश शर्मा का 'संस्कृत कथाकुञ्जम्' (1972), हरिकृष्ण शास्त्री की 'ललित कथाकल्पलता' (1976), अभिराजराजेन्द्र मिश्र विरचित 'इक्षूगन्धा' (1983) आदि कथा संग्रह व लघुकथाकार प्रमुख है।

कथा साहित्य व सारस्वतसौरभम्

आधुनिक लघुकथाकारों की इसी परम्परा में डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का स्थान महत्त्वपूर्ण है। 'सारस्वत–सौरभम्' के गद्य खण्ड के कथा भाग में लेखक ने 'आम्रपाली', आत्मसमर्पणम्, सद्बुद्धि देहि, व परिवर्तनम्' इन चार प्रमुख लघुकथाओं का संग्रह किया है। कथाकार डॉ. पाण्डेय ने यहाँ कथाओं के कथानकों को आधार बनाकर ही शीर्षको ा चयन किया है। ये सभी लघुकथाऐं जीवन की गहनतम् समस्याओं व विवेचनों को लेकर चलने वाली है। आम्रपाली कथा के द्वारा डॉ. पाण्डेय ने ऐतिहासिक पात्रों का अवलम्बन कर आम्रपाली के माध्यम से समाज में स्त्री की दशा का चित्रण करते हुए हृदय में आम्रपाली व नारी दशा के प्रति संवेदना व सहानुभूति उत्पन्न की है। वही दूसरी और नगरवधू आम्रपाली के पुत्र को मौलिक अधिकार देकर राजा बिम्बसार के जीवन का आदर्श प्रस्तुत करते हुए समाज में नारी की महत्ता को गौरवान्वित किया है। तथा कथा को सुखान्तता की और उन्मुख किया है।

डॉ. पाण्डेय की कथाओं के कथानकों में इतनी सशक्तता है कि वे कभी–कभी तो यथार्थता का भ्रम ही उत्पन्न कर देते हैं। 'आत्मसमर्पणम्' उदाहरण है। इस कथा के माध्यम से डॉ. पाण्डेय ने राष्ट्र की मौलिक समस्या 'आतंकवाद' को कल्पित पात्रों द्वारा राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत कर हमारी भटकी युवा पीढ़ी को दुराग्रह को छोड़कर आत्मसमर्पण करने का उपदेश दिया है। ये कथा जहाँ एक और उद्देश्य परक है वहीं दूसरी और नवीन युवा पीढ़ी को उपदेश प्रदान कर जागरूक बनाने में समर्थ है। इस कथा के माध्यम से कथाकार ने दुराग्रह की राह अपनाने वाली भटकी हुई युवा पीढ़ी को दुराग्रह को छोड़कर 'आत्मसमर्पण' का उपदेश दिया है। अतः शीर्षकानुसार ही इस लघुकथा का उद्देश्य भी है– 'आत्मसमर्पण'।

'सद्बुद्धि देहि' लघुकथा के माध्यम से कवि ने भारत की वर्तमान अवस्था को देखते हुए करुण क्रन्दन किया है हमारे राष्ट्र में व्याप्त स्वार्थभावना, बलात्कार, आतंकवाद आदि ज्वलन्त समस्याऐं निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो रही है। अतः कवि वर्तमान अवस्था को देखकर व्यथित होकर राष्ट्रपिता से प्रार्थना करते है कि वह पथ भ्रष्ट भारतीयों को सदाचार की शिक्षा दें। इस प्रकार इस कथा का उद्देश्य कम से कम शब्दों में नवीन सन्देश को आम आदमी तक पहुँचाना है।

'परिवर्तनम्' लघुकथा सामाजिक यथार्थ का पर्याय है। आधुनिक युग में वृद्ध माता–पिता के प्रति सन्तान के उपेक्षा भाव को इस लघु कथा में वर्णित कर डॉ. पाण्डेय ने सामाजिक सत्य को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है, इस कथा को लेखक ने सहजता के साथ उद्देश्यपरक बनाया है तथा तदनुकूल ही इसमें नवीन भाषा शैली, देशकाल परिवेश, संवाद, चरित्र–चित्रण, अलंकार आदि की हृदयावर्जक योजना की है।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि कथा साहित्य की परम्परा के विकास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि संस्कृत कथा साहित्य की विधाओं में निरन्तर नवीन विषयों व शैलियों का समावेश होता जा रहा है। ऐतिहासिक, सामाजिक, उपदेशात्मक, हास्यपरक, व्यंग्यपरक, नीतिपरक आदि के साथ–साथ समसामयिक विषयों को आधार बनाकर आधुनिक लघुकथाकार विविध लघुकथाओं को संस्कृत पत्र–पत्रिकाओं में निरन्तर प्रकाशित कर रहे हैं। जो सहृदय पाठकों तथा सामाजिकों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करने वाली है, संस्कृत कथा साहित्य की इसी परम्परा में विद्वत् लेखक डॉ. पाण्डेय ने ऐतिहासिकता, सामाजिकता व उपदेशात्मक रूप में रचित विषयों व नवीन शैलियों को आधार बनाकर जिन लघु कथाओं का प्रणयन किया है वह सहृदय पाठकों के लिए नितान्त श्लाघनीय व अनुकरणीय है। इन कथाओं को लेखक ने कम से कम शब्दों में आम आदमी को सन्देश प्रदान कर उद्देश्यपरक बनाया है। सभी कथाओं में लेखक ने अपने कथन से या तो भावों तथा संवेदनाओं को उतारा है या फिर पात्रों के अत्यल्प संवादों से जो परिस्थितिजन्य मार्मिकता को उभारते है। अतः इस प्रकार डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का गद्य साहित्य की परम्परा में विविध विषयों व विविध शैलियों को आधार बनाकर रचित कथाओं के कारण महनीय स्थान है, यह निः सन्देह कहा जा सकता है।

संस्कृत गद्य की वर्तमानकालीन प्रमुख प्रवृत्ति

निबन्ध साहित्य

विषय विशेष को आधार बनाकर, भावना विशेष पर आधारित अपने हृदय के उद्‌गार को संक्षिप्त विवेचनपूर्वक निबन्ध रूप में प्रस्तुत करने की परम्परा का आविर्भाव पाश्चात्य–साहित्य से माना जा सकता है। फ्रांस के प्रसिद्ध निबन्ध मान्ते (Montaigne, Michel) (Egquemde) (1533-1592) को निबन्ध विधा का जनक कहा जा सकता है। जिन्होंने सर्वप्रथम फ्रेंच में निबद्ध 1580 ई. में पेरिस से प्रकाशित 'Essais' शीर्षक में, धर्म–नागरिकता–सभ्यतादि मानव जीवन सम्बन्धि विविध विषयों पर अपने हृदय के उन्मुक्त विचारों का निबन्धन करते हुए सर्वप्रथम निबन्ध विधा की रचना की। मान्ते के विचारों से प्रभावित आंग्ल भाषा के विद्वानों ने भी 'Essay' नाम से इस विधा पर सर्जन किया जो

आज भी निरन्तर प्रचलित हो रही है जिसके 'ऐसे' (Essay), 'मोनोग्राफी (Monography), 'टीट्रीज' (Treatise) आदि रूपों पर वर्तमान जगत में निरन्तर सर्जन कार्य किया जा रहा है। संस्कृत साहित्य में निबन्ध की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। धर्मशास्त्रादि विविध विषयों पर प्राचीन लेखकों ने बहुविध निबन्ध, प्रबन्ध, सन्दर्भ आदि की रचना की है, परन्तु इनका कलेवर पाश्चात्य साहित्य की अपेक्षा दीर्घ था। संक्षिप्त रूप में भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए पाश्चात्य जगत में प्रचलित निबन्ध विधा का प्रचलन भारतीय भाषाओं में धीरे–धीरे होने लगा एवं भाषा शिक्षण में निबन्ध लेखन शिक्षण एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया। न केवल हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं में ही निबन्ध लेखन व शिक्षण का प्रचलन बढ़ा अपितु संस्कृत परीक्षाओं के पाठ्यक्रमों में भी निबन्ध लेखन विद्याथियों के लिए अनिवार्य हो गया।

बीसवीं शताब्दी क प्रारम्भ से ही संस्कृत पत्र–पत्रिकाओं में विविध विषयों पर अवलम्बित निबन्धों का प्रकाशन निरन्तर हो रहा है। अनेक पत्र–पत्रिकाऐं संस्कृत के प्रचार–प्रसार के लिए प्रकाशित हो रही है। जिनमें विद्वत्जनों की गद्य–पद्यात्मक रचनाऐं प्रकाशित होती रही है। वर्तमान युग के गद्यकाव्यकारों में पं. अम्बिकादत्त व्यास का स्थान सर्वोपरि है। व्यासजी के अतिरिक्त संस्कृत गद्य क्षेत्र में 'विद्योदय' पत्र के सम्पादक पं. हृषिकेश शास्त्री भट्टाचार्य का स्थान महत्त्वपूर्ण हैं, जिन्होंने समय–समय पर संस्कृत पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन करते हुए विविध विषयों पर आधारित निबन्धों का प्रकाशन निरन्तर ही पत्र–पत्रिकाओं में किया। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही पत्र–पत्रिकाओं में विविध विषयों पर आधारित जिस निबन्ध विधा का प्रचलन व प्रकाशन हुआ वह आधुनिक निबन्धकारों के लिए एक परम्परा के रूप में प्रचलित हो रही है। निबन्धों के प्रति पाठकों की बढ़ती रूचि लेखन की शिक्षा प्रदान करने के लिए संस्कृत विद्वानों ने विविध पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित निबन्धों को संकलित कर ग्रन्थ रूप में लिखना प्रारम्भ कर दिया, जिसमें वर्तमान युग के प्रमुख निबन्धकार निम्न है–

रेवतीकान्त भट्टाचार्य

रेवतीकान्त भट्टाचार्य ने 1928 ई. वर्ष में 'निबन्ध–कल्पलतिका' नामक निबन्ध संकलन ग्रन्थ का प्रकाशन किया जिसमें लेखक ने अपने स्वयं के ही संक्षिप्त निबन्धों का संकलन किया है।

हृषिकेश भट्टाचार्य (पं. पद्मसिंह शर्मा)

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक पं. पद्मसिंह शर्मा ने 1929 ई. में 'विद्योदय' पत्र में समय–समय पर प्रकाशित, श्री हृषिकेश भट्टाचार्य के विविध निबन्धों को 'प्रबन्ध–मञ्जरी' शीर्षक के अन्तर्गत संग्रहित किया है। इसमें समसामयिक समस्याओं पर सुरुचिपूर्ण एवं व्यंग्यात्मक निबन्ध

संकलित है। 'प्रबन्धमञ्जरी' की विविध विषयता एवं कलात्मक शैली को लक्ष्य करके विद्वानों ने कहा है कि 'सकलरसपरम्परातरंगितानां प्रबन्धाना संग्रह'। इनके निबन्ध यत्र–तत्र विश्वविद्यालयों के स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं के गद्य पाठ्यक्रम में संकलित किए गए है। इनकी भाषा अत्यन्त प्राञ्जल एवं प्रवाहपूर्ण है। महामहोपाध्याय पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने इनके सम्बन्ध में लिखा है–

"मुद्रयति वदनविवरं मृतभाषावादिनां मुहेराणाम्।
स्मरयति च भट्टबाणं भट्टाचार्यस्य सा वाणी।।"

म.म. पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

म.म.पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने 1937 ई. में 'निबन्धादर्श' शीर्षक में कादम्बरी नलचम्पूजातकमाला आदि से उद्धृत 33 गद्य भाग संकलित किए है। श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने प्रायः 15 वर्षों तक जयपुर से प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र 'संस्कृतरत्नाकर' का सम्पादन किया। आज से 52 वर्ष पुराने 'संस्कृत–रत्नाकर' के अंकों में चतुर्वेदी जी के बड़े–बड़े लेख धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए थे इनको संकलित करके एक दार्शनिक लेखमाला 'प्रमेय–पारिजात' शीर्षक से प्रकाशित हुई। इसी में 'पुराण–पारिजात' नामक निबन्ध संकलन भी प्रकाशित हुआ है। संस्कृत साहित्य में गद्य के अन्तर्गत नवीन विधाओं के प्रणेता के रूप में स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने संस्कृत वाङ्मय की अभूतपूर्व सेवा की है। संस्कृत गद्य में समीक्षात्मक प्रवृत्ति को प्रश्रय देकर उन्होंने अनेक 'आलोचनात्मक–निबन्ध' प्रस्तुत किये है। दार्शनिक विषयों और विशेषकर गीता–पुराण आदि की समीक्षा उन्होंने सरल संस्कृत गद्य में प्रस्तुत की है। जो गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ग्रन्थावली में प्रकाशित हुई है। ग्रन्थावली के सम्पादक श्री शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी ने विद्वान लेखक के निबन्धों की विशेषता का वर्णन करते हुए लिखा है–

"प्रस्तुत निबन्धों की विषयवस्तु से सम्बद्ध एक बड़ी विशेषता यह है कि इन निबन्धों में वेदों और स्मृतिवचनों के तात्पर्यार्थ पर जो अनेक विभिन्नताऐं आपाततः प्रतीत होती है और जिनके आधार पर सुधारवादी दृष्टिकोण भी उन्हें अपने पक्ष में सुसंगत दिखाने की चेष्टा करता है, ऐसे अनेक स्थानों का उहापोह के साथ इन निबन्धों में विश्लेषण मिलता है। 'वादे वादे जायते तत्वबोधः' इस उक्ति के अनुसार श्रुति स्मृति वचनों के अभिप्राय तक पहुँचने की परिपाटी का अवबोध इन निबन्धों में भली–भाँति होता है।" इस प्रकार पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का संस्कृत निबन्ध साहित्य में महनीय स्थान है।

भट्टमथुरानाथ शास्त्री (देवर्षि कलानाथ शास्त्री)

पं. गिरिधर शर्मा की प्रेरणा से कविशिरोमणि भट्टमथुरानाथ शास्त्री ने 'निबन्ध विद्या' नामक पुस्तक की रचना की जिसमें भट्टमथुरानाथ शास्त्री विरचित विविध विवरणात्मक, वर्णनात्मक, विचारात्मक, समीक्षात्मक तथा ललित निबन्धों को संग्रहित करते हुए निबन्ध प्रकार, लेखन विद्या,

परिपाटी का विवेचन किया गया। कई वर्षों तक अप्रकाशित रहने के बाद देवर्षि कलानाथ शास्त्री ने इसे 'प्रबन्ध–पारिजात' नाम से प्रकाशित किया है।

संस्कृत साहित्य की निबन्ध परम्पर में डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, डॉ. मंगलदेव शास्त्री, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर आदि का नाम उल्लेखनीय है। इनके लेख समय–समय पर पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं।

संस्कृत निबन्धों के प्रमुख भेद

संस्कृत साहित्य की दृष्टि से शब्दार्थ गुम्फन रूप निबन्ध की आत्मा व्यंग्यार्थ ही है। अतः आत्मतत्वभूत व्यंग्यार्थ को ही आधार बनाकर आधुनिक साहित्यकारों ने शब्दार्थगुम्फ रूप निबन्ध विद्या के भेद प्रभेद निरूपित किए है। प्राचीन साहित्यकारों ने उत्तम मध्यम व अधम के रूप में निबन्धों के तीन भेद निरूपित किए है। किन्तु वर्तमान काल में कुछ साहित्यकार वर्णनात्मक (Descriptive Essay), आख्यानात्मक (Narrative Essay), आलोचनात्मक (Reflective Essay) रूप में निबन्ध के तीन प्रकार मानते हैं। किन्तु कुछ अन्य साहित्यकार इस विभाग को भी समीचीन रूप में स्वीकृत नहीं करते हुए निबन्ध के चार भेद बतलाते हैं–वर्णनात्मक, चरितात्मक, आलोचनात्मक व कल्पनात्मक। इनमें दृश्य श्रव्य वस्तुओं के स्वरूपपादि का वर्णन करने वाले निबन्ध वर्णनात्मक, महापुरुषों आदि के चरित्र आदि के वर्णनपरक निबन्ध चरितात्मक, सद्सद् विवेचनपरक निबन्ध आलोचनात्मक तथा कवि की स्वतः स्फुरित प्रतिभा मात्र से उत्पन्न कल्पित पात्रों से सम्बन्धित निबन्ध कल्पनात्मक निबन्ध कहलाते हैं। परन्तु कुछ विद्वान् निबन्धों इन भेद–प्रभेदों पर आक्षेप करते हुए कहते हैं कि यह प्रभेद भी अपूर्ण ही है क्योंकि नीति, उपदेश, शब्द चमत्कार आदि से सम्बन्धित निबन्धों का समावेश किन प्रभेदों के अन्तर्गत किया जाए? नीति, उपदेश या शब्द चमत्कार से सम्बन्धित निबन्ध न तो वस्तु वर्ण से सम्बन्धित है जिन्हें वर्णनात्मक कहा जा सके, नहि ये चरित से सम्बन्धित है और न ही कल्पना व गुण दोष की आलोचना से सम्बन्धित ही है। ताकि इन्हें क्रमशः चरितात्मक, कल्पनात्मक या आलोचनात्मक के अन्तर्गत समाविष्ट किया जा सके अतः इस दृष्टि से निबन्धों के निम्न प्रभेद किये जा सकते हैं–

1. निरूपणात्मक
   (अ) वस्तुनिर्देशात्मक
   (ब) स्वरूप चित्रण परक
2. आख्यानात्मक
   (अ) चरितात्मक

(ब) कथाख्यायिकात्मक

3. आलोचनात्मक
   (अ) गवेषणात्मक
   (ब) विवेचनात्मक
4. कल्पनात्मक (प्रतिभावानात्मक)
5. चमत्कारात्मक (अतिशयात्मक)
6. उपदेशात्मक
   (अ) सभूमिक
   (ब) निर्भूमिक

निबन्ध साहित्य व सारस्वतसौरभम्

संस्कृत गद्य की वर्तमानकालीन प्रमुख प्रवृत्ति निबन्ध साहित्य की इसी परम्पर में आधुनिक विद्वत् लेखक डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने गुरुपादपद्मपूजा, क्रान्तिकारी प्रतापसिंह बारहठः, स्वतंत्रसेनानीः सागरमलगोपाः तथा हुतात्मा द्वयी नानाभाई खाटः काली बाई च शीर्षक से प्रमुख चार चरितात्मक निबन्धों का संग्रह 'सारस्वत–सौरभम्' में किया है। जो लेखक के गद्य नैपुण्य के द्योतक है, लेखक ने इन चारों निबन्धों में स्वयं अपने मुख से कुछ ऐसे व्यक्तित्वों के जीवन तथा त्याग, वैदुष्य एवं उच्चाशयता आदि चारित्रिक गुणों का वर्णन किया है, जिन पर यह राष्ट्र गर्व कर सकता है। चारित्रिक गुणों का वर्णन होने के कारण ही लेखक ने इन चारों निबन्धों को आख्यानात्मक निबन्ध भेद के चरितात्मक प्रभेद के अन्तर्गत समाविष्ट किया है।

'गुपादपद्मपूजा' चरितात्मक निबन्ध में लेखक प्रो. पाण्डेय ने पं. जगदीश शर्मा, साहित्याचार्य जो जयपुर के महाराजा संस्कृत महाविद्यालय में साहित्य विभागाध्यक्ष पद पर रहे हैं तथा जिन्होंने साहित्य में न्यायशास्त्र की गुत्थियों को समझाने में अपनी प्रतिभा एवं वैदुष्य का परिचय देकर हजारों विद्यार्थियों को साहित्य शास्त्र में पारंगत किया, ऐसे वैदुष्य की व्याख्या करते हुए गुरु के प्रति आत्मिक श्रद्धाञ्जलि प्रदान की है, वह गुरु भक्ति के प्रति श्रद्धास्पद है। इस जीवनवृत्त में गुरु शब्द का सटीक विवेचन भाषा लालित्य के साथ हुआ है।

'स्वातंत्र्यान्दोलन हुतात्मचतुष्टयी' रूप में वर्णित जीवनवृत्त में श्री प्रतापसिंह बारहठ, सागरमलगोपाः, नानाभाई खाटः व कालीबाई के स्वातन्त्र्य प्रेम, राष्ट्रीय निष्ठा और बलिदान की अमरगाथा है। लेखक ने उनके जीवन संघर्ष, भक्ति एवं त्याग के ऐतिहासिक दस्तावेज प्रस्तुत कर श्रद्धाञ्जलि प्रदान की है। जीवनवृत्तों में महान् व्यक्तित्वों के चरित्रों की मर्मस्पर्शी घटनाओं का

उल्लेख करते हुए लेखक ने जिस शैली को स्वीकार किया है वह सहजता सानुप्रासिकता व प्रसाद्गुणोपेता की त्रिवेणी है। 'सारस्वत–सौरभम्' में संग्रहीत चारों ही चरितात्मक निबन्ध यह सिद्ध करते हैं कि लेखक बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, विविध साहित्यिक विधाओं के ज्ञाता तथा निबन्ध जैसी गद्य विधा पर भी अप्रतिहत गति से लेखनी चलाने में समर्थ है। अतः वर्तमानकालीन गद्य साहित्य में चरितात्मक निबन्धों का प्रणयन कर डॉ. पाण्डेय ने अपनी लेखकीय प्रतिभा तथा कौशल का परिचय दिया है जो निश्चय ही 'सारस्वत–सौरभम्' व लेखक डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' को वर्तमानकालीन गद्य साहित्य की निबन्ध सर्जन परम्परा में महनीय स्थान पर प्रतिष्ठित करने वाली है।

2.5 संस्कृत साहित्य में रूपक का उद्भव एवं विकास

संस्कृत काव्य शास्त्रियों ने प्रयोग की दृष्टि से काव्य के दो भेद किये है–

"दृश्य श्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।।"

दृश्य काव्य का लक्षण करते हुए विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण में लिखा है कि–

"दृश्यं तत्राभिनेयं"

आचार्य विश्वनाथ ने काव्य को दृश्य काव्य व श्रव्य काव्य में विभक्त करते हुए दृश्य काव्य के पुनः दो भेद किए हैं–रूपक व उपरूपक। उपरूपक भी नाटिका त्रोटक आदि के भेद से अट्ठारह प्रकार का माना गया है यथा–

"नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्।
प्रस्थानोल्लाप्य काव्यानि प्रेखणं रासकं तथा।।
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भणिकेति च।।
अष्टादशप्राहुरूपरूपकाणि मनीषिणः।।"

रूपक भी पुनः नाटक आदि के भेद से दश प्रकार का होता है–

"नाटकमथ प्रकरणं भाणमवयायोग समवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्क वीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।।"

रूपक का स्वरूप

'अवस्थानुकृतिनार्ट्यम्' परिभाषा के अनुसार अवस्था का अनुकरण 'नाट्य' है। दृश्य होने के कारण यह नाट्य 'रूप' भी कहलाता है। यथा–

'रूपं दृश्यतयोच्यते'

आरोप किए जाने के कारण वह नाटक 'रूपक' भी कहलाता है यथा–

'रूपक तत्समारोपात्'

अतः दृश्यकाव्य को ही रूप, रूपक व नाट्य कहा जाता है। नाट्य शब्द जो रूपकवाची है, सर्वप्रथम भरत के 'नाट्यशास्त्र' में शीर्ष स्थान प्राप्त करता है। भरत नाट्य शास्त्र को 'कलाओं का विश्वकोष' कहा जाता है। साहित्य में काव्य और काव्य में नाट्य को मनोज्ञता की दृष्टि से परम पद प्राचीन सहृदयों ने प्रदान किया है–

"काव्येषु नाटकं रम्यं"

शेक्सपियर अपने नाटकों के कारण आंग्ल साहित्य में मूर्धन्य है। नाट्य एक समाश्रित कला है। अतः संश्लिष्ट परिभाषा करना कठिन है तथापि अनेक प्राच्य, पाश्चात्य विद्वानों ने इसको सुनिश्चित, सीमित तथा सर्वांगीण परिभाषा में परिसीमित करने का प्रयास किया है। अरस्तु का मानना है कि "त्रासद उस व्यापार विशेष का अनुकरण है, जिसमें गम्भीरता हो, पूर्णता हो तथा जिसमें एक विशेष परिणाम हो, भाषा अलंकृत सजीव तथा विभाषाओं से मुक्त हो और शैली वर्णन प्रधान न होर नाटकीय हो, जो करुणा तथा भय प्रदर्शन द्वारा मनोविकारों का उचित परिष्कार कर सकें।"

पाश्चात्य विद्वान् ए. निकॉल के अनुसार "नाट्य ऐसा दर्पण है जिसमें स्वाभाविकता प्रतिबिम्बित होती है। यह प्राकृतिक शक्तियों के विरुद्ध मानव के संकल्पनिष्ठ संघर्ष की कहानी, जिसमें मनुष्य को अपनी सीमा तथा प्रतिबद्धता का आभास होता है।"

जे.पी. प्रीस्टले तथा ऐशोल ड्यूक नाट्य को सामाजिक कला मानते हैं।

प्रसिद्ध पाश्चात्य संस्कृत विद्वान् ए.बी.कीथ का मानना है कि "संस्कृत नाट्य वास्तव में, भारतीय काव्य की उत्कृष्टतम् सिद्धि है। इसमें भारतीय साहित्य के सृष्टाओं द्वारा उपलब्ध साहित्य कला की रचना चरम संकल्पना का सार है।"

डॉ. गोविन्द चातक का मत है कि "नाट्य वह कला है जो देशकाल को प्रेक्षकों के सामने उतारती है और उन अनुभवों का साक्षात्कार कराती है जिनके बीच हम दिन रात जीतें है इसलिए यह मूर्त कला भी है अमूर्त भी है, अनुकरण भी है, दृश्य भी है, और श्रव्य भी है, सत्याभास भी है ओर सत्याभास को तोड़ने वाली भी है।"

नाट्य शास्त्र के प्रथम अध्याय में आये हुए कथानक के अनुसार सभी देवता और दानव ब्रह्मा के पास गये और प्रार्थना की कि कोई भी ऐसा मनोरंजन का साधन तैयार करें जो सार्वजनिक एवं सार्ववर्णिक हो। ब्रह्म ने कृपापूर्वक ऋग्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस ग्रहण कर एक नाट्यवेद नामक पंचमवेद का निर्माण किया–

जग्राह पाठयं ऋग्वेदात्सामेभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयां रसानाथर्वणादपि।।
वेदापवेदैः संबद्धो नाट्यवेदो महात्मना।
एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा सर्ववेदिना।।

वेदों में नाटक के प्रधान अंग–संवाद, संगीत, नृत्य एवं अभिनय के बीज किसी न किसी रूप में विद्यमान थे यथा–ऋग्वेद में यमयमी संवाद, पुरूरवा–उर्वशी संवाद, सरमा संवाद आदि नाट्यरूप ही है। सामवेद में संगीतत्व ही यही नाटक के अंग कालान्तर में विकसित हुए और नाटकों के उपजीव्य बने। अतः हम कह सकते है कि वेदों में नाटक के मूलतत्त्व विद्यमान है और उन्हीं से हम संस्कृत नाटकों का उद्भव मान सकते हैं।

वैदिकोत्तरकाल में रामायण और महाभारत में नाट्यशास्त्र एवं नाटकों का विकास हुआ। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में भी अमृतमन्थन, त्रिपुरद ओर प्रलम्बवध आदि नाटकों की चर्चा की है। बौद्धों ने भी नाटकों को अपने धर्मप्रचार का साधन समझकर अपनाया है। पाणिनि ने अपनी 'शिलालि' और 'कृशाश्व' नामक दो नटसूत्र प्रणेताओं का वर्णन किया है। अतः उनके समय तक संस्कृत नाटक आज उपलब्ध नहीं है। अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि उस युग में नाट्य–परम्परा विकास को प्राप्त हो रही थी। महाभाष्यकार पंतजलि ने 150 ईसा पूर्व के लगभग 'कंसवध' और 'बलिबन्ध' इन दो नाटकों का उल्लेख किया है। ईसा पूर्व 200 में नाटक रंगमंच पर अभिनीत होने लगे थे।

संस्कृत साहित्य में रूपक परम्परा

संस्कृत नाट्यशास्त्र के प्रथम नाटककार भास है। पंतजलि ने महाभाष्य में 'कंसवध' और 'बालिवध' नामक दो नाटकों का उल्लेख है परन्तु वे अप्राप्य है। अतः संस्कृत रूपक परम्परा इस प्रकार है–

भास – भास बहुत अधिक समय तक अज्ञात ही रहे। 1906 में म.म. गणपति शास्त्री ने त्रावणकोर में 13 नाटक खोज निकाले, उनके अनुसार इनके लेखक 'भास' है। यद्यपि इस विषय में बहुत विवाद है। भास का समय चौथी या पाँचवी सदी ई.पू. है। उनके नाटक है– प्रतिज्ञयौगन्धरायण,

स्वप्नवासवदत्ता, उरुभंग, दूतवाक्य, पंचरात्र, बालचरित्र, दूतघटोत्कच, कर्णभार, मध्यमव्यायोग, प्रतिमानाटक, अभिषेक नाटक, अविमारक और चारूदत्त।

शूद्रक – प्रसिद्ध प्रकरण 'मृच्छकटिकम्' के रचयिता, एक अत्यन्त प्रखर रचनाकार है। इनका समय तीसरी सदी ई.पू. है। मृच्छकटिकम् में 10 अंक है। यह भास के दरिद्रचारुदत्त पर आधारित है। 7 प्रकार की प्राकृतों का प्रयोग हुआ है।

अश्वघोष – संस्कृत के प्रथम बौद्ध नाटककार है– अश्वघोष। इनका समय ईसा की प्रथम सदी है। ये कनिष्क की सभा में थे। 1910 ई. में बुरफाना में डॉ. लूडर्स को इनके तीन नाटक शारिपुत्र प्रकरण और दो अधूरे नाटक जिनमें एक रूपक कथात्मक है।

कालिदास – महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ नाटककार माने जाते है। इनके नाटक हैं– मालविकाग्निमित्रा विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

विशाखदत्त – संस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटक 'मुद्राराक्षस' के लेखक विशाखदत्त है। मुद्राराक्षस एक ऐतिहासिक और राजनीतिक नाटक है।

भट्टनारायण – भट्टनारायण 'वेणीसंहार' नामक नाटक के रचयिता है। वेणीसंहार में छः अंक है। यह नाटक भास के 'उरुभंग' नामक एकांकी नाटक पर आधारित है।

भवभूति – संस्कृत नाटककारों में कालिदास के बाद भवभूति ही श्रेष्ठ माने जाते हैं। इनका समय 7वीं सदी का अन्त तथा 8वीं सदी का प्रारम्भ है। कन्नौज नरेश यशोवर्मा की सभा में ये थे। इनकी कृतियाँ है–महावीरचरित नाटक, उत्तररामचरित नाटक और मालती माधव प्रकरण। उत्तररामचरित करुण रस प्रधान 7 अंकों में निबद्ध उत्कृष्ट नाटक है।

सम्राट हर्षवर्धन – सम्राट् हर्षवर्धन का समय 7वीं सदी है। इनकी कृतियाँ है– रत्नावली नाटिका, प्रियदर्शिका नाटिका और नागानन्द नाटक। रत्नावली नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से एक श्रेष्ठ कृति है।

मुरारि – 'अनर्घराघव' के रचयिता मुरारि है। इनका समय 800 ई. है। इस नाटक में सात अंक है। इस नाटक पर भवभूति का प्रभाव है।

दामोदर – 'हनुमान्नाटक' के रचयिता दामोदर है। इनका समय 9वीं शती ई. है। इस नाटक में चौदह अंक है।

राजशेखर – राजशेखर का समय 10वीं सदी ई. है। इनकी प्रमुख रचनाएँ–कर्पूरमञ्जरी, विद्धशालभञ्जिका, बालरामायण और बालभारत।

दिङ्नाग – 'कुन्दमाला' नामक नाटक के रचयिता है। इनका समय कुछ विद्वान् 5वीं सदी ई. का मानते है। यह नाटक 1923 ई. में मद्रास से प्रकाशित हुआ था। कुन्दमाला में छः अंक है।

जयदेव – जयदेव का समय 1200 ई. है। इनका नाटक 'प्रसन्नराघव' है इसमें सात अंक है।

कृष्णमिश्र – 'प्रबोधचन्द्रोदय' नामक नाटक के रचयिता कृष्णमिश्र है। ये कालिंजर नरेश कीर्तिवर्मा की सभा में (11वीं सदी ई.) थे। यह नाटक शान्त रस प्रधान है।

राजस्थान के प्रमुख रूपककार – महाकाव्य, कथा साहित्य, गीतिकाव्य इत्यादि विधाओं के समान ही नाट्य लेखन की प्रवृत्ति भी विद्वानों में प्राचीनकाल से ही रही है। राजस्थान के विद्वान भी इस क्षेत्र में प्रारम्भ से ही कार्य करते रहे हैं 12वीं शताब्दी से ही राजस्थान प्रान्त नाट्य साधना की दृष्टि से समृद्ध रहा है। बीसवीं शताब्दी में राजस्थान में जो रूपक लिखे गए हैं उनके विषय में तथा उनके लेखकों के विषय में विवेचन निम्न प्रकार है–

1. गोविन्द प्रसाद शास्त्री

रूपक परम्परा में गोविन्द प्रसाद शास्त्री का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने समय–समय पर विविध रूपकों की रचना की है जो संस्कृत की विविध पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। इनके द्वारा लिखित प्रमुख रूपक इस प्रकार है– बाल शाकुन्तल नाटक, श्रेष्ठ शिष्योदाहरणम्, भारतविजयम् नाटक, पाकगर्वमंजनम्, कृष्णसुदामा नाटक, हरिश्चन्द्र नाटक।

2. विद्याधर शास्त्री

श्री शास्त्री ने महाकाव्य, खण्डकाव्य व कथा लेखन के साथ–साथ रूपक में भी अपनी कलम चलाई है। उन्होंने अनेक रूपकों की रचना की है। जो 'विद्याधरग्रन्थावली' में सुरक्षित है। उनके द्वारा विरचित प्रमुख रूपक है–दुर्बलबलम्, पूर्णानन्दम् व कलिपलायनम्।

3. डॉ. हरिराम आचार्य

राजस्थान विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्रोफेसर पद पर कार्यरत रहे हैं। डॉ. हरिराम आचार्य आकाशवाणी व दूरदर्शन के माध्यम से समय–समय पर लोगों के समक्ष आते रहते हैं। दूरदर्शन पर 'दायरे' सीरियल के बाद ये अत्यन्त चर्चित हो गये। इनके द्वारा लिखित प्रमुख रूपक है– पूर्व शाकुन्तलम्, गंगालहरी, नहि भोजसमो नृपः, आषाढस्य प्रथम दिवसे, सत्यमेव जयते आदि।

4. डॉ. नारायण शास्त्री कांकर

डॉ. नारायण शास्त्री कांकर महामहोपाध्याय पं. नवलकिशोर जी कांकर के सुपुत्र है। इन्होंने संस्कृत भाषाओं की अन्य विधाओं की अपेक्षा रूपक लेखन में अधिक रूचित ली है। इनके द्वारा लिखित प्रमुख रूपक हैं– कर्त्तव्यपरायणता, धनिकधूर्तता, सुहृत्समागमः, स्वामीभक्ता पन्ना धात्री, गुरुदक्षिणा, प्रेम–परीक्षा, पशुकल्याणम् आदि। इनके द्वारा लिखित एकांकी 'एकांकी संस्कृत नवरत्नमञ्जुषा' ग्रन्थ में सुरक्षित है।

5. डॉ. प्रभाकर शास्त्री

डॉ. प्रभाकर शास्त्री ने संस्कृत रूपक लेखन में रूचि ली है तथा उनके रेडियो रूपक आकाशवाणी द्वारा प्रसारित हुए है। उनके द्वारा लिखित प्रमुख रूपक है–जगद्गुरु श्री शंकराचार्यः, महाकवि माघः, बिल्हणचरितम् आदि।

6. देवर्षि कलानाथ शास्त्री

कलानाथ शास्त्री ने संस्कृत में लेख, कविता, कहानी एवं उपन्यास के अलावा रूपक लेखन में भी पर्याप्त रूचि ली है। इनके द्वारा लिखित प्रमुख रूपक निम्नलिखित है– महाभिनिष्क्रमणम्, कर्मक्षेत्रे, चित्तोड़सिंह प्रतापसिंहीयम्।

7. डॉ. देवशर्मा वेदालंकार

श्री शर्मा डी.ए.वी. कॉलेज अजमेर में संस्कृत व्याख्याता के रूप में कार्यरत है। इन्होंने भी संस्कृत में रूपकों की रचना की है जो अभी तक अप्रकाशित है। जिनमें प्रमुख है–अभिमन्यु शौर्यम्, शरण्यः शिविः, दूतवाक्यं, राज्याभिषेकः, सुरक्षा परिषद्ः, अधिवेशनम्, वेनिसनगरे धर्माधिकरण्यम् आदि।

बीसवीं शताब्दी के प्रमुख रूपककार

बीसवीं शताब्दी के संस्कृत नाटककारों में सर्वप्रथम नाटककार हरिदास सिद्धान्त वागीश है। जिनके प्रमुख नाटक है नाटक मेवार प्रताप, शिवाजी चरित, वंगीय प्रताप, विराज सरोजनी आदि है इसके अतिरिक्त बीसवीं शताब्दी के रूपककारों में प्रमुख स्थान है– दिल्ली साम्राज्य पौलत्स्यवध तथा घोषयात्रा के रचयिता लक्ष्मणसूरि अवर्गल, अमरमंगल, कलंकमोचन नामक नाटकों के प्रणेता पंचानन तर्करत्न, माणवक गौरव, प्रशान्त रत्नाकर, नलदमयन्ती, स्यमन्तद्वार आदि रूपकों के प्रणेता कालिपद, जीवन्यायतीर्थ मूलशंकर माणिकलाल, महालिंग शास्त्री, जग्गूकुल भूषण, रामनाथ मिश्र, मथुराप्रसाद दीक्षित, व्यासराज शास्त्री, वेंकटरावराघवन्, सुन्दरार्य, विश्वनाथ सत्यनारायण, विष्णुपद भट्टाचार्य, लीलाराव, विश्वेश्वर, यतीन्द्र विमल चौधरी, रामा चौधरी, सिद्धेश्वर चट्टोपाध्याय, वीरेन्द्र कुमार

भट्टाचार्य, नित्यानन्द श्रीराम वेलणकर, अभियनाथ चक्रवर्ती के नाम उल्लेखनीय है। जिन्होंने अपनी अद्‌भुत नाट्य रचनाओं से संस्कृत साहित्य को मण्डित किया है।

बीसवीं शताब्दी के नाटककारों में महामहोपाध्याय पं. मथुरादीक्षित का नाम महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने छः नाटकों की रचना की है– वीर प्रताप, शंकर विजय, पृथ्वीराज, भक्तसुदर्शन गाँधी विजय नाटकम्, भारत विजय नाटकम्। 'भारतविजयनाट्कम्' बीसवीं शताब्दी ई. का सर्वोत्तम संस्कृत नाटक माना जाता है।

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने अपनी कृतियों में नाट्य रचनाओं से संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वतसौरभम्' गद्य–पद्य नाट्य संग्रह कृति में 'राष्ट्ररक्षणम्' व 'आदर्शराज्यम्' इन दो एकांकी रूपकों का संकलन किया है। ये दोनों ही एकांकी रूपक राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत होने के कारण महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक संस्कृत नाट्यशास्त्र में सामाजिक तथा पौराणिक कथावस्तु पर आधारित नाटकों का ही प्रणयन किया जाता रहा है परन्तु डॉ. पाण्डेय प्रणीत दोनों एकांकी रूपक ऐतिहासिक कथावस्तु पर आधारित है। ऐतिहासिक कथावस्तु पर आधारित होने के कारण ही इनके एकांकी नाट्य संस्कृत साहित्य में महनीय स्थान प्राप्त किए हुए है। 'राष्ट्ररक्षणम्' एकांकी रूपक को दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा आयोजित 'अखिल भारतीय मौलिक संस्कृत लघु नाटक लेखन, प्रतियोगिता 2001–2002' में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ जो इस नाट्यकृति का संस्कृत साहित्य में विशिष्ट स्थान का सूचक है। 'राष्ट्ररक्षणम्' रूपक का कथानक राजस्थान का ऐतिहासिक पृष्ठ है। इतिहास प्रसिद्ध मेदपाटाधिपति महाराणा प्रताप के जीवनवृत्तों की उस साहसिकता का परिचय दिया है जिस पर न केवल राजस्थानियों का ही नहीं अपितु समस्त राष्ट्र का शिर गौरवान्वित है।

डॉ. पाण्डेय ने एकांकी रूपकों सरल सुबोध व कोमल भाषा का प्रयोग किया है। भाषा में कहीं भी दुरुहता नहीं है। जिसे समझने में कठिनाई हो। संवाद योजना भी परम रमणीय है सर्वत्र लघु व सरल संवाद है। रस अलंकार, गुण आदि का पर्याप्त रमणीय प्रयोग किया गया है। संयत पद्य प्रयोग अपना स्वतन्त्र प्रभाव डालते है। जिसके कारण चित्त बरबस ही नाट्य की और आकर्षित हो जाता है।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि डॉ. पाण्डेय के एकांकी नाटक ऐतिहासिक परम्परा पर आधारित होने के कारण संस्कृत रूपक परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। डॉ. पाण्डेय ने एकांकी रूपकों के माध्यम से भारतीय स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के सन्दर्भ में अपना साहित्यिक योगदान देने के लिए भारत के प्रतापी महावीरों का आदर्श और प्रेरणाप्रद कथानक राष्ट्र

के समक्ष रखा है। इस विशिष्टता के कारण ही संस्कृत रूपक परम्परा में डॉ. पाण्डेय का तथा उनके द्वारा प्रणीत एकांकी रूपकों का महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट स्थान है।

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' विरचित कृतियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

हंसरक्षणम्–वर्ष 2007–08 में दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा अखिलभारतीय मौलिक संस्कृत लघुनाटक लेखन प्रतियोगिता में पुरस्कृत रहा। गौतम बुद्ध द्वारा स्वाभाविक रूप से की गई हंस–रक्षा की घटना एक आदर्श प्रस्तुत करती है, इसी से प्रेरित हो रचा गया यह 'हंसरक्षणम्' लघुनाटक जीव–रक्षा के लिए समस्त लोगों का मार्ग प्रशस्त करेगा।

संस्कृत नाट्य प्रणेता

पं. हरिजीवनमिश्रः – जयपुर आमेर नरेश संस्कृत भाषा अनुराग से अपने आश्रय में कई विद्वानों का संग्रह किया। उनमें पण्डित हरिजीवनमिश्र भी अपना स्थान रखते हैं। श्रीहरिजीवनमिश्र की विशिष्ट कृतियों का समालोचनात्मक व समीक्षात्मक अध्ययन करके संस्कृत वाङ्मय के विकास में अनुपम योगदान दिया है।

वृक्षरक्षणम् – यज्ञादि धार्मिक कृत्यों के सम्पादन में इन देवदारू, कल्पवृक्ष, पीपल, बड़, कदम्ब आदि वृक्षों के साथ शमी वृक्ष ने भी अत्यधिक महत्त्व प्राप्त किया। राजस्थान राज्य में शमी वृक्ष बहुलता से मिलता है। विश्व पर्यावरण संरक्षण संस्कृति के 'चिपको आन्दोलन' की यह प्रथम महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। राजस्थान सरकार ने शमी (खेजड़ी) वृक्ष को राज्यवृक्ष के रूप में मान्यता प्रदान की है। वर्ष 2010–11 में उत्तराखण्ड संस्कृत संस्थान, दिल्ली संस्कृत अकादमी और राष्ट्रीय स्तर पर अखिल भारतीय मौलिक संस्कृत लघुनाटक लेखनप्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ।

सारस्वत–सौरभम्– यह कृति डॉ. पाण्डेय के पाण्डित्य, गम्भीर चिन्तन और नूतन आयामों का दर्पण है। इस कृति में सभी तरह की रचनाएँ है, जो यह सिद्ध करती है कि लेखक सायास रचनाकार नहीं, अपितु सहज और निसर्गतः रचनाधर्मी है। कविता से लेकर कथा, रूपक तथा जीवनी तक की यात्रा की है। इस यात्रा में लेखन ने प्राचीन से अर्वाचीन तक वैचारिक दृष्टि और हर पक्ष को प्रस्तुत करने का संकल्प व्यक्त किया है। इस कृति के कविता खण्ड में 42 कविताएँ हैं। इस खण्ड को भी 'स्तुतिः, प्रकृतिः, कालिदासीयम्, राष्ट्रीयम्, किं चतुष्कम्, संस्कृतम् एवं मौक्तिकम् नाम से सात भागों में विभक्त किया गया है।

राष्ट्ररक्षणम् – 'राष्ट्ररक्षणम्' रूपक का कथानक राजस्थान का ऐतिहासिक पृष्ठ है। इतिहास प्रसिद्ध मेदपाटाधिपति महाराणा प्रताप के जीवनवृत्त की उस साहसिकता का परिचय दिया है। जिस पर समस्त राष्ट्र का शिर गोरवान्वित है। पात्रों के संवाद देशकाल तथा भावाभिव्यक्ति से ओतप्रोत है। इसके संवाद छोटे और संवेगपूर्ण हैं। सहजता के साथ रङ्गमंच पर अभिनीत किये जाने वाला यह रूपक राष्ट्रियता से ओतप्रोत है। डॉ. पाण्डेय कृत 'राष्ट्ररक्षणम्' को वर्ष 2000–01 में दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा इस एकांकी रूपक को अखिल भारतीय मौलिक संस्कृत लघु नाटक लेखन प्रतियोगिता में द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ है।

≈≈≈≈

संदर्भ सूची

1. साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, 1/3, पृ.सं.–17
2. साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, 6/1, पृ.सं.–411
3. साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, 6/3
4. साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, 6/313, पृ.सं.–602
5. साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, 6/329
6. साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, 6/314, पृ.सं.–602
7. ध्वन्यालोक, आचार्य आनन्दवर्धन
8. ध्वन्यालोक, आचार्य आनन्दवर्धन, 3/17
9. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, 1/17
10. ऋग्वेद, 1/124/7
11. ऋग्वेद, 10/7/04
12. पाताल विजय
13. मेघदूत (उत्तर मेघ), महाकवि कालिदास, श्लोक सं. 55
14. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. जयकृष्ण प्रसाद खण्डेलवाल, पृ.सं.–168
15. साहित्यदर्पण, कविराज विश्वनाथ, 6/330, पृ.सं.–609
16. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. जयकृष्ण प्रसाद खण्डेलवाल, पृ.सं.–289
17. महाभाष्य, पतञ्जलि, 3/3/87
18. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ.सं.–377
19. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ.सं.–378
20. हर्षचरितम्, बाणभट्ट, 1/11
21. साहित्यदर्पण, कविराज विश्वनाथ, 6/332
22. साहित्यदर्पण, कविराज विश्वनाथ, 6/332
23. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. जयकृष्ण प्रसाद खण्डेलवाल, पृ.सं.–314
24. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. जयकृष्ण प्रसाद खण्डेलवाल, पृ.सं.–314

25. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. जयकृष्ण प्रसाद खण्डेलवाल, पृ.सं.–316
26. साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, 6/1, पृ.सं.–411
27. साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, 6/1, पृ.सं.–411
28. साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, 6/4,5,6
29. साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, 6/3
30. दशरूपक, आचार्य धनञ्जय, प्रथम प्रकाश, पृ.सं.–6
31. दशरूपक, आचार्य धनञ्जय, प्रथम प्रकाश, पृ.सं.–7
32. दशरूपक, आचार्य धनञ्जय, प्रथम प्रकाश, पृ.सं.–7
33. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, प्रथम अध्याय, 17/18

तृतीय अध्याय

नाट्यविद्या (नाटक–साहित्य)

तृतीय – अध्याय

नाट्यविद्या (नाटक–साहित्य)

उत्त्पत्ति और विकास

'काव्येषु नाटकं रम्यम्' उक्ति प्रसिद्ध है तथा सार्थक भी। साहित्य में रूपक (नाटक) का एक प्रमुख स्थान है। वह दर्शकों को ऐतिहासिक व काल्पनिक पात्रों से साक्षात्कार करवा कर उनके जीवन चरित्र से शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा देता है। साहित्य दर्पणकार काव्य को इस प्रकार विभक्त करते हैं–

"दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।।"[1]

दृश्यकाव्य में रूपकों तथा उपरूपकों का ग्रहण होता है। क्योंकि इनका मञ्च पर अभिनय किया जाता है। नाट्कादि 'रूपक' के भेद है। जो नाट्य शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार किये गए है। रूपक एक पारिभाषिक पद है। अभिनय की दशा में अभिनेता स्वयं पर एक नाटकीय पात्र के स्वरूप का आरोप कर लेता है अतः नाटकादि के लिए रूपक का प्रयोग किया जाता है।

रूपकों के भेद

'नाटक' रूपक का एक भेद है। रूपक 10 है तथा उपरूपक 18 है। यथा–

रूपक

"नाटकमथप्रकरणं भाणव्यायोगसमवकार डिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।।"[2]

1. नाटक	2. प्रकरण	3. भाण
4. व्यायोग	5. समवकार	6. डिम
7. ईहामृग	8. वीथी	9. प्रहसन
10. अङ्क।		

उपरूपक

"नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्।
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा।।"

"संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका।
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भणिकेति च।।"[3]

1. नाटिका	2. त्रोटक	3. गोष्ठी
4. सट्टक	5. नाट्यरासक	6. प्रस्थानक
7. उल्लास्य	8. काव्य	9. प्रेंखण
10. रासक	11. संलापक	12. श्रीगदित
13. शिल्पक	14. विलासिका	15. दुर्मल्लिका
16. प्रकरणिका	17.हल्लीश	18. भाणिका।

अनेक भारतीय मनीषियों का विचार है कि वैदिक काल में नाटक के प्रधान अंग–नृत्य, संगीत, संवाद आदि का अस्तित्व था। ये ही अंग विकसित होकर कालान्तर में नाटक के रूप में परिवर्तित हो गए। इन क्रिया–कलापों में नाटक का पुट भले ही हो, किन्तु उसे पूर्णतः 'नाटक' नहीं माना गया। विद्वानों का एक समुदाय इस मत का समर्थक है, तो दूसरा परम्परावादी समुदाय कहता है कि ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम नाट्यवेद की रचना की थी और भरतमुनि ने सर्वप्रथम पृथ्वीमण्डल में उसका प्रचार किया था। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य (संवाद) सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस–तत्व ग्रहण कर नाट्यवेद की रचना की थी–

"जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनय रसानाथर्वणादपि।।"[4]

नाटक का महत्त्व

'काव्येषु नाटकं रम्यम्।'

'नाटकान्तं कवित्वम्' (नाटक कवित्व की चरम सीमा है।)

"त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्वं नाट्यं भावानुकीर्तनम्।"[5]

(इसमें किसी एक विषय का वर्णन न होकर तीनों लोकों के विशाल भावों का अनुकीर्तन किया जाता है।)

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येस्मिन् यत्र दृश्यते।।"[6]
"नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाऽप्येकं समाराधनम्।"[7]
"नाना भावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्।।"[8]

नाटक का स्वरूप

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्।
विलासद्धर्यादिगुणवद्युक्तं नाना विभूतिभिः।।"
"सुखदुःखसमुद्भूति नाना रसनिरन्तरम्।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्का परिकीर्तिताः।।"
"प्रख्यातवंशो राजर्षिधीरोदात्तः प्रतापवान्।
द्वित्योऽथ दित्यादित्यो वा गुणवान्नायको मतः।।"
"एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः।।"
"चत्वार पञ्च वा मुख्याः कार्यत्यापृतपुरुषाः।
गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम्।।"

अर्थात् पुराण, इतिहासादि में प्रसिद्ध वृतान्त वाला नाटक का वृत्त होना चाहिए। इसमें पाँचों सन्धियाँ, जो बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी, कार्य (अर्थ प्रकृतियाँ) एवं प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम (कार्या–अवस्थाएँ) के योग से बनती है, का विधान होता है। अनेक प्रकार की विभूतियों से युक्त, सुख और दुःख की उत्पत्ति से अनेक प्रकार के शृङ्गार, वीरादि रसों से व्याप्त, पाँच से दस अंक तक नाटक में होने चाहिए। शृंगार या वीर में से कोई एक प्रधान रस होता है। अन्य सभी रस गोण होते हैं तथा निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस होता है। नायक के कार्य में संलग्न पुरुष चार या पाँच होने चाहिए। उस नाटक की रचना गोपुच्छ के अग्रभाग के समान अंकों में समायोजित करनी चाहिए।

नाटकोत्पत्ति के विषय में विविध मत

1. देववाद

देवताओं का मनोरंजन हेतु ब्रह्माजी से निवेदन। ब्रह्माजी ने चारों वेदों से सारतत्व को लेकर पञ्चम नाट्यवेद बनाया–

"जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यतुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।"[9]

2. संवाद–सूक्तवाद

प्रो. सिल्वा लेवी, प्रो. मैक्समूलर के मतानुसार–पुरुरवा–उर्वशी, अगस्त्य–लोपामुद्रा तथा उनके पुत्र, इन्द्र–इन्द्राणि, यम–यमी, पणि–सरमा आदि संवाद सूक्तों के आधार पर नाटक की उत्पत्ति हुई है।

3. नृत्यवाद

सामूहिक नृत्य से नाटक की उत्पत्ति।। मेक्डोनल।।

4. पुत्तलिका नृत्यवाद

डॉ. पिशेल के अनुसार कठपुतली के नाच से नाटक की उत्पत्ति हुई है।

5. छाया नाटकवाद

प्रो. ल्यूडर्स मतानुसार नाटकों की उत्पत्ति छाया नाटकों से हुई है। (पर्दे के भीतर से अभिनेताओं का अभिनय दिखाना छाया नाटक है।) संस्कृत में एक ही छाया नाटक था– 'दूतांगद'।

6. मेपोलवाद

श्री हरिप्रसाद शास्त्री के अनुसार यूरोप में होने वाले 'मेपोल' उत्सव में किये जाने वाले नृत्यादि से नाटक की उत्पत्ति हुई। (इसमें किसी एक युवती को अलंकृत कर एक स्तम्भ गाडकर उसके चारों ओर नृत्यादि किया जाता है) (1 मई को)

7. वीरपूजावाद

डॉ. रिजवे के अनुसार दिवंगत वीरपुरुषों की स्मृति में समय–समय पर जो सामूहिक सम्मान प्रदशित किया जाता था, उसी से नाटक का जन्म हुआ। भारत में रामलीला और कृष्णलीला इसी प्रवृत्ति के परिचायक है।

8. यवनिकावाद

भारतीय नाटकों की उत्पत्ति सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् ग्रीक नाटकों के प्रभाव से हुई है। ।। वेबर।।

9. लोक स्वांगवाद

प्रो. हिलब्रैण्ट के अनुसार भारत में पहले स्वांग अधिक जनप्रिय थे, उन्हीं स्वांगों में रामायण–महाभारत की कथाओं का संयोजन कर नाटकों का उद्‌भव और विकास हो गया।

10. प्रकृतिवाद

डॉ. कीथ ने प्राकृतिक परिवर्तनों को मूर्तरूप में प्रस्तुत करने की मनोवृत्ति से नाटकों की उत्पत्ति मानी है।

11. आधुनिक विद्वानों का मत

चारों वेदों से आवश्यक तत्त्वों का संग्रह करके नाटकों का प्रारम्भ हुआ। यह मानना उचित है। यही नाटक शनैः शनैः परिष्कृत होते हुए उच्च कोटि के नाटकों के रूप में प्राप्त होते हैं।

12. संस्कृत नाटकों का विकास

1. आधुनिक काल में एकमत से स्वीकृत है कि नाटकों का प्रारम्भ सर्वप्रथम भारत में हुआ।
2. रामायण व महाभारत से ज्ञात होता है कि उस समय नाटक प्रचलित थे।
3. महाभारत के हरिवंश पर्व में वज्रनाभ नामक राक्षस की नगरी में 'रामायण' और 'कौबेररम्भाभिसार' नाटकों के खेले जाने का उल्लेख है।
4. 400 ई.पू. के पाणिनि ने अष्टाध्यायी में दो नाट्यशास्त्रकारों का उल्लेख किया है–शिलालिन् व कृशाश्व।
5. पाणिनि ने 'जाम्बवतीजय' या 'पातालविजय' नामक नाटक भी लिखा था, इसकी पुष्टि निम्न पद्य से होती है–

   "स्वस्ति पाणिनये तस्मै येन रूद्रप्रसादतः।
   आदौ व्याकरणं प्रोक्तं ततो जाम्वतीजयम्।।"

6. पतञ्जलि ने महाभाष्य में 'कंसवध' और 'बलिबन्ध' नामक नाटकों का उल्लेख किया है।
7. इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्टतः ज्ञात है कि 300 ई.पू. में भारतीय नाट्य कला अपनी उन्नतावस्था में थी।

संस्कृत नाटकों की विशेषताएँ

1. संस्कृत नाटक सुखान्त होते हैं। 'उरुभंग' को संस्कृत का दुःखान्त नाटक कहते हैं। किन्तु यह भी सुखान्त ही है, क्योंकि पापी का नाश सुख को ही उत्पन्न करता है।
2. संस्कृत नाटकों में अन्वितित्रय (काल, स्थान, कार्य) की उपेक्षा की जाती है।

3. संस्कृत नाटक मुख्यतः रामायण, महाभारत, पुराण, बड्डकहा आदि पर आधारित होते हैं।
4. संस्कृत नाटकों में गद्य–पद्य का मणि–काञ्चन संयोग होता है। यहाँ कथोपकथन हेतु गद्य तथा सुभाषित आदि के लिए पद्यों का प्रयोग किया जाता है।
5. संस्कृत नाटकों में प्रथम श्रेणी व मध्यम श्रेणी के पुरुष पात्र ही संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं तथा समस्त स्त्रीपात्र और अधम स्तर के पात्र प्राकृत बोलते हैं।
6. संस्कृत नाटकों में प्रधानतः शृंगार, वीर, करुण या शान्त रस होता है।
7. संस्कृत नाटकों में 5 अर्थप्रकृति, 5 अवस्था और 5 सन्धियों की व्यवस्था की जाती है। इनसे कथानक का विकास होता है।
8. पात्रों की संख्या निश्चित नहीं होती तथा दिव्य, लौकिक आदि सभी प्रकार के पात्र होते है।
9. संस्कृत नाटकों में अभिनय सम्बन्धि–संकेत यथास्थान दिये होते हैं।
10. संस्कृत नाटकों की रचना के कुछ विशेष सोपान है–नाटक का अंकों में विभाजन, नान्दी पाठ से आरम्भ, सूत्रधार द्वारा प्रस्तावना में कविपरिचय तथा कथानक को जोड़ने के लिए विष्कम्भक और प्रवेशक का प्रयोग, भरत–वाक्य से समाप्ति।

संस्कृत–नाट्यविधा–सम्बद्ध पारिभाषिक शब्द

1. नान्दी

रूपक के आरम्भ में आशीर्वचन से युक्त मांगलिक अनुष्ठान ही नान्दी कहलाता है। मंगलाचरण रूप एक, दो या अधिक पद्यों में देवस्तुति करते हुए सामाजिकों के कल्याण की प्रार्थना की जाती है। मंगलाचरण की तरह ही यहाँ भी आशीर्वादात्मक नमस्कारात्मक और वस्तुनिर्देशात्मक तीनों प्रकार प्राप्त होते हैं–

नान्दी की परिभाषा साहित्यदर्पणकार करते हैं–

"आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्यान्नान्दीति संज्ञिता।।"

2. प्रस्तावना या स्थापना

यह रूपक का आमुख है। नान्दी के बाद इसका स्थान होता है। इसमें सूत्रधार व नटी के परस्पर वार्तालाप से काव्य व कवि का परिचय मिलता है।

3. भरतवाक्य

रूपक के अन्त में प्रायः नायक के द्वारा मंगलाचरण के रूप में आशीर्वचन, प्रार्थना या शुभकामना के श्लोक का प्रयोग किया जाता है। इसका नाम नाट्यशास्त्र के रचयिता आचार्य भरत के नाम पर 'भरतवाक्यः' रखा गया है। इसमें समकालीन राजा आदि का नाम तथा वातावरण का चित्रण भी होता है। अतः ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

4. विदूषक

संस्कृत रूपकों में हास्य–व्यंग्य हेतु विदूषक का प्रयोग होता है। यह कथानक का अङ्ग बनकर कथा प्रवाह के विकास में सहायक होता है।

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' की कृतियों का सामान्य परिचय

3.1 संस्कृत नाट्य प्रणेता : पं. हरिजीवन मिश्रः का परिचयात्मक अध्ययन

संसार में संस्कृत भाषा विश्व की सभी भाषाओं में प्राचीन मानी गई है। ऋग्वैदिक काल से संस्कृत भाषा की रचना शुरू हुई जो आज भी बाधा रहित प्रचलित है। जयपुर राज्य के कछवाह वंशीय राजाओं के आश्रय में बहुत से विद्वान रहते थे। उनमें महाकवि पण्डित हरिजीवनमिश्र भी थे।

वंश परिचय

आमेर के महाराज मिर्जा रामसिंह प्रथम की राज्य सभा में स्थित विद्वानों में पण्डित हरिजीवनमिश्र का प्रमुख स्थान था। कवि ने दशरूपकों की रचना की। उनकी रचना में नाटक, नाटिका, प्रहसन आदि रूपकों के भेद है। पण्डित हरिजीवनमिश्र ने अपनी कृतियों में अपनी वंश परम्परा के विषय में थोड़ा ही उल्लेख किया है। श्रीमिश्र के लेखन से यह ज्ञात होता है कि उनके पूर्वज हिरण्यगर्भ गौडवंश से उत्पन्न हुए थे। पण्डित श्रीमिश्र के पिता का नाम श्री लालमिश्र तथा पितामह का नाम श्री वैद्यनाथ मिश्र था। इस कथन का प्रमाण उनके लेख 'अद्भुततरङ्ग' नामक प्रहसन से लिया है।

"इति श्री सार्वभौम–महाराजाधिराजश्रीमानसिंहवंशजश्रीमहाराजजयसिंहपुत्रसकलविद्यारसिक–श्रीमहाराजाधिराजश्रीरामसिंहाज्ञया हिरण्यगर्भगौडसकलविद्याविशारदश्रीवैद्यनाथमिश्रतत्पुत्रपण्डितमण्डन–श्रीलालमिश्रात्मजश्रीहरिजीवनमिश्रेण विरचिताऽद्भु ततरङ्गनाम्नि प्रहसने मन्दहासतृतीयोऽङ्कः समाप्तः।"

इस प्रकार प्रभावली नाटक के अन्त में पुष्पिक से यह ज्ञात होता है–

"इति श्री पाश्चात्यगौडान्वयभूषण–श्रीवेदवेदान्तसारहारविराजमानहृदय श्रीवैद्यनाथमिश्रतत्पुत्र –सफलशास्त्रार्थविवेचक श्रीलालमिश्रात्मजहरिजीवनमिश्रेण विरचिता प्रभवली नाटिका सम्पूर्णा। सम्वत् 1725 श्रावणमासे कृष्णपक्षे द्वितीयायां बुधवासरे लिखितम्।"

अतः प्रमाणिकता के आधार हरिजीवनमिश्र गौड़ वंश में उत्पन्न माने गये है। इसी आधार पर इनके पितामह श्री वैद्यनाथमिश्र सम्पूर्ण वेदों के ज्ञाता और विद्याओं में निपुण तथा पिता श्रीलालमिश्र भी सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता माने गये हैं।

इस प्रकार 'पोथीखाना' जयपुर संग्रहालय से प्राप्त विजयपारिजात नामक नाटक के अन्त में यह ज्ञात होता है कि हरिजीवनमिश्र के गुरू का नाम श्री मदनोपाध्याय था। विजयपारिजात नाटक के अनुसार–

"श्रीवेदवेदान्त विद्याविशारद–श्रीगौडाग्रगण्य–श्रीवैद्यनाथमिश्रान्वयसर्व–शास्त्रपारङ्गतश्रीलाल–मिश्रात्मजश्रीमद्गुरुमदनोपाध्यायप्रसादलब्धकविताविलास–हरिजीवनमिश्रविरचिते विजयपारिजातमहा–नाटके मधुमोहविमोको नाम दशमोङ्कः।"

इन सभी प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि पण्डित हरिजीवनमिश्र के पितामह वेद–वेदान्तों के साथ सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता श्रीवैधनाथमिश्र तथा पिता श्रीलालमिश्र सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता थे। तथा उनके गुरू श्रीमदनोपाध्याय थे।

इसके अतिरिक्त कहीं पर कुछ भी नहीं कहा गया है हरिजीवनमिश्र के विषय में। श्रीमिश्र महोदय के पूर्वज किस देश से वास्तव रखते थे और उनका कब 'आमेर' नगर में किसके यहाँ आगमन हुआ। उनकी माता का नाम क्या था? उनकी वंश परम्परा कहाँ से थी। किस कारण से वह मिर्जा राजा रामसिंह प्रथम के सम्पर्क में आये। किस समय उनका जन्म आदि सारे प्रश्न मस्तिष्क में जिज्ञासा उत्पन्न करके उसे भ्रमित कर रहे है। लेकिन क्या किया जाए। 'पोथीखाना' जयपुर संग्रहालय में पण्डित हरिजीवनमिश्र की पाण्डुलिपि रूप में लिखि कृतियों का अवलोकन करने पर भी यह जिज्ञासा शान्त नहीं होती है।

'पोथीखाना' जयपुर संग्रहालय में 'पिंगलहमीर' ग्रन्थ की प्रतिलिपि सुरक्षित है। जिसकी टिप्पणी है–'पिंगलहमीर पत्र 32 तिसमें चौदह पत्र–महल में पढ़वाने मार्फत हरिजीवनमिश्र।'

अनेक कारणों से ज्ञात होता है कि आमेर के महाराजा मिर्जाराज जयसिंह प्रथम ने अपने पुत्र मिर्जाराज रामसिंह को पढ़ाने के लिए श्री हरिजीवनमिश्र को नियुक्त किया था। पण्डित श्रीमिश्र के विषय में केवल यही ज्ञात होता है।

स्थिति–काल

आमेर के महाराज मिर्जाराजा जयसिंह प्रथम ने (1628–1667 ई. पर्यन्त) अपने पुत्र के अध्ययन के लिए काशी नगरी में व्यवस्था की। तब वहाँ जयसिंह ने एक संस्कृत विद्यालय की स्थापना की। मिर्जाराजा जयसिंह के दो पुत्रों में मिर्जाराजा रामसिंह प्रथम पुत्र थे। श्रीरामसिंह के अध्ययन के लिए मिर्जाराजा जयसिंह ने पण्डित हरिजीवनमिश्र को नियुक्त किया। 'पोथीखाना' जयपुर संग्रहालय में 'पिंगलहमीर' ग्रन्थ की एक प्रति सुरक्षित है, उसकी टिप्पणी है–

"पिंगलहमीर पत्र 32 तिसमें चौदह पत्र
महल में पढ़वाने मार्फत हरिजीवनमिश्र।"

पण्डित हरिजीवनमिश्र ने मिर्जाराजा रामसिंह प्रथम को काव्य, छन्द और शास्त्रों का ज्ञान कराया। मिर्जाराजा जयसिंह के मरणोपरान्त मिर्जाराजा रामसिंह प्रथम आमेर के राजसिंहासन पर विराजित हुए। रामसिंह का शासनकाल विक्रमाङ्क 1724–1764 ई. पर्यन्त थ। अर्थात् 1667–1689 ई. पर्यन्त रामसिंह प्रथम ने शासन किया। अतः पण्डित हरिजीवनमिश्र का काल (समय) भी यह हो सकता है क्योंकि श्रीमिश्र रामसिंह के विद्या गुरू थे।

अतः उपर्युक्त कारणों से हरिजीवनमिश्र का समय 17वीं शताब्दी के मध्य का माना जाता है।

समसामयिक विद्वान्

कच्छवाह वंश के आमेर के महाराजा प्रजापालन, राजनीति, पराक्रम, सैन्यसञ्चालन में जिस प्रकार निपुण माने जाते हैं। उतने ही इतिहास में ये भगवद्भक्त, गुणी, विद्या के उपासक (जानने वाले), साहित्य की रचना करने वाले भी थे। इस कारण उनके राज्य में विविध विद्याओं को जानने वाले साहित्य की रचना करने वाले और धर्म का आचरण करने वाले लोग रहते थे।

इन कच्छवाह वंश में आमेर के महाराजा मिर्जाराजा जयसिंह के पुत्र श्री मिर्जाराजा रामसिंह प्रथम भी संस्कृत भाषा को पढ़ने में रूचि लेते थे। इस कारण राज्य में बहुत से संस्कृत विद्वानों ने आश्रय ले रखा था। यह युद्ध काल में भी अपने साथ लेखकों व पण्डित को ले जाते थे। इनमें रामकृष्ण रामनाथ का नाम प्रमुख है। पण्डित हरिजीवनमिश्र के साथ ये भी मिर्जाराजा रामसिंह के आश्रित विद्वानों में से एक थे। उनके नामों का उल्लेख निम्न प्रकार है–

क्र.सं.	विद्वांसः	रचना	विवरणम्
1.	श्रीगणेशदैवज्ञ	मुहूर्ततत्वटीका	प्राप्ता
2.	श्रीदलपतिरायः	राजनीतिनिरूपणम्	प्राप्तम्

3.	श्री शङ्कर भट्टः	वैद्यविनोदसंहिता	प्राप्ता
4.	श्री विश्वनाथ–	शृङ्गारवापिका	प्राप्ता
	महादेव रानाडे	शंभुविलासकाव्यम्	प्राप्तम्
		रामविलासकाव्यम्	प्राप्तम्
5.	श्रीपरमसुखदैवज्ञः	लोकहितार्थपाराशरीग्रन्थस्य हिन्दी–टीका	प्राप्ता

श्रीगणेशदैवज्ञः

यह ज्योतिष शास्त्र के मुहूर्त्त विषय के प्रकाण्ड पण्डित थे। इनका रचनात्मक कार्य ज्योतिष शास्त्र के मुहूर्त विभाग में उपलब्ध है। इन्होंने मुहूर्ततत्त्वनामक ग्रन्थ की टीका की, इसकी प्रतिलिपि पाण्डुलिपि के रूप में 'पोथीखान' जयपुर से प्राप्त की जा सकती है।

श्रीदलपतिरायः

श्रीदलपतराय पण्डित जी के साथ मिर्जाराजा रामसिंह के आश्रय में रहकर 'राजनतिनिरूपणम्' नामक पारिभाषिक शब्दकोश का निर्माण किया। इसमें 36 'कारखाना' अतिरिक्त प्रचलित पारिभाषिक शब्दों के संस्कृत लक्षण है। यद्यपि यह ग्रन्थ शतकमिति कहा जाता है। लेकिन इसमें शतक (100 सौ) से ज्यादा पद्य है। अन्तिम पद्य जैसे–

"एषा पद्धतिराख्याता राजनीतिबुभुत्सया।
गभीराद्राजसेवाब्धेर्द्रोणपाकाञ्च सिक्थवत्।।"

श्रीशङ्करभट्ट

गौड वंश में उत्पन्न श्री अनन्तभट्ट के पुत्र श्री शंकरभट्ट ने 'वैद्यविनोदसंहिता' नामक आयुर्वेद ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ के टिप्पणीकार श्रीगदाधर त्रिपाठी ने श्रीशंकरभट्ट का परिचय दिया–

श्री गौडवंशोद्भव–शास्त्रवेत्ता ह्यनन्तभट्टो मुखजाग्रगण्यः।
तस्यात्मजेनाथ सुशङ्करेण ग्रन्थः कृतो वैद्यविनोदनामा।।

ग्रन्थ के आरम्भ में और मंगलाचरण के अन्त में स्वयं ग्रन्थकार ने अपना परिचय दिया है।

'वैद्यविनोदसंहिता' में सोलह उल्लस तथा 1741 पद्य है। यहाँ ज्वर, वात, कुष्ठ आदि महत्त्वपूर्ण रोगों के निदान का वर्णन है। ग्रन्थ के अन्त में–

"भट्टानन्तात्मजस्येयं शङ्करस्य कृतिः सताम्।

आनन्दयतु मित्राणि चिकित्सासिद्धिदायिनी।।

शशिवेदाद्रिभूसंख्यैर्युतेयं संहिता शुभा।

श्लोकैर्वैद्याविनोदाख्या षोडशोल्लासनिर्मिता।।"

श्रीविश्वनाथमहादेव 'रानाडे'

भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न हुए 'चित्तपायनमहाराष्ट्ररानाडे' उपर्युक्त नामक परिवार के विश्वनाथ महादेव–रानाडे वाराणासी नगर में पधारे। वहाँ कमलाकर ढुण्डिराज ने अपना शिष्य स्वीकार किया। उसके बाद 'शृङ्गार–वापिका' नामक नाटक की रचना 1667–1675 ईस्वी मध्य में की। दूसरी रचना 'शम्भुविलासकाव्यम्' है। इसके अतिरिक्त 'रामविलास– काव्यम्' है। इनकी यह रचना 'रामविलासमं', 'पोथीखाना' जयपुर संग्रहालय में है तथा दूसरी दो रचनाओं का 'इन्डिया ऑफिस लाइब्रेरी' में स्थान दिया है। शृङ्गारपापिकायाः के षष्ठ पद्य में अपने आश्रयदाता रामसिंह का परिचय दिया है।

"सूनुस्तस्य सुधार्णवोदितसुधाधामोपमो दीप्तिभिः

भूमीन्द्रस्य जयन्तवन्नयनयोः पित्रोः सदानन्दकृत।

राज्यं प्राप्य पुररवा इव परः श्रीरामसिंहाख्ययो

यः ख्यातो भुविविक्रमाञ्चितभुजः श्रीपार्वतीपुत्रवत्।।"

श्रीपरमसुखदैवज्ञः

यह ज्योतिष शास्त्र में निपुण है। इनके 'लोक–हितार्थ–पाराशरी' ग्रन्थ का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है। इनक रचना में हस्त लिखित प्रतिलिपि 'राजस्थान प्राच्यविद्या–प्रतिष्ठान' जोधपुरे 3295 क्रमाङ्क ऊपर प्राप्त होती है अन्तिम है–

"इति श्रीपरमसुखदैवज्ञकृतं पाराशरीजातकस्य उपदेश भाषाख्यानं समाप्तम्।"

इन सबके अतिरिक्त निम्न कवि भी मिर्जाराजा रामसिंह के राज्य के आश्रय में थे।

	नाम	रचना
1.	श्री नीलकण्ठः	गुणदूतकाव्यम
2.	श्री नीलकण्ठोपनामश्रीकण्ठः	रामसिंहकीर्तिचन्द्रोदयः
3.	श्री यज्ञेश्वरदीक्षितः	रामसिंहीयवृत्तमयूरवमाला
4.	श्री राघवभट्टः	हस्तकरत्नावलीः

ये सभी विद्वान हरिजीवनमिश्र के समकालीन माने जाते हैं।

आश्रयदाता

पण्डित हरिजीवनमिश्र के आश्रय दाता आमेर के महाराजा मिर्जाराजा जयसिंह के पुत्र मिर्जाराजा रामसिंह थे। यद्यपि हरिजीवनमिश्र को राज्य में आश्रय पहले जयसिंह ने अपने पुत्र को पढ़ाने के लिए किया लेकिन बाद में रामसिंह के शासनकाल में वह पूर्णरूप से सभा में विद्वानों में शिरोमणि (सुशोभित) हो गए। राजस्थान पुरातत्व मन्दिर जोधपुर से प्रकाशित 'मुहंता नैणसी री ख्यात', 'कछवाहारी पीढ़ी' आदि के प्रथम संस्करण में उल्लेख है जो महाराज रामसिंह प्रथम का राज्याभिषेक आश्विन कृष्णपञ्चमी 1724 सम्वत्सर को हुआ।

यह रामसिंह हरिजीवनमिश्र के आश्रय दाता है। श्री एम.कृष्णामाचारि महोदय ने अपनी रचना 'दी हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृतलिटरेचर' नामक ग्रन्थ में हरिजीवन मिश्र का परिचय प्रदान किया–

"हरिजीवनमिश्र वाज दी सन ऑफ लालमिश्र एण्ड वाज पैट्रोनाइज्ड को वाई ए किंग नेम्ड रामसिंह।" (पृष्ठ 70)

अतः श्री कृष्णामाचारि के कथनों से भी पं. हरिजीवनमिश्र को रामसिंह से आश्रय प्राप्त था, सिद्ध होता है।

पं. हरिजीवनमिश्र द्वारा रचित प्रभावली नाटक के प्रारम्भ में भी–

"सूत्रधार–अलमतिविस्तरेण। (परिषद निरूप्य) अद्याहं तर्कयामि यदेते दिक्पालस्पर्धाः समृद्धादराः सदस्यनृपाः हरिजीवनमिश्रेण श्रीमहाराजरामसिंहस्य स्वान्तः प्रोत्साहनार्थं शृङ्गाररसपूरिपूर्णा महाप्रेम्णा प्रकाशिता या प्रभावलीनाम नाटिका, तस्या अभिनयाय समाज्ञापयन्ति।" और विजयपारिजात नाटक के मङ्गलाचरण श्लोक के चरम पाद–

"कामाख्या कलिकालकर्दमहरा श्रीरामसिंहाश्रिये।।"

इन नाटकों में कवि ने अपने आश्रय दाता 'मिर्जा' राजा रामसिंह प्रथम की पहली दिग्विजय यात्रा का वर्णन किया तथा तात्कालिक इतिहास के पुरुषों का भी नामोल्लेख किया। विजयपारिजात नाटक में राजकुमार श्रीकृष्ण की किशोरावस्था की सूचना है। यह श्रीकृष्ण (किशनसिंह) युवा ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। इसके पुत्र श्री विष्णुसिंह (बिशन सिंह) अपने पितामह–महाराज श्रीरामसिंह के मरने के बाद राज्य के सिंहासन पर बैठा यह इतिहास में प्रसिद्ध है।

इनसे यह ज्ञात होता है कि पण्डित हरिजीवनमिश्र ने विजय पारिजात नाटक की रचना श्रीकृष्णसिंह के स्वर्गगमन से पहले महाराजा रामसिंह के शासनकाल में की। इनके नाटक की प्रस्तावना में भी महाराजा रामसिंह के सभासदों का उल्लेख है। अतः बाह्य साक्ष्य से सिद्ध होता है कि पण्डित हरिजीवनमिश्र के आश्रयदाता आमेर के महाराज मिर्जाराजा रामसिंह प्रथम ही थे।

आमेर महाराजा मिर्जाराजा जयसिंह और उनके पुत्र रामसिंह के शासनकाल में संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं में अनेक रचनाओं का निर्माण हुआ। परन्तु रामसिंह के मरणोपरान्त उनके पोते विष्णुसिंह (बिशनसिंह) सिंहासन पर बैठे और तब संस्कृत साहित्य के निर्माण में कोई वृद्धि न हुई।

पण्डित हरिजीवनमिश्र का रचनात्मक कार्य

रचनाओं का उल्लेख

कवि पण्डित हरिजीवनमिश्र न केवल द्वित्रा अपितु दस नाट्य कृतियों के निर्माता भी थे। इन्होंने न केवल नाटक, नाटिका आदि अपितु रूपक की विभिन्न विधाओं की रचना की।

इनकी दस रचनाओं में छः कृतियाँ 'अनूप संस्कृत पुस्तकालय, लालगढ़ पैलेस' बीकानेर नगर में प्राप्त है।

क्र.सं.	क्रमांकः	रचना	पृष्ठ संख्या
1.	3122	अद्भुततरङ्गम्	35
2.	3151	घृतकुल्याविलासम्	7
3.	3163	पलाण्डुमण्डनप्रहसनम्	12
4.	3171	प्रासङ्गिकप्रहसनम्	7
5.	3200	विबुधमोहनम्	9
6.	3202	सहृदयानन्दप्रहसनम्	12

'पोथीखाना' जयपुर संग्रहालय में चार कृतियाँ है।

क्र.सं.	रचना	क्रमांक
1.	घृतकुल्याविलासम्	71
2.	पलाण्डुमण्डनप्रहसनम्	76
3.	प्रभावलीनाटिका	81
4.	विजयपारिजातनाटकम्	99

(1) अद्भुततरङ्गम्

यह रचना रूपक का प्रहसन भेद का रूप है। इसमें प्रहसन तीन अंकों का है। यह प्रहसन हास्यरस प्रधान है। प्रथम अङ्क के अन्त में इसका उल्लेख है।

"इति श्रीहरिजीवनमिश्रविरचिते अद्भुततरङ्गनाम्नि प्रहसने मन्दहास्योद्गमः प्रथमोऽङ्क :।"

इस कथा का सारांश है–मदनाक विक्रम नाम का राजा छिपे हुए रस मिश्र नामक वैष्णव से क्रोधित है तथा आत्मशुद्धि के लिए वह 'विधवाविध्वंसक' नामक आचार्य के माध्यम से कामाग्नि कुण्ड में तपन रूप में दण्ड देता है। 'यमुनानुज' नामक राजवैद्य को भी यह दण्ड देता है। कुण्ड दहन में वेश्या के साथ पत्नी को भी विध्वंस में बुलाता है। परन्तु बाद में स्पष्ट होता है कि विध्वंस में पत्नी रूप में स्त्रीवेशधारी विदूषक सबके सामने उपस्थित होता है और इस प्रकार सब हँसने की कल्पना करते हैं।

(2) सहृदयानन्दम्

यह हास्य रस प्रधान रूपक है। इस प्रहसन के मंगलाचरण के बाद सूत्रधार नायिका की विलक्षण व्याख्या स्मरण करता है। उसके बाद भरतपुत्र हाथ में कमल लेकर प्रवेश करता है। वह कहने की इच्छा करता है परनतु दूसरे ही क्षण अभिधा लक्षणा व्यञ्जना आदि नाम वाली नायिकाएँ विदूषक के साथ प्रवेश करती है। हाथ में कमल नष्ट हो जाता है।

यहाँ सर्वप्रथम अभिधा लक्षणा व्यञ्जना रूप पात्रों का परस्पर वाद–विवाद सबके सम्मुख हास्य उत्पन्न कर रहा है और जब ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिए साधना की आवश्यकता ज्ञात हुई तब काव्य में रस का आनन्द सुनने मात्र से ही प्रकाशित होता है। अखण्डानन्द अथवा काव्य में रस का

स्वाद सभी के ऊपर सर्वोपरि माना जाता है। इस प्रकार राजा प्रसन्न होकर उसके ऊपर अत्यधिक धन बरसाता है। नायक नायिका का विवाह सम्पन्न होता है।

अन्त में नेपथ्य प्रतिहारी सङ्केत करता है। यहाँ महाराजा रामसिंह का आखेट (शिकार) के खेल का उल्लेख है।

रे रे! प्रतिहाराः! श्रीमहाराजाधिराजरामसिंह इदानीमाखेटक्रीडां कृत्वा मन्दिरे समायातीत विधीयतां डाकिनीसमाज.....!

प्रहसन के अन्त में भरत वाक्य का आचरण करके सभी निकल जाते हैं। इस प्रहसन में प्राकृत भाषा का प्रयोग भी दिखाई देता है। जैसे–अभिधा लक्षणा व्यञ्जना रूप में पात्रों का प्राकृत भाषा में वार्तालाप बताया गया है और इससे हास्य रस महत्त्वपूर्ण दिखाई देता है।

(3) प्रासङ्गिकम्

इस प्रहसन में नाट्यकार ने शब्दों को क्रीडा के माध्यम से हास्य रस की उत्पत्ति का विधान किया है। कथा का सारांश है–

महाराज का प्रतापड्क्ते मन्त्री प्रकृष्टदेव 'प्र' इसका प्रचारक है। केरल का भट्टश्चात्र 'प्र' विरोधी है। दोनों के मध्य वाग्युद्ध होता है। योनिमञ्जरी नामकी वेश्या के आगमन से यह समाप्त होता है।

इसके बाद दूसरा विवाद शुरू होता है कि योनिमञ्जरी के पुत्र का पिता कौन है? दोनों निर्णय के लिए राजा से निवेदन करते हैं। इसके बाद एक वानर मन्त्रि प्रकृष्टदेव की पत्नी की प्रकृति प्रिय वस्तुओं की नकल करता है। दौड़ता है। अन्तःपुर में प्रवेश करता है। राजा भी वानर के पीछे दौड़ते है।

इससे हास्यरस की अनुभूति सहृदय से करते हैं।

(4) प्रभावली

यह प्रभावली नाटक चार अङ्को का शृङ्गार रस से संयुक्त श्रीहर्ष की रत्नावली नाटक का अनुसरण करता है। इसमें राज चन्द्रोज्ज्वल का नायक प्रभावली और नायिका का चित्रण नाट्यकार ने किया है। मन्त्री सर्वताभद्र और विदूषक प्रभावली चन्द्रोज्ज्वल को मिलाते है। प्रारम्भ में प्रभावली देवी

के सम्मुख अनुमति लेकर कन्यकेश्वरी रूप में समा जाती है। परन्तु उनको मिलाने में देवी विघ्नस्वरूपा होती है बाद में उनकी अनुकम्पा से ही उनका विवाह हो जाता है।

(5) घृतकुल्याविलासम्

यह हास्य रस प्रधान प्रहसन दो अङ्को से युक्त है। यहाँ घृतकुल्याकुशल नामक नायक का प्रायश्चित कर्म हैं वह ब्राह्मण को निमन्त्रण देता है। ये सभी घृत की न्यूनता कल्पने का कार्य विघ्न उत्पन्न करता है। दूसरे अंक में दक्षिणा वितरण के अवसर पर भी सभी कार्यों में विघ्न उत्पन्न होता है। यहाँ नपुंसक सुवासिनी धूर्त मधु आदि के समावेश से हास्यरस की पुष्टि हो जाती है।

(6) पलाण्डुमण्डनम्

यह भी प्रहसन है। यहाँ नायक लिंगोजीभट्ट की पत्नी चिंचाया के गर्भाधान संस्कार का वर्णन है। प्रधान कथावस्तु के बीच में नायक पुत्री के विवाह की वार्ता को बताया गया है। इस प्रहसन में सभी पात्रों के नाम खाद्यान्न के ऊपर है। सभी पात्रों के अपने–अपने वैशिष्य का वर्णन है।

(7) विजयपारिजातनाटकम्

यह वीर रस प्रधान नाटक है। इसमें आमेर महाराजा मिर्जाराजा श्रीरामसिंह की प्राचीदिग्विजय यात्रा का वर्णन है। यह रामसिंह को मुगलों के राजा द्वारा सुरत्राण की पदवी दी औरंगजेब का प्रधान सेनापति था। इस नाटक में सन्धि, सन्धि के अंगों, नाट्य के अङ्गो का सफल प्रयोग हुआ है। संस्कृत साहित्य में वीररस प्रधान नाटकों की संख्या कम दिखाई देती है। परन्तु यह नाटक स्वयं की महत्ता सिद्ध करता है।

इनके अतिरिक्त दो दूसरी भी रचना प्राप्त होती है।

(1) प्रभावकज्ञानप्रहसनम्

(2) धूर्तसमागमः

डॉ. प्रभाकर शास्त्रि महोदय 'जयपुर की संस्कृत साहित्य देन' ऐसा अपने शोधग्रन्थ में पण्डित हरिजीवनमिश्र की नाट्य कृतियों का वर्गीकरण किया है जो इस प्रकार है–

	रचनानाम	**प्रकार**
1.	विजयपारिजातनाटकम्	नाटकम्
2.	प्रासङ्गिकप्रहसनम्	प्रहसनम्

3.	सहृदयानन्दम्	प्रहसनम्
4.	विबुधमोहनम्	रूपकभेदः
5.	अद्भुततरङ्गम्	प्रहसनम्
6.	घृतकुल्याविलासम्	प्रहसनम्
7.	धूर्तसमागमः	रूपक भेदः
8.	पलाण्डुमण्डनम्	प्रहसनम्
9.	प्रभावकज्ञानम्	प्रहसनम्
10.	प्रभावली	नाटिका

प्राप्तिस्थानम्

इनकी छः कृतियाँ "अनूप–संस्कृत–पुस्तकालयः लालगढ़ पैलेस, बीकानेरनगरे" में उपलब्ध है।

क्र.स.	**क्रमांकः**	**रचना**	**पृष्ठानि**
1.	3122	अद्भुततरङ्गम्	35
2.	3151	घृतकुल्याविलासम्	7
3.	3163	पलाण्डुमण्डनम्	12
4.	3171	प्रासङ्गिकप्रहसनम्	7
5.	3200	विबुधमोहनम्	8
6.	3202	सहृदयानन्दम्	12

'पोथीखाना' जयपुर संग्रहालय से चार कृतियाँ प्राप्त कर सकते हैं।

	रचना	**क्रमांकः**
1.	घृतकुल्याविलासम्	71
2.	पलाण्डुमण्डनम्	76
3.	प्रभावलीनाटिका	81
4.	विजयपारिजातनाटकम्	99

प्रकाशन स्थिति

इनकी कृतियों का प्रकाशन काव्यमाला संस्करण में है। परन्तु इस समय वह प्राप्त नहीं है।

क्र.सं.	रचना	काव्यमाला–संख्या/गुच्छकम्
1.	घृतकुल्याविलासम्	51
2.	पलाण्डुमण्डनम्	83,42
3.	अद्भुततरङ्गम्	22, 23, 24
4.	विबुधमोहनम्	63, 79
5.	सहृदयानन्दम्	81

यह और इनके अतिरिक्त रचना 'पोथीखाना' जयपुर संग्रहालय, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जोधपुर, अनूप–संस्कृत–पुस्तकालय, लन्दन में स्थित 'इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी' आदि संग्रहालयों में उपलब्ध है।

नाट्यशास्त्रे विहङ्गमदृपिष्टस्तथा शास्त्रीयविवेचनम्

रूपकमहत्त्वम्

विश्व साहित्य में भारतीय साहित्य का और उसमें भी संस्कृत साहित्य की महत्ता दिखाई देती है। संस्कृत साहित्य में भी 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' इसी आधार पर नाट्य साहित्य का महत्त्व आलोचक स्थापित करते है पर संस्कृत साहित्य में नाट्क की उत्पत्ति कब हुई यह विचारणीय है।

अनुकरण करना मानव स्वभाव है। इस स्वभाव की प्रतीति स्पष्ट रूप से बालकों में दिखाई देती है। अनुकरण की प्रवृत्ति मानवों में ही नहीं दिखाई देती अपितु पशुओं का स्वभाव, विशेषकर वानरों का ऐसा होता है। अनुकरण वृत्ति का एकमात्र लक्ष्य आनन्द प्राप्ति को कह सकते हैं। नाटक भी स्पष्टतः अनुकरण द्वारा देखे जाते हैं। दशरूपक में धनञ्जय ने भी स्पष्ट करके नाटक के रूप की परिभाषा कही है, जो इस प्रकार है–

अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते।
रूपकं तत्समारोपाद् दशधैव रसाश्रयम्।।[10]

यह अनुकरण नाटक के रूप में कब परिवर्तित हुआ? अथवा नाटक की उत्पत्ति कब हुई यह प्रश्न दुःसाध्य है। भारतीय और दूसरे पाश्चात्य आलोचक इस विषय में प्रयत्न कर चुके है। पाश्चात्य

विचारक नाटक उत्पत्ति के विषय में प्रचलित विभिन्न मतों को भारतीय नाटक की उत्पत्ति रूप में प्रस्तुत किया परन्तु भारतीय मान्य परम्परा के विरुद्ध भारतीय समालोचकों ने इसकी उपेक्षा की।

नाट्यौत्पत्तिकं पाश्चात्यचिन्तनम्

डॉ. रिजवे महोदय ने नाटक की उत्पत्ति वीर पूजा से सम्बद्ध स्वीकारी है। दिवंगत वीरपुरुषों की स्मृति में समय–समय पर जो सामूहिक सम्मान प्रदर्शित किया जाता था। उसी से नाटक की उत्पत्ति मानी जाती है। जैसे–ग्रीक देश दुःखान्त नाटकों का प्रारम्भ मृत पुरुषों को सम्मान देने के लिए किया जाता है तथा भारत वर्ष में भी नाट्क की उत्पत्ति वीर पूजा से मानी है। भारत में रामलीला और कृष्णलीला इसी प्रवृत्ति के परिचायक है।

जर्मन विद्वान् पिशेल महोदय के अनुसार नाटक की उत्पत्ति कठपुतली के नाच से मानी गई। कठपुतली नृत्य का आविर्भाव भारत वर्ष में हुआ परन्तु विदेश में इस नृत्य का प्रचार अधिक हुआ। भारतीय नाटक 'सूत्रधार' से आरम्भ होते हैं। नाटकारम्भ में प्रथम संकेत इस प्रकार मिलता है– **'नाद्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः।'**

इस प्रकार पिशेल महोदय के मत पर जिस नाटक की उत्पत्ति कही जाती है उसे छाया नाटक कहते हैं। इस मत से यह सिद्ध होता है कि छाया नाटकों की उत्पत्ति प्राचीन काल से थी। छाया नाटक के समर्थकों में ल्यूडर्स महोदय का नाम मुख्य है। प्रो. ल्यूडर्स मतानुसार नाटकों की उत्पत्ति छाया नाटकों से हुई है। (पर्दे के भीतर से अभिनेताओं का अभिनय दिखाना छाया नाटक है।) संस्कृत में एक ही छाया नाटक था– 'दूतांगद'।

कुछ विद्वान 'मे–पोल' नृत्य को नाटक की उत्पत्ति का अंग मानते है। पाश्चात्य देश में '1 मई' को लोग आनन्द के साथ उत्सव में संलग्न होते हैं। इसमें किसी एक युवती को अलंकृत कर एक स्तम्भ गाड़कर उसके चारों ओर नृत्यादि किया जाता है। इस महोत्सव को लोकनृत्य कहा जाता है। भारत में भी 'इन्द्रध्वज' नामक महोत्सव ऐसा ही होता है। पाश्चात्य विचारक इस नृत्य से नाटक की उत्पत्ति मानते है। नेपाल आदि देशों में इस समय भी 'इन्द्रध्वज' महोत्सव प्रचलित है।

संवादसूक्तेभ्यो नाट्योद्गमः

आधुनिक विद्वान नाटक की उत्पत्ति वेद के मूल से स्वीकार करते हैं। ऋग्वेद के अनेक सूक्त है। जहाँ सम्वाद शैली रूप का वर्णन प्राप्त होता है। प्रो. सिल्वां लेवी, प्रो. मैक्समूली के मतानुसार पुरूरवा–उर्वशी, अगस्त्य–लोपामुद्रा तथा उनके पुत्र इन्द्र–इन्द्राणि, यमयमी, पणि–सरमा आदि संवाद सूक्तों के आधार पर नाटक की उत्पत्ति हुई।

प्रो. हिलब्रैण्ट के अनुसार भारत में पहले स्वांग अधिक जनप्रिय थे। उन्हीं स्वांगों में रामायण–महाभारत की कथाओं का संयोजन कर नाटकों का उद्‌भव और विकास हो गया। डॉ. कीथ महोदय ने प्राकृतिक परिवर्तनों को मूर्तरूप में प्रस्तुत करने की मनोवृत्ति से नाटकों की उत्पत्ति मानी है।

सन्धिसमावेश

'स्वल्पविमर्शाः सन्ध्यः पुनः'। यहाँ स्वल्प विमर्शसन्धि युक्त चार सन्धियों का समावेश किया गया है और यह पाँच सन्धियाँ है–

"मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्श उपसंहृतिः।
इति पञ्चास्य भेदाः स्युः क्रमाल्लक्षणमुच्यते।।"

1. मुख सन्धिः

नाटक में प्रस्तावना के बाद सूत्रधार की 'प्रियजनसहजालापः सुखयति तथा यथा न कर्पूरः' आदि वाक्य को पढ़कर सर्वतोभद्र ने प्रभावली नाटक में फल की प्राप्ति के लिए प्रथम कारण का निर्देश दिया। वह 'गत्वा कार्यसिद्धिप्रकारं चिन्तयिष्ये' इस प्रकार कार्य की प्रथम अवस्था को सूचित किया। उसके बाद देवी प्रभावली मिलन की योजना पर्यन्त बीज की स्थापना की। अतः प्रथम अंक में आरम्भ नायक अवस्था और बीज नाम अर्थप्रकृति के संयोग से मुखसन्धि होती है।

2. प्रतिमुख सन्धिः

द्वितीय अंक में प्रभावली के विरह में राजा सन्तप्त दिखाई देते हैं।

पलाण्डुमण्डनम्

पण्डितहरिजीवन मिश्र की दूसरी नाट्य कृति पलाण्डुमण्डन नामक प्रहसन है। इस प्रहसन की विशेषता यह है कि इसके सभी पात्रों के नाम खाद्यान्न के ऊपर है–जैसे–प्रधान (मुख्य) पात्र नायिका का नाम चिञ्चा 'इमली' है। नायिका की सपत्नी का पूरणपोलिका (रोटी विशेष 'पूरणपोई' जो मराठी भाषा) नाम है। पूरणपोलिका की पुत्री रक्तमूलिका (लाल मूली अर्थात् गाजर) नाम है इस प्रकार रक्तमूलिका के भावि पति लशुनपन्त तथा गृञ्जनाद्री, ये दोनों भी लशुन के (लहसुन) वाचक है तथा मुख्य नायक पलाण्डुमण्डन भी भाषा में 'प्याज' इस प्रकार वाचक है। अतः सामान्य पात्र भी 'आरनाल' (काञ्जीति भाषा) ऐसे नाम है।

कथावस्तु

हरिजीवनमिश्र ने पार्वतीप्राणप्रिय सम्पूर्ण संसार को उत्पन्न करने वाले दुःखनाशक भगवान शङ्कर का स्तवन किया।

मङ्गलाचरणम्

सकलरसगृहीता चान्नपानादिभोक्ता
भवजदुरितमोक्ता धर्माकामार्थवक्ता।
प्रचुरविभवकर्त्ता पार्वती प्राणभर्त्ता
जयति सकललोके विश्वहर्त्ता महेशः।।

मंगलाचरण करके सूत्रधार लिङ्गोजीभट्ट की पत्नी के गर्भाधान संस्कार में शीघ्र पहुँचने की सूचना देता है। सूत्रधार अपनी प्रिया से जाने के विषय में सम्मति प्रकट करता है। आर्य के निमन्त्रण पर पलाण्डुमण्डन आदि के स्वागत के लिए धूप आदि से घर को सुगन्धित किया। वह सूत्रधार को पलाण्डुमण्डन आदि को साथ ले जाने के लिए भेजता है लेकिन प्रस्थान करके पलाण्डुमण्डन आदि तो पलाण्डु वल्कल से परिपूर्ण मार्ग को देखकर पलाण्डु धनिक घर की और जाते है। अतः प्रजापति देव लिङ्गोजीभट्ट एक सूचना के साथ आते है। इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत नाट्य की प्रस्तावना प्रस्तुत की है।

प्रस्तावना के बाद सूचना के लिए साथ जाते हुए प्रजापति देव लिङ्गोजीभट्ट को न देखकर क्रोधित होते है। लेकिन वह स्मरण करते है कि त्र्यम्बक भट्ट और लिङ्गोजीभट्ट अपने सम्बन्धी समागतसम्बन्धी चारों तरफ बाहुल्य को देखते है। उसके बाद पलाण्डुमण्डन आदि को साथ ले जाते है। उच्चारित वेद की ध्वनि को सुनकर उस स्थान पर परिचारिकों से आज्ञा लेकर ब्राह्मण के भोजन की व्यवस्था करते हैं।

तब त्र्यम्बक भट्ट और लिङ्गोजीभट्ट श्यालक में प्रवेश होते है। इन दोनों के साथ अच्छी तरह से सजी ताम्बूल रंग से लाल लिङ्गोजीभट्ट की पत्नी चिञ्चा और त्र्यम्बक भट्ट की पत्नी क्वथिका प्रवेश करती है।

क्वथिका भाई की पत्नी पूरणपोलिका की पुत्री रक्तमूलिका की कुशल समाचार पूछती है। भाई की पत्नी चिञ्चा उसके कुशल समाचार पूछती है। क्वथिका के पुत्र गृञ्जनाद्रि की कुशल

समाचार पूछती है। क्वथिका कहती है मेरा पुत्र तो रक्तमूलिका के रूप को प्रतिदिन स्मरण करके जीवित है। चिञ्चा भी कहती है कि रक्तमूलिका भी गृञ्जनाद्रि के प्रति प्रेम में आसक्त है।

लिङ्गोजीभट्ट त्र्यम्बक भट्ट से अपनी पुत्री के लिए वर खोजने को कहते है। 'रजोयोग्या पुत्री पितुरस्वर्ग्य जनयती' लिङ्गोजीभट्ट स्मरण करता है। त्र्यम्बक अपने पुत्र गृञ्जनाद्रि को रक्तमूलिका के लिए वर के रूप में प्रस्ताव रखता है। लिङ्गोजीभट्ट इस विषय में पूछता है। उसकी पत्नी पूरणपोलिका कहती है कि उसके और रक्तमूलिका के विवाह की वार्ता पहले कर ले क्योंकि लशुनपन्त क्रोधित होगा।

लिङ्गोजीभट्ट तर्क देते है कि लशुनपन्त तो गृञ्जनाद्रि से वृद्ध है। लशुनपन्त के साथ रक्तमूलिका का सम्बन्ध उचित नहीं है। लिङ्गोजीभट्ट त्र्यम्बकभट्ट और क्वथिका पूरणपोलिका ने वर कन्या विवाह विषय में वाङ्निश्चय कर लिया है। इस अवसर पर लशुनपन्त का प्रवेश होता है। गृञ्जनाद्रि और रक्तमूलिका के विवाह की वार्ता को सुनकर, क्रुध लशुनपन्त लिङ्गोजीभट्ट से तर्क करता है। लशुनपन्त कहता है कि वह तो रक्तमूलिका के जन्म से ही उसको पाने की आशा से जीवित है। गृञ्जनाद्रि के साथ विवाह करने से उसका जीवन ही निरर्थक हो जाएगा। पूरणपोलिका चिन्तित होती है कि लशुनपन्त के साथ विवाह होने से उसकी पुत्री रक्तमूलिका का जीवन ही व्यर्थ हो जाएगा।

क्वथिका द्वारा स्वर्ण दर्शनों के लोभी लिङ्गोजीभट्ट गृञ्जनाद्रि का निषेध करके लशुनपन्त के साथ विवाह विषय में वाग्दान करते हैं। चिञ्चा द्वारा निषेध करने पर क्वथिका कहती है कि वह दस खेत सोना देगीं। परन्तु लालची लिङ्गोजीभट्ट उत्तर देते हुए कहते है कि यह सोना तो न्यून ही है, क्योंकि प्राणी की आयु नियत है।

हष्ट लशुनपन्त मन में ही चिन्तित होता है कि पलाण्डुमण्डन का भी सलगमा के साथ विवाह सोने के बल से ही हुआ था। अतः वह सोचकर लिङ्गोजीभट्ट से कहता तुम तो कभी भी मर जाओगे। मैं तुम्हे जितना तुम चाहो उतना धन दूगाँ। धन के लोभ से प्रसन्न होकर पूरणपोलिका 'उत्तरकार्ययोग्यं' धन कहाँ है। पूछने पर लशुनपन्त कहता है कि उस लशुन गृञ्जन के क्षेत्र का कैसा उपयोग।

फिर लिङ्गोजीभट्ट सोचता है कि यह दुष्ट समय से पहले ही आ गया। अतः निमन्त्रित ब्राह्मणों के भोजन में शीघ्रता करने के लिए लिङ्गोजीभट्ट गृञ्जनाद्रि को भेजता है।

इसके बाद पलाण्डुमण्डन आदि प्रवेश करते है। नेपथ्य से कोई कहता है कि साधारण लोग बीच में स्थान के अभाव में भोजन के लिए ठहरे हुए है। परिचित सभी लोगों में गर्व के साथ पलाण्डुमण्डन ठहरे हुए है। पंक्ति में प्रतिष्ठित गृञ्जनाद्रि कहते है कि केवल पलाण्डु के बिना ही नहीं होता अपितु गृञ्जन के बिना भी तो भोजन शष्पप्रायः हो जाता है। लशुनपन्त कहता है कि जिस औषधी में लशुन है। उसमें पलाण्डु गृञ्जन आदि को क्या आवश्यकता है। पलाण्डुमण्डन के बिना कभी भी तृप्ति नहीं हो सकती। लशुनपन्त बोला कि यह लशुन की ही महिमा है। इससे युक्त अन्न सुर असुरों में भी तृप्ति कारक होता है। गृञ्जनाद्रि तो पलाण्डुमण्डन लशुनपन्त के मतों को निरस कहते है। क्योंकि इनमें श्रेष्ठ और प्रेय गृञ्जन ही है। ये उसके स्वरूप को नहीं जानते इसलिए तो यह मूर्ख है।

इसके बाद प्रजापति आते है तथा ब्राह्मण के भोजन में विलम्ब का कारण पूछते है। चिञ्चा जब पलाण्डु की सुगन्ध सङ्कर करती है तभी प्रजापति देव पंक्ति में स्थित ब्राह्मणों के आगे पत्रावली (पत्तल) करते हैं।

भोजन की पंक्ति में स्थित लोग वार्तालाप कर रहे हैं। सभी प्रकार के भोजन करते हुए दक्षिणात्य ब्राह्मण औदित्य ब्राह्मणों का उपहास करते है। कि पलाण्डु सुगन्ध से नासिका संयम का पलायन दूर होता है। लिङ्गोजीभट्ट ज्ञाती श्रेष्ठों को बुलाते है। आवाह्न को सुनकर जीर्ण–शीर्ण कषाय वस्त्रों में गुरू मत की निन्दा करने वाले पलाण्डुखण्ड– चर्बणशीला ज्ञातीयों का प्रवेश होता है। पूरणपोलिका रक्तमूलिका के कच्छे को दृढ़ता से बांधती है।

नीचे गिरे हुए गृञ्जन को देखकर गृञ्जनाद्रि की मामी पूछती है कि किसने गृञ्जनों को व्यर्थ में ही व्यय किया है। पूरणपोलिका कहती है चिन्ता की बात नहीं है क्योंकि गृजनों की न्यूनता नहीं है। इस समय लशुनपन्त को गृहकार्य करते हुए रक्तमूलिका को देखकर पूरणपोलिका ने कहा कि पुत्री। यह तुम्हारे योग्य वर है। पूरणपोलिका द्वारा वाक्य को सुनकर लशुनपन्त (जभी) जब हँसने को किया तभी वह कास श्वास की अधिकता से मूर्च्छित हो जाता है। पलाण्डुमण्डन कहता है कि शीघ्र ही पलाण्डु द्रव्य ले आओ, अन्यथा यह लशुनपन्त परलोकवासी हो जाएगा। गृञ्जनाद्री गृञ्जनद्रव को लाने के लिए दौड़ती ही आरनालभट्ट आरनाल से भरे हुए, घट के समान है। त्र्यम्बकभट्ट लिङ्गोजीभट्ट को आदेश देते हैं कि इसके मुख में जल डालों।

चिञ्चा देखती है रक्तमूलिका रक्तमूलिका के रस में चिञ्चा के रस को मिलाती है। इसी समय मिथ्याकूट मिथ्याकूट द्रव को ग्रहण करके लशुनपन्त के मुख में डालते है। मिथ्याकूट द्रव के चमत्कार से लशुनपन्त मूर्छा को त्याग्ता है।

इसके बाद नेपथ्ये में कहीं कोई कहता है कि अरे! लशुनपन्त परलोक सिधार गया। नहीं वह तो जीवित हो गया है। वह चेतना को प्राप्त होता है। जिस लशुन ग्रन्थि को समान लेने पर पित्त के आधिक्य की स्थिति हो जाती है। पलाण्डुमण्डन भी उसके मत का समर्थन करता है। गृञ्जनाद्री कहता है कि जिस मधुर रस के बिना पित्त क्षोभ की निवृत्तिः नहीं हो सकती वह गृञ्जनरस पेय ही है। लशुनपन्त तो लशुन की ही प्रशंसा करते हुए कहता है कि सभी दुःखों का नाश करने वाली, पाप को दूर करने वाली, भूख में तृप्ति करने वाली लशुन की पोटिका (पोथी) होती है।

पूरणपोलिका कच्छा को शिथिल करके बाएँ हाथ में लेती तभी लशुन निकल जाता है। जब लशुनपन्त के मुख को सामने रखकर उसी समय गृञ्जनाद्री का निषेध करती है। लशुनपन्त अपने दोनों नेत्रों को उससे मिलाता है। लिङ्गोजीभट्ट कहता है कि हे पुरणपोलिका तुम्हारे पुण्य प्रभाव से ही यह आज जीवित है। तुमसे ही दामाद को प्राणलाभ पुत्र और धन सञ्चय की भी प्राप्ति हुई है।

इस समय सभी जाते है, ससामग्रीकः कलङ्काङ्कुराचार्य। वह गर्भाधान संस्कार के प्रारम्भ के लिए वेदि में कुश के प्रतिनिधि के रूप में लशुनपलाण्डु वल्कल आदि को तृण के समान किया। लिङ्गोजीभट्ट चिञ्चा के प्रति कामचेष्टा करते है। गर्भधान के विषय में चिन्तित चिञ्चा पुत्र प्राप्ति के लिए लक्ष्मणानामक ओषधि विशेष को खाती है। लिङ्गोजीभट्ट भी पुरुषत्ववर्धक पलाण्डु का भक्षण करते है। पलाण्डु भक्षण करके धुम्रपान के इच्छुक लिङ्गोजीभट्ट ज्वलित अग्नि में तमोकत्र रखकर धूमनिवारण के लिए वंशिक द्वारा धूमपान किया।

लक्ष्मणा (ओषधिविशेष) भक्षणशीला चिञ्चा को देखकर पूरणपोलिका कहती है कि तुम भी गर्भाधान से हो लेकिन तुम्हारे ऐसे आचार तो नहीं है। इसलिए वह चिञ्चा के हाथ में लक्ष्मणा को देती है। गृञ्जानाद्री पूरणपोलिका की सहायता करते है। गृञ्जनाद्री के साथ जाने के लिए चिञ्चा को देखकर क्वथिका कहती है कि तुम्हारे वचन से बंधा हुआ और भी गृञ्जनाद्री तो बाल ही है अतः क्षमा।

क्वथिका कञ्चुकी के जाते ही कोलाहल होता है, लशुन, पलाण्डु गृञ्जन आदि गिरते है। आज पलाण्डुमण्डन को धिक्कार है, इन मूर्खों ने पलाण्डु लशुन आदि का अमृत तुल्य रस को व्यर्थ नष्ट कर दिया। कोलाहल को देखकर कच्छां को शिथिल करके रक्तमूलिका को देखकर सभी हँसते है।

इस समय सभी जाते हैं। शिष्य समूह में औदीच्यभट्टाचार्य को हाथ जोड़कर नमस्कार कर रहे है। औदीच्य पलाण्डु लशुन आदि की गन्ध मिलकर नासिका को संयमित कर रही है। शिष्य मछली पकाने का स्थान पूछते है। औदिच्य कहते है कि जब देवों, पित्रों का पूजन और समर्पण करके मांस खायें जाए तो वह धर्मयुक्त होगा। दाक्षिणात्यों ने अपनी पराजय मानकर राजकीय पुरुष के आह्वान पर भेजा है। भट्टचार्य दाक्षिणात्यों को सहायता देते हैं लेकिन दाक्षिणात्य राजकीय पुरुष कहते हैं, भट्टाचार्य रक्षक है। राजकीय पुरुष सभी सामग्री व सभी शिष्यों को भट्टाचार्य को ग्रहण कराके निकल जाते हैं। दाक्षिणात्य प्रसन्न होते हैं कि जगदीश की कृपा से शत्रु पराजित हुए। पुनः शुभ मुहुर्त में गर्भाधान संस्कार होता है।

पात्राणां चरित्रचित्रणम्

पलाण्डुमण्डन प्रहसन में पात्रों की संख्या बारह तक है। विशेष रूप से कुछ पात्र समान रूप से प्रहसन की कथा फैलाते है। नायिका समान चिञ्चा के गर्भाधान महोत्सव में सभी पात्रों को निमन्त्रण दिया है। चिञ्चा के पति लिङ्गोजीभट्ट है। गर्भाधान के अवसर पर निमन्त्रित सभी लिङ्गोजीभट की दूसरी पत्नी पूरणपोलिका से उत्पन्न रक्तमूलिका के विवाह विषय में वार्ता करते हैं कथा के बीच में विघ्न उत्पन्न का गर्भाधान का शुभ मुहुर्त व्यर्थ हो जाता है। तब कथा के अन्त में–पुनः शुभ मुहुर्त में गर्भाधान संस्कार प्रारम्भ होता है।

अतः कथा का प्रमुख पात्र चिञ्चा है, और दूसरा प्रमुख लिङ्गोजीभट्ट जो चिञ्चा के गर्भाधान में सहायक है और रक्तमूलिका तीसरे स्थान पर है क्योंकि प्रहसन के बीच में उसके विवाह के विषय की वार्ता होती है। रक्तमूलिका के भावि पति के रूप में स्वीकृत लशुनपन्त की भी प्रमुखता स्वीकार्य है। गर्भाधान के अवसर में निमन्त्रित सभी प्रमुखों में पलाण्डुमण्डन प्रमुख है।

लिङ्गोजीभट्टः

रूपक नायक प्रधान है अतः सर्वप्रथम नायक का ही चरित चित्रण किया जाता है। यहाँ लिङ्गोजीभट्ट नायक है और वह मध्यम कोटि का धीर प्रशान्त है। इस समय उसके गुण–दोष का विवेचन व चरितचित्रण किया है।

आस्तिकः

लिङ्गोजीभट्ट स्मृति वाक्यों के प्रति श्रद्धावान है तथा स्मृति के अनुसार कार्य भी करता है। वह स्वयं ही त्र्यम्बकभट्ट से कहता है कि–

"हे हे त्र्यम्बकभट्ट! रजोयोग्यायाः कन्याया विवाहः पितुरस्वर्ग्यं जनयति, इति स्मृतेर्भीतोऽहं चूतमञ्जरीमिव रक्तमूलिकां परिणेतुमिच्छामि।"

इस प्रकार पाप–पुण्य में भी उसकी मान्यता है, क्योंकि वह आस्तिक है। अतः वह पूरणपोलिका से कहता है–

"अये पूरणपोलिके! त्वत्पुण्यप्रभावेणायं जीवितः।"

सद्गृहस्थः

यह नायक सद्गृहस्थ है, क्योंकि यह सभी कार्यों में पत्नी की सम्मति स्वीकार करता है। रक्तमूलिका द्वारा गृञ्जनाद्रि के साथ विवाह विषय में वह पूरणपोलिका से पूछता है और भी वह चिञ्चा द्वारा गर्भाधान करके पुत्र उत्पन्न करके गृहस्थ आश्रम का उत्तरदायित्व पालने की इच्छा करता है।

कुशलः

लिङ्गोजीभट्ट रक्तमूलिका का गृञ्जनाद्रि के साथ विवाह का प्रस्ताव रखते हैं व लशुनपन्त को वृद्ध मानकर उसका निषेध करते है तथा क्वथिका के स्वर्ण प्रदर्शन के बाद वह कहते हैं कि–

"रे रे! आयुः प्रमाणनियतं हि प्राणिनां, ततः किमेतावता सुवर्णेन।"

लशुनपन्त लिङ्गोजीभट्ट को यथेष्ट धन देते हैं उसके बाद सब मिलते है। गृञ्जनाद्रि को देखकर वह कुशलता से निमन्त्रित ब्राह्मणों के भोजन वितरण के लिए उसको भेजता है तथा तमोकपत्र को रखकर धूमनिवारण के लिए वंशिक द्वारा धूम्रपान करके वह स्वयं ही पहले की तरह ही कुशलता प्रकट करते हैं।

लोभावृतो

स्वार्थ सिद्धि के लिए वह यथेष्ट धन ग्रहण करके रक्तमूलिका का विवाह लशुनपन्त के साथ करता है।

चिञ्चा

नायक लिङ्गोजीभट्ट की पत्नी चिञ्चा है। वह सर्वगुणसम्पन्न कुलीन नारी है जो हमेशा अपने पति की सहायता करती है तथा सभी कार्यों में उनकी सम्मति चाहती है। वह गृहकार्य में कुशल है क्योंकि सूप–शाक आदि में पलाण्डु लशुन की गन्ध मिलती है। वह लोभ रहित भी है। गृञ्जनाद्रि का रक्तमूलिका के साथ विवाह के लिए क्वथिका जब सुवर्ण प्रदर्शन के लिए करती है तो वह उसका निषेध करती है क्योंकि–

"हे हे! सुवर्णदाननियमं कुरू"

वह नारी सुलभ शिशु प्रेमी भी दिखाई देती है। सपत्नी पूरणपोलिका से उत्पन्न रक्तमूलिका को भी वह प्रेमपूर्वक पालती है। वह भावि पुत्र के लिए गर्भाधान संस्कार में जाती है। वह पुत्र उत्पन्न हो इसलिए लक्ष्मणा नामक औषधि विशेष खाती है।

रक्तमूलिका

नायक की पुत्री रक्तमूलिका विवाह के योग्य है। इसमें गुण दिखाई देते हैं। यौवन के समय उसके मन में गृञ्जनाद्रि के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। वह रूपवती तो है क्योंकि सभी उसमें अनुरक्त दिखाई देते है। युवा गृञ्जनाद्रि तो उसके रूप का स्मरण करके जीवित है। पर वृद्ध लशुनपन्त को भी उससे अनुराग है। वह प्रेमिका होकर भी विवाहवाग्दान लशुनपन्त के साथ शील आचरण करती है। वह मूर्च्छित लशुनपन्त के उपचार के लिए चिञ्चा के रस को रक्तमूलिका के रस के साथ मिलाती है। गृञ्जनाद्रि की प्रेमिका होकर वह लशुनपन्त के साथ विवाहवाग्दान करती है। पिता की आशा से वह लशुनपन्त के साथ विवाह करने में तैयार होती है। इस प्रकार वह आज्ञाकारी भी सिद्ध होती है।

लशुनपन्तः

रक्तमूलिका के जन्म से ही उसको पाने की इच्छा से लशुनपन्त जीवित है। गृञ्जनाद्रि के साथ रक्तमूलिका के विवाह की बात सुनकर वह लिङ्गोजीभट्ट से तर्क करता है। लशुनपन्त रक्तमूलिका के साथ विवाह के लिए लिङ्गोजीभट्ट को यथेष्ट धन देता है।

भोजन की पंक्ति में सभी पलाण्डुमण्डन आदि सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों की प्रशंसा करते हैं तब लशुनपन्त भी लशुन के गुणों का अधिक प्रदर्शन करते है।

यत्पोटिका कोटिसमीरणानां
हन्त्री भवेत्तत्समता कथं स्यात्।
गन्धेन यस्यैव सुरासुराणा–
मन्नं भवेत्तृप्तिकरं विशेषात्।।

स्वयं की प्रशंसा करते हुए पूरणपोलिका वाक्य को सुनकर वह हंसती है। उसके बाद लशुनपन्त मूर्च्छित हो जाता है। वह कहती है कि पित्त के क्षोभ से वह मूर्च्छित हो गया, पित्त का नाश लशुन से हो जाएगा। वह लशुन में ही सर्वस्व मानती है–

"अये लशुनपोटिके। सकलदुःखसंत्रोटिके महापथसुघाटिके परमपाप–संमोटिके सुगन्धहतदुष्कृते परमसिद्धसच्छोटिके! प्रसीद परमेश्वरि। क्षुधित–तृप्ति–सन्द्रोटिके!"

पलाण्डुमण्डनः

पलाण्डुमण्डन को समाज में विशेष आदर प्राप्त है। नेपथ्य में सभी प्रमाण करते हैं– **'प्रतिष्ठिताः पलाण्डुमण्डनाद्याः केचन गच्छन्त्वन्तः'** इस प्रकार अतः वह भोजन पंक्ति में सगर्व बैठता है। सभी अपने–अपने खाद्य पदार्थों की प्रशंसा करते है। पलाण्डुमण्डन भी पलाण्डु लशुन आदि को प्रतिपादित करता है। पलाण्डुमण्डन मूर्च्छित लशुनपन्त को पलाण्डु द्रव आदि देने को कहते हैं। क्वथिका कञ्चुकी गिरे हुए पलाण्डु–लशुन–गृञ्जन आदि को देखकर पलाण्डुमण्डन स्वयं अपना अपमान स्वीकार करके सरोष चला जाता है।

गौण पात्र में गृञ्जनाद्री रक्तमूलिका का प्रेमी है पर वह कभी भी प्रिया का प्रभाव नहीं प्राप्त करता है। गृञ्जनाद्री की माता क्वथिका पिता त्र्यम्बकभट्ट, लिङ्गोजीभट्ट की बहन के पति है। कलङ्ककुराचार्य चिञ्चा का गर्भाधान संस्कार करते है। दाक्षिणात्य ब्राह्मण तो गर्भाधान संस्कार में विघ्न उत्पादन करते है। लिङ्गोजीभट्ट के शुभेच्छुकों में प्रजापति देव भी सामान्य पात्रों में स्मरणीय है। इनमें कई पात्र तो नाममात्र के है।

गुणदोषसमीक्षा/नामकरणम्

इस प्रहसन का नाम नियमानुसार ही हे क्योंकि– **'नाम कार्यं नाटकस्य गर्भितार्थप्रकाशकम्।'** यहाँ पलाण्डु ही मण्डन भूषण अर्थनिमन्त्रित प्रधान और प्रतिष्ठित है। यहाँ पलाण्डु की विशिष्टता को प्रतिपादित किया है–

यत्सन्तानपरम्पराप्रविलसत्तारासमूहस्तथा,

मुक्ताहीरक–पुष्परागमणयो नैते शतांशैः समाः।

तृप्तिर्येन गरीयसी प्रवितता दृङ्मात्रतो जायते,

कन्दः कोऽपि सुधाकराधिकगुणः क्षेत्रे दिवि द्योतते।।

अतः पलाण्डु गृञ्जनाद्रि विशिष्टता से इस प्रहसन का नाम सार्थक करते है।

लक्षणसङ्गतिः

प्रहसन में लक्षण सङ्गति के प्रदर्शन के लिए कुछ लक्षण इस प्रकार है। जैसे–

भाणवत्सन्धिसन्ध्यङ्गलास्याङ्गकैर्विनिर्मितम्।

भवेत् प्रहसनम् वृत्तं निन्द्याना कविकल्पितम्।।

अत्र नारभटी, नापि विष्कम्भकप्रवेशकौ।

अङ्गी हास्यरसस्तत्र वीथ्यङ्गानां स्थितिर्नवा।।

तपस्विभगवद्विप्रप्रभृतिएवत्र नायकः।

एको यत्र भवेद् धृष्टो हास्यं तच्छुद्धमुच्यते।।

आश्रित्य कञ्चन जनं संङ्कीर्णमिति तद्विदुः।

तत्पुनर्भवति द्वयङ्कमथवैकाङ्कनिर्मितम्।।[11]

नाट्याङ्गानां समावेशः

प्रहसन, भाण, सन्धि, सन्धि के अंग निर्मित होते है। यहाँ अर्थ भाण मुख–निर्वहण सन्धि, सन्धि के प्रकार, दस अंकों की रचना की है।

पलाण्डुमण्डन नामक इस प्रहसन में मुख–निर्वहण सन्धि के अंगों को निरूपित किया है।

विजयपारिजातनाटकम्/कथावस्तु

नाटक के पूर्व कामाख्या देवी का स्तवन के साथ मंगलाचरण किया जाता है। मंगलाचरण के अन्त में सूत्रधार कहता है कि यह समय प्रशंसनीय रामचरित का है। नेपथ्य में श्री रामसिंह का सभी सभा में स्थित विजयपारिजातनाटक के अभिनय को कहते हैं, यह प्रस्तावना है।

प्रथमोऽङ्क :

नेपथ्य में श्री सवाई रामसिंह की पूर्व दिशा में विजययात्रा की सूचना मिलती है। उस समय सुरत्राण का राजा औरंगजेब था स्थिति की सूचना देते है। उसके बाद सुरत्राण के मन्त्री कहते हैं कि

अनेक देशों के चित्रपट को देखने की इच्छा है। मन्त्री चित्रपट (नक्शा) को देखकर कामाख्या प्रदेश के ऊपर आक्रमण की योजना करते है। उसके बाद वह मन्त्रियों को आज्ञा देते हैं कि मानसिंह वंश मण्डन जयसिंहद्योत मणि महाराज रामसिंह को यहाँ बुलाओं।

उसके बाद रामसिंह प्रवेश करता है। सुरत्राण रामसिंह को कामाख्या प्रदेश के ऊपर आक्रमण की योजना कहते हैं। रामसिंह कहता है कि आपकी आज्ञा से में सम्पूर्ण संसार को जीत सकता हूँ। सुरत्राण (औरंगजेब) प्रसन्न होकर रामसिंह के लिए हाथी, घोड़े, वस्त्रादि पारितोषिक के रूप में वितरण के लिए मन्त्रियों को आदेश देते है। उसके बाद रामसिंह निकल जाता है।

द्वितीयोऽङ्क :

द्वितीय अंक में विदूषक युद्ध की सज्जा को देखकर आश्चर्यचकित होता है। उसके बाद रामसिंह प्रवेश करता है। वह विदूषक के साथ जाकर सिंहासन के ऊपर बैठता है। उसके बाद मन्त्री और प्रतिहारी प्रवेश करते हैं। राजा मन्त्रियों से कहता है कि सभी सावधानी से अपने कर्त्तव्यों को पूरा करे। सभी सैनिकों को सावधान करने के लिए मन्त्री निकल जाते है। उसके बाद रामसिंह अपने सेनापति मुकुन्ददास को बुलाता है। मुकुन्ददास सूचना देता है कि सभी वीर विजय मुहूर्त के लिए बैठे है। राज रामसिंह उनको पारितोषिक वितरित करते है। सेनापति उनके चरणों में गिरता है। राजा उसे उठाकरण प्रस्थान करने की आज्ञा देते हैं।

उसके बाद रामसिंह की सेना का प्राची मार्ग से प्रस्थान होता है। कञ्चुकी आती है। वह राजा को प्रणाम करके कहती है कि इस मार्ग में मथुरा–वृन्दावन आदि तीर्थस्थल है। अतः अन्तःपुरवासी भी वहाँ जाने की इच्छा करते है। रामसिंह की आज्ञा से सभी का प्रस्थान होता है। राजा द्वारा शुभ मुहूर्त में गजारोहण किया जाता है।

(नेपथ्य में ध्वनि) राजा रामसिंह की सेना का वर्णन होता है कि उनकी विशाल सेना से दूसरे राजा विचलित हो गये है। उसके बाद देवलक प्रवेश करता है और कहता है कि–श्री गोविन्द देव का प्रसाद स्वीकार कीजिए। राजा रामसिंह गोविन्ददेव का प्रसाद लेकर गोविन्द मन्दिर जाते हैं। राजा ने सायंकाल में गोविन्द दर्शन किए।

तृतीयोऽङ्क :

नेपथ्य में कलकल की ध्वनि होती है। हाथी शृंखलाबद्ध होकर पलायन करते हैं। इसके बाद केचन पलायन करते है, केचन मूर्च्छित होते हैं। स्त्रियाँ हाहाकार करती है। राजा कोलाहल को

सुनकर घोड़े पर चढ़कर निकल जाते हैं। उसके बाद ही कञ्चुकी प्रवेश करके कहती है कि देवी तुम्हारे आगमन की अभिलाषा करती है।

यमुना नदी के किनारे सभी विश्राम करने के लिए स्थित होते हैं। दत्पत्ती यमुना पूजा करते है। वहाँ पर राजा द्वारा पुरोहित को भूमिदान किया जाता है। उसके बाद दम्पत्ती रथारोहण करते है। सारथि कहता है कि किस प्रकार से सुकोमल रानी रथ की तेज गति को सहन करती है। उसके बाद सारथि सूचना देता है। कि काशी में आ गये है। काशी नगरी में सभी पण्डित वेदों के अध्ययन में संलग्न दिखाई देते हैं। वहाँ पर हवन आदि कार्य भी किये जाते हैं।

राजा अपनी पत्नी ललिता के साथ काशी भ्रमण करते हैं। इसके बाद पुरोहित जाकर सभी को ले जाते हैं। सभी शङ्कर की षोडशोपचार पूजा करते हैं। इसके बाद राजा कालभैरवं, नृसिंह अवतार की भी पूजा करते हैं। उसके बाद राजा स्वनिर्मित मन्दिर जाता है। वहाँ राज देव की स्तुति करता है। पुरोहित आशीर्दान करते हैं उसके बाद काशी से प्रस्थान होता है।

चतुर्थोऽङ्क :

राजा गज पर आरुढ़ होकर जाते हैं। वह विदूषक के साथ वार्तालाप करते हैं। उसके बाद वह अन्तःपुर में प्रवेश करते हैं। मन्त्री के साथ जाकर नौका गमन में विलम्ब होने पर चिन्तित होते है। मन्त्री व प्रतिहारी को आदेश देते हैं कि नौका विहार में विलम्ब नहीं होना चाहिए। राज सखियों से युक्त देवी (रानी) के साथ नौका विहार करते हैं। उसके बाद सभी मण्डप में बैठते है तभी विदूषक का भी आगमन होता है।

इसके बाद यहाँ काशी के चार विद्वान् प्रवेश करते हैं। वह राजा का आशीर्दान करते हैं। उसके बाद राजा मन्त्रियों को आदेश देता है कि सभी सैनिक सावधानी से कर्त्तव्य करें। कल प्रभात काल (सवेरे) में प्रस्थान किया जाएगा, इस प्रकार सौरभ्य नाम का यह चतुर्थ अङ्क है।

पञ्चमोऽङ्क :

गज पर आरूढ़ होकर राज प्रस्थान न करके हिरण के शिकार के लिए निकल जाते हैं। वह गंगा प्रदेश का भ्रमण करते है। यहाँ राजा रामसिंह की और राजा मानसिंह की वीरता का वर्णन किया गया है। इसके बाद शायस्तिखान आते हैं और कहते हैं कि आप इस कार्य में विलम्ब न करें। इसके बाद वह दोनों वसन्त उत्सव को देखते हैं। इस प्रकार मधूद्गम नामक यह पाँचवा अंक है।

षष्ठोऽङ्क :

षष्ठक अंक में राजा अपने लोगों के साथ जल यन्त्र को ग्रहण करके वसन्त उत्सव मनाते है। अतः काश्मीर द्रव राग से रञ्जित पृथ्वी स्वर्णिम दिखाई देती है। राजा वसन्त उत्सव के विषय में विदूषक से पूछते है। इसके बाद सेनाध्यक्ष आते है। वह कहता है कि गुप्तचर आपसे मिलना चाहते है। राज उनको बुलाने का आदेश देता है। गुप्तचर कहते हैं कि इस समय शत्रु सावधान है। राजा मन्त्रियों को आदेश देता है कि प्रस्थान के लिए सभी को सावधान करें। इस प्रकार भङ्गसमाज नामक यह षष्ठ अंक है।

सप्तमोऽङ्क :

गुप्तचरों का प्रवेश होता है। वहाँ औरंगजेब के पराक्रम का वर्णन है। यहाँ पर ही चक्रध्वज ओर महिषी वार्तालाप करते है। वार्तालाप में औरंगजेब ओर रामसिंह की वीरता का वर्णन है। इस प्रकार भृङ्गगुञ्जार नामक यह सातवां अंक है।

अष्टमोऽङ्क :

यहाँ राजा चक्रध्वज के रत्न सिंहासन का समारोह है। वह मन्त्रियों से कहते हैं कि कामाख्या कोट में स्थित कोङ्कण पत्र में लिखना चाहिए। उसमें युद्ध सज्जा का संदेश भेजों। चक्रध्वज मन्त्रियों को आदेश देता है कि केचन के श्रेष्ठ सैनिकों को बुलाओं। (नेपथ्य) सेना का वर्णन सुनकर वह उत्साहित होता है। उसके बाद मन्त्री सैनिकों को कामाख्या नगरी की रक्षा के लिए भेजते है। वे सैनिक चक्रध्वज को प्रणाम करके निकल जाते है। इसके बाद गुप्तचर आते है वह मन्त्रियों से निवेदन करते है कि रामसिंह ने आक्रमण कर दिया है अतः कुछ उपाय करो। इस प्रकार मध्वास्वादन नामक आठवां अंक है।

नवमोऽङ्क :

प्रवेशक राजा की भावि विजय की सूचना देता है। गज पर आरूढ़ राजा अस्त्र–शस्त्र से युक्त सामन्तों के साथ प्रवेश करता है। सेनाध्यक्ष मुकुन्ददास निवेदन करता है कि आप (रामसिंह) की गणना तो दश अवतारों में है। अतः सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

इसके बाद श्रेष्ठ वीर सैनिक अर्जुनदास–श्री केसरीसिंह युद्ध के लिए सतर्क है। युद्ध का आरम्भ होता है। (नेपथ्य) में कोलाहल होता है। तभी शोभाचन्द आकर ओर हाथ जोड़कर निवेदन करता है कि इस समय सामन्त और मुगल सैनिक पलायन कर रहे हैं। रामसिंह कहता है कि यह तो

मुगलों का स्वभाव ही है। नेपथ्य में लोग चन्द्रध्वज को धिक्कारते है और कहते हैं कि कोङ्कण देश का विनाश हो गया।

पलायन करो, पलायन करो इस प्रकार का कोलाहल होता है। इसके बाद कोलाहल के विषय में सूचना देने के लिए ब्रजनाथ आता है। वह जय–जयकार करके विजय की सूचना देता है और कहता है कि सभी आसाम से पलायन कर गए। इसके बाद आसाम प्रदेश का प्राकृतिक वर्णन, वहाँ की नदियों और वहाँ का नौका विहार का वर्णन है। इस प्रकार मधुमोह नामक यह नवाँ अंक है।

दशमोऽङ्क :

कञ्चुकी का राजा के साथ प्रवेश होता है। वह चिन्तित होते है कि मन्त्री विलम्ब से है। वह कञ्चुकी को बुलाने का आदेश देते है।

मन्त्री आते हैं वह राजा के सामने अपने सैनिकों के पराक्रम का वर्णन करते है। कि किस प्रकार से आसाम के लोगों को मारा और पलायन करवाया। आसाम के लोगों की धूर्तता का वर्णन है।

इसके बाद कामाख्या देवी की महात्म्य का वर्णन है। इसके बाद प्रतिहारी आकर निवेदन करते हैं कि कोङ्कण प्रदेश के ब्राह्मण और पुरोहित आदि शरणागत होकर द्वार पर बैठें है। राजा उनको बुलाता है। आकर सभी लोग आसाम की राज स्तुति करते है।

पात्राणां चरितचित्रणम्

महाराज रामसिहः

इस विजयपारिजात नाटक का धीरोदात्त नायक आमेर नरेश राजा सवाईरामसिंह है और वह दिल्ली मुगल सम्राज्य नौरंगशाह (औरंगजेब) का प्रधान सेनापति है। वह कच्छप वंश में उत्पन्न श्री जयसिंह प्रथम का पुत्र है। वह वीर शिरोमणि तथा पराक्रमी है। प्रथम अंक से–

"भो भो भरतपुत्राः! अखिलभूपालमौलिमाणिक्य मरीचिमञ्जुमञ्जरीमण्डितंचरणारविन्दप्रभा–पराभूताद्विषदन्धतमसाना कूर्मकुलकमलबान्धवश्रीमानसिंहवंशावतस श्रीजयसिंहनन्दनश्रीमहाराजाधिराज–रामसिंहनाम" इति।

उक्त पंक्तियों से रामसिंह की कर्मफूलोत्पत्ति तथा वीरता सिद्ध होती है। वह पूर्व दिशा में कामाख्या प्रदेश की विजय के लिए प्रस्थान करता है। इसकी सूचना प्रथम अंक से मिलती है। उसके पराक्रम के विषय में प्रमाण भी देखे जा सकते है–

"ततः प्रविशति सूर्य इव तेजः समूहः संहृतद्विषदन्धकारः–कुबेर इव मणिग्रीवोपसर्ममाणः पुरन्दर इव परिमथितोद्दण्डपरबलः बुध इव महाबिबुधः गुरुरिव जगतिगुरूः कुलिश इव कुटिलः" इत्यादि।

और भी–

यो बीजापुरनाथमानमथनो यः सौरतग्राहकः।
सङ्ग्रामेषु चतुर्दशावदमतनोद् वैषम्यमुग्रं भयम्।।
जेता यो हि फिरङ्गिगणाम्.....। इत्यादिः।

सवाई रामसिंह के सानिध्य में सेना की न्यूनता दिखाई नहीं देती। जब राजा मन्त्रियों से पूछते हैं तो मन्त्री कहते हैं–

कोषे त्वन्नरवाहनेन सदृशो दिग्दन्तितुल्या राजाः।
योद्वारो रणकर्कशा नरपते! भीमार्जुनाभ्यां समाः।।
द्रागुच्चैः श्रवणोपमामुपगतास्ते पौरूषेया हयाः।
जेतव्या कियती महीति विजितं त्रैलोक्यमेतैर्भवेत्।।

वह साहसिक कार्य के लिए पारितोषिक वितरित करते है। जब सेनापति मुकुन्ददास आकर निवेदन करता है–

"देव! युद्धोद्धतास्ते वीरा विजयमुहूर्त्तमनुतिष्ठन्ति।"

यह वचन सुनकर राजा मन्त्रियों को आदेश देता है कि मुकुन्ददास के कार्य के लिए पारितोषिक वितरण करवाया जाए।

वह गोविन्द देव के प्रति आस्था से युक्त है। वहाँ दिग्विजय यात्रा में प्रस्थान के समय देवलक जब गोविन्द देव का प्रसाद देता है। तब वह रामसिंह भी गोविन्द देव के मन्दिर में दर्शन के लिए निकल जाते हैं।

वह पूर्णरूप से देवों में आस्था रखने वाले है। काशी नगरी जाने पर भी वह सभी मन्दिरों को देखते है।

वह अपने लक्ष्य के प्रति सतर्क है। वह स्वयं ही अपने भाषण कहते हैं–

"इदानीं महाशत्रुवधोद्यतस्य मम देवीसम्भावने कुत्रावकाशो भविष्यतीति तदनुसरणेनैव क्षपावशेषं क्षपयिष्ये।"

वह गुप्तचरों की सूचना के अनुसार ही शत्रुओं पर आक्रमण करता है। इससे उसकी राजनीतिज्ञता ज्ञात होती है। वह शत्रुओं को पराजित करता है।

कामाख्या नगरी को जीतने पर पराजित हुए पुरोहित आदि जो शरणागत आते हैं उन्हें वह शरण देता है।

इस प्रकार वह रामसिंह पराक्रमी, दानी, राजनीतिज्ञ, रणकुशल और शरणागतवत्सल है।

मुकुन्ददास :

मुकुन्ददास रामसिंह की दिग्विजय प्रस्थान के समय सेनाध्यक्ष के रूप में चित्रित है। यह भी पराक्रमी और कर्त्तव्यनिष्ठ है। युद्ध में प्रस्थान के समय वह राजा के पास आकर निवेदन करता है कि–

"देव! युद्धोद्धतास्ते वीरा विजयमुहूर्त्तमनुतिष्ठन्ति।"

इससे सेनाध्यक्ष की सावधानता और कर्त्तव्यनिष्ठता उत्पन्न होती है। युद्ध के प्रारम्भ में रसीदखाना से तो पलायन होता है लेकिन मुकुन्ददास शीघ्र आकर सेना को व्यवस्थित होने का आदेश देते हैं और कहते हैं कि–

"युद्धाभिलाषिणः शत्रवः सन्मुखाः सन्ति।"

वह धैर्य धारण करके युद्ध करता है। सेनाध्यक्ष मुकुन्ददास चतुर और कुशल योद्धा है। विजय का श्रेय तो मुकुन्ददास को भी देना चाहिए।

मन्त्री

राजा रामसिंह के मन्त्री सभी कार्यों में सहायता करते हैं। राजा मन्त्रियों से पूछते हैं तभी वह कहते है कि–

"भवता कोशे कस्य वस्तुनो न्यूनता।"

वह राजा के विषय में भी सावधान है। वह यमुना तट पर विषयासक्त राजा के विषय में चिन्तीत है। अन्त में कामाख्यानगरी में विजित मन्त्री आकर सभी वीरों के युद्ध कौशल को बताते हैं।

विदूषक :

विदूषक का प्रवेश द्वितीय अंक से है। वह युद्ध की सज्जा को देखकर आश्चर्य–चकित होता है। और भविष्य के बारे में चिन्तित होता है जब कञ्चुकी प्रवेश करके सूचना देती है कि अन्तःपुर से सभी इन मार्ग में स्थित तीर्थ–स्थलों को देखने की इच्छा करते है। राजा के आदेश को सुनकर वह खुश (प्रसन्न) होता है अन्यथा वह खिन्न मन सा बैठा था।

विदूषक भीरू (डरपोक) है तभी तो वह युद्ध के समय दूर बैठता है। अन्यथा तो वह रामसिंह के साथ विचरण करता है और हमेशा उनका हास्योत्पादन करता है।

प्रभावली–नाटिका

कथावस्तु

प्रथम अंक के प्रारम्भ से पूर्व ही विष्कम्भक सर्वतोभद्र से–

प्रियजनसहजालापः सुखयति हि यथा तथा न कर्पूरः।
नापि हिमानि ग्रीष्मे नहि नहि चन्द्रः सुधाङ्गोऽपि।।

इस प्रकार सूत्रधार वाक्य को पढ़ता हुआ प्रवेश करता है। वह सूचित करता है कि प्रभावली के चित्र को राजा चन्द्रोज्वल से रानी हृदय शोभित चिन्तित दिखाई देती है। सर्वतोभद्र से 'प्रभावली प्रभुयोग्या' अतः देवी अनुमती के साथ उससे मैत्री करो। राजा चन्द्रोज्ज्वल और प्रभावली का साक्षात् मिलना दुष्कर है।

महेन्द्रजालिक चन्द्रोज्ज्वल को विरह व्याकुल देखता है। प्रभावली अकेली बैठी है। अनुमती नहीं जानती कि प्रभावली चन्द्रोज्ज्वल को ही चाहती है। नेपथ्य में कलकल की ध्वनि को सुनकर सर्वतोभद्र चिन्तित है कि प्रभावली के दुःख होकर अनुमती मनोरंजन के लिए चन्द्रोज्ज्वल को उपवन में क्रीड़ा के लिए भेजती है। अतः वह भी प्रभावली चन्द्रोज्ज्वल के मिलन को सिद्ध कर निकल जाती है।

प्रथमोऽङ्क :

उपवन में राजा देवी के चित्रमाला रूप पर विदूषक के साथ बैठा है। वर्षाकाल का समय है। इस समय ऐन्द्रजालिक कामरूप में भी भूमिनाथ को देखकर की विरह से पीड़ित प्रभावली का दुःख किस प्रकार दूर हो सकता है। यदि देवी राज चन्द्रोज्ज्वल से कुछ उपाय करने का निवेदन करें। चन्द्रोज्ज्वल ने तो जन्म से यह प्रतिज्ञा करी कि उनका प्रभावली के प्रति अनुराग है।

उपवन मन्दिर में रात्रि के समय देवी अनुमती राज से निवेदन करती है। चन्द्रोज्ज्वल को सखियों के साथ देवी उपवन मन्दिर भेजती है। वहाँ तो चिन्तामणि (प्रभावली चित्र) को देखकर विरह पीडित हो जाते है। समीप स्थित पुष्पवाटिका में विश्राम करते है तथा विदूषक को देवी की चिन्तामणि लाने को भेजते हैं।

द्वितीयोऽङ्क :

राज की आज्ञा से विदूषक चिन्तामणि को लाने जाता है पर मार्ग में देवी द्वारा भेजी गई चित्रमाला मिलती है। वह चित्रमाला ही चिन्तामणि के पारितोषिक रूप में देवी से ग्रहण की, अतः विदूषक दोनों चित्रमाला को राजा को देता है। राजा तो चित्रमाला चिन्तामणि को ग्रहण (लेकर) हृदय में स्थापित करके अपनी प्रिया का स्मरण करता है।

विदूषक चिन्तामणि को देखकर पूछता है कि यह चिन्तामणि किसने भेजी? विदूषक उसके चित्र निर्माण के लिए वर्तिका को बुलाता है। पर राजा तो उसके परम सौन्दर्य से युक्त स्वरूप को कहने में समर्थ नहीं है। चित्र निर्माण किस प्रकार हो। विरह पीड़ा की अधिकता से राजा की अवस्था चिन्तनीय हो गयी है। राजा प्रिया का स्मरण करता है। इसके बाद वह चित्रमाला को पुनः लाता है। विदूषक कहता है कि देवी सम्पूर्ण वृत्तान्त को जानती है। इसके बाद प्रभावली के दुःख से दुःखी देवी राजा को मनोविनोद के लिए भेजती है।

तृतीयोऽङ्क :

हिरणो के निकल जाने पर राजा चन्द्रोज्ज्वल सपत्नी कन्या आश्रम में अतिथि रूप में सत्कार किये जाते हैं। वह प्रभावली के विषय में सोचता हुआ अतिथि मण्डप में प्रवेश करता है। वहाँ देवी अनुमती प्रभावली की अनुजा कन्येश्वरी से मिलती है। राजा कन्येश्वरी को देखकर प्रभावली का स्मरण करता है। तभी सारिका (मैना, पक्षी विशेष) कहती है कि प्रभावली की सखी देवी कन्येश्वरी है। इसके बाद देवी प्रभावली से मिलने निकल जाती है। इसके बाद रेवती राजा से आकर कहती है कि अश्विनी देवी मार्ग के सज्जागृह में स्थापित है, वह तुम्हारा प्रभावली के साथ मिलन करा सकती है।

कन्याश्रम में पुरुष का जाना निषेध है, अतः विदूषक कन्या वेश को धारण करके राजा के साथ प्रभावली का मेल करवाकर अश्विनी जाती है। इनके साथ ही प्रभावली भी जाती है। तभी कन्यावेशधारी विदूषक उसके चरणों में गिरता है। अश्विनी प्रभावली के हाथ को धारण करके राजा को समर्पित करती है। देवी के आगमन की सूचना रेवती वाक्य से सुनकर अश्विनी प्रभावली दोनों निकल जाती है।

पुनः अश्विनी प्रभावली साथ आती है। राजा प्रभावली को ग्रहण करके उसका आलिङ्गन करता है। इन सबके मध्य ही पुनः देवी के आगमन की सूचना सुनकर वह अश्विनी और प्रभावली निकल जाती है।

कन्यावेशधर विदूषक को जानकर देवी आकर अपराध को क्षमा करने को राजा से प्रार्थना करती है। राजा कहते है कि कन्यावेश को धारण करके विदूषक तुमने व्यथित किया अतः तुम दण्ड के पात्र हो। विदूषक कहता है कि मेरा अपराध क्षमा योग्य है क्योंकि इसके बिना मेरा प्रवेश सम्भव नहीं था। तभी देवी विदूषक को यथेष्ट भ्रमण की अनुमति देती है। दम्पत्ति सज्जागृह की ओर जाते हैं।

चतुर्थोऽङ्क :

विरह से व्याकुल प्रभावली राजा का स्मरण करके मूर्च्छत हो जाती है। अश्विनी के कहने से रेवती नलिन पत्तों से शय्या सजाती है। देवी प्रभावली को सान्त्वना देने बुलाती है। अश्विनी देवी से निवेदन करती है कि कन्येश्वरी के दुःख से दुःखी होकर प्रभावली का मरना निश्चित है, अतः कन्येश्वरी की रक्षा करो। देवी कन्येश्वरी की प्राणों की रक्षा के लिए अभिलषित जन के साथ विवाह कराने का वचन देती है। जब प्रभावली कहती है कि उसका ही कन्येश्वरी नाम है, तभी देवी राजा के साथ कन्येश्वरी का विवाह कराने का कहकर निकल जाती है।

इसके बाद राजा प्रभावली के समीप आते है। नायक–नायिका का मिलन कराकर अश्विनी जाती है पर राजा निषेध करता है। राजा प्रभावली का आलिङ्गन करता है तभी देवी के आगमन सूचक वाक्य को सुनकर अश्विनी और प्रभावली निकल जाते है। इसके बाद देवी प्रवेश करके राजा से कहती है कि मैंने प्रभावली की अनुजा कन्येश्वरी का विवाह आर्य पुत्र के साथ कराने का वचन दिया है। राजा प्रसन्न होकर देवी का आलिङ्गन करके अपनी अनुमति देते हैं। रेवती आभूषणों से अलंकृत कन्येश्वरी को वहाँ लाती है। देवी अनुमती कन्येश्वरी का हाथ राजा के हाथ में देती है और कहती है कि– "हे! आर्यपुत्र यह तुम्हारी राजलक्ष्मी है।" अनुमती कहती है कि यह मेरे लिए प्रभावली के समान है, अतः सभी को प्रभावली के बारे में ज्ञात होता है। अन्त में सर्वतोभद्र सूचना देता है कि अश्विनी आदि सभी प्रभावली को उपहार देते है। देवी के साथ रथ पर आरूढ़ होकर राजा राजभवन की ओर प्रस्थान करते हैं।

पात्राणां चरित्रचित्रणं

चन्द्रोज्जवलः

राजा चन्द्रोज्ज्वल अपने आमात्य सर्वतोभद्र पर राज्य का भार डालकर निश्चित है, वह दिन–रात महोत्सव में संलग्न है। यह ही इस नाटक का नायक है। यह धीरललित नायक है। वह

कलाप्रेमी और रसिक है। अपूर्व सौन्दर्य से युक्त प्रभावली के प्रतिबिम्ब को देवी की चिन्तामणि में देखकर राजा देवी से मिलने वहाँ आता है पर विलुप्त प्रतिबिम्ब को देखकर विरह विहल हो जाता है।

वह उत्कृष्ट प्रेमी है। प्रभावली के बिना वह हमेशा मूर्ख की तरह बैठता है। जहाँ कहीं भी जाता है वह प्रभावली को ही खोजता है। कन्या आश्रम जाता है वहाँ भी–

"कदाचित्रैव तत्प्रतिबिम्बं स्यात्तदा किं ब्रुवे (इति चिन्तयन् स्थितः)।"

वह देवी के लिए चिन्तित है जब देवी अपनी सखियों को प्रभावली को खोजने को कहती तभी वह प्रतिज्ञा करता है और भी देवी प्रभावली मिलने के लिए उत्सुक है तभी वह कहती है–

अत्युत्सुका त्वं मिलने तदीये ततो विधास्ये बहुधा प्रयत्नम्।
रत्नं त्वदीयं वचनं विशेषात् किरीटयोग्यं नितरां ममास्ति।।

अतः चन्द्रोज्ज्वल का एक से अधिक महिलाओं से अनुराग है। चन्द्रोज्ज्वल का व्यवहार भी समुचित है।

प्रभावली

'प्रभावली' नाटिका की नायिका नवोढा है। नायिका प्रधान नाटक का नाम भी 'प्रभावलीनाटिका' इस प्रकार है। देवी के सम्मुख वह नायिका प्रभावली की अनुजा कन्येश्वरी होती है। चतुर्थ अंक में ज्ञात होता है कि कन्येश्वरी ही प्रभावली है।

चन्द्रोज्ज्वल ने तृतीय अंक में इस प्रकार वर्णन किया है–

वक्षोजौ ते कमलनयने गेन्दुकावेव वल्गद्–
कामक्रीडापरिणयविधौ कामदेवस्य कामम्।
हस्तावेतौ तदनुसरणे सर्वदैव प्रमत्तौ
यस्मात् स्यातां न तत्तुलना त्यागपूर्वं विशेषात्।।

चन्द्रोज्ज्वल को देखकर वह विरह से व्याकुल एकान्त में निवास करती है। चन्द्रोज्ज्वल के दर्शन से उसके मन में प्रेम का प्रथम अङ्कुर उद्भविद् निकलता है। वह उससे मुग्ध है। अतिथि मण्डप में रखे दर्पण में चन्द्रोज्ज्वल के प्रतिबिम्ब को देखकर 'अपूर्वः काम' इस प्रकार वह मानती है। वह प्रतिज्ञा करती है कि प्रिय के मुख के अलावा किसी भी मनुष्य के मुख का अवलोकन न ही करेगी। अतः जब प्रभावली के निकटस्थ सखी से वार्ता करने के लिए विदूषक आता है तभी वह निकल जाती है।

वह कुलीन और सर्वगुण सम्पन्न है। उसमें लज्जा, औदार्य आदि की भावना अधिक है। जब वह राजा के सम्मुख आती है तब कहती है–

"अश्विनि। त्वमग्रतो भव। (अपवार्य) भट्टासम्मुखे स्थिताऽहं चरणविन्यासं कर्तुं न शक्नोमि।"

जब देवी प्रभावली की अनुजा कन्येश्वरी का विवाह राजा के साथ करने के लिए वचनबद्ध होती है, तभी प्रभावली कन्येश्वरी के स्वरूप में प्रकट होती है और कहती है कि–

"हे हे भगिनि! तदिदानीं तथा कुरु यथा मम मरणतोऽपि तव वियोगो न भवेत्, कन्येश्वरी खल्वहमेव न सन्देहः।"

इस कथन से उसका औदार्य प्रतीत होता है।

अनुमती

अनुमती चन्द्रज्ज्वल की पट्टरानी के रूप में चित्रित है। वह न केवल अपने स्वार्थ की चिन्ता करती है। हे अपितु प्रिय सखी प्रभावली का हित भी करती है। अतः विरह विह्वल प्रभावली के दुःख से दुःखी होकर राजा से उसके लिए अभिलषित जन को खोजने का निवेदन करती है और प्रभावली को सान्त्वला देने के लिए सारिका (मैना इस प्रकार पक्षिविशेष) को भेजती है।

वह कोमल हृदय वाली है लेकिन कभी कठोर व्यवहार करके पश्चाताप का अनुभव करती है। राजा के सम्मुख किसी दूसरी स्त्री को देखकर वह तर्क करती है, पर कन्यारूप में विदूषक को जानकर राजा से क्षमा माँगती है तथा विदूषक को यथेष्ट भ्रमण की अनुमति देती है। यहाँ उसकी उदारता प्रकट होती है।

3.2 सारस्वतसौरभम् का परिचयात्मक अध्ययन

संस्कृत साहित्य का अपना स्वरूप और अपना ही इतिहास है। यह सुदीर्घकाल से बहती हुई अलकनन्दा है, जिसमें सजीवता एवं झंकृति है, यह तरङ्गायित है और सहृदयों के तारों में कम्पन किये बिना नहीं रहती है। इसके प्राकृत रूप में किसी प्रकार की विकृति नहीं आ पाई। साहित्य के जन्म के साथ ही समीक्षा का भी उदय हुआ क्योंकि किसी भी क्रिया की प्रतिक्रिया नैसर्गिक है।

'निरङ्कुशा हि कवयः' उक्ति चरितार्थ है। किसी भी रचनाधर्मी को सायास सर्जन के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है वह तो प्रकृति जीता है और प्राकृत ही अभिव्यक्त करता है। आज कविता बौद्धिक विकास के शिखर पर है और उसकी शैली सभ्यता के आयामों की तरह परिवर्तन

चाहती रहती है। संस्कृत में आज भी दो धाराएँ है– (1) प्रौढ़ पाण्डित्य एवं चमत्कृति (2) नवचेतना के साथ नव्य शैली। दोनों में एक समानता है– वह है व्याकरण के नियमों की परिपालना।

पुरानी पीढ़ी प्रौढ़ता तथा पाण्डित्य का अनुकरण करने वाली है, किन्तु नई पीढ़ी ने दुस्साहस के साथ छन्द की प्रतिबद्धता को भंग किया है और आधुनिक शैली को हृदय से स्वीकार किया है। अभिनव आयामों की रचना कर एक आन्दोलन को जन्म दिया है। उस आन्दोलन में एक ऐसा हस्ताक्षर 'सारस्वतसौरभम्' का सर्जक है। प्रो. ताराशंकर शर्मा संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ एवं प्राध्यापक है।

प्रो. ताराशङ्कर शर्मा पर अपनी पैतृक–साहित्य–सम्पदा का पूर्ण प्रभाव है। 'सारस्वतसौरभम्' इनके पाण्डित्य गम्भीर चिन्तन और नूतन आयामों का दर्पण है। इस कृति में सभी तरह की रचनाएँ है। जो यह सिद्ध करती है कि लेखक सायास, रचनाकार नहीं, अपितु सहज और निसर्गतः रचनाधर्मी है, यह लेखन की विविध विधाओं में लेखनी चलाकर अपनी बहु–आयामी प्रतिभा और विभिन्न शैलियों को जन्म देने वाला है। पाण्डित्य प्रदर्शन के क्षेत्र में अपने पिता से जो कुछ विरासत में मिला है, वह उसका अधिकारी है। वैदुष्य का प्रवाह है, जो परम्परा से मेल खाता है।

इस कृति के कविता खण्ड में 42 कविताएँ हैं। इस खण्ड को भी 'स्तुतिः, प्रकृतिः कालिदासीयम्, राष्ट्रियम् किं चतुष्कम्, संस्कृतम् एवं मौक्तिकम्' नाम से सात भागों में विभक्त किया गया है।

3.2.1 स्तुति

"कला–कलश कल्याणकारिणी,
कुसुमाकर की कामिनी।
कोटि–कोटि कर करें वन्दना,
हरो अज्ञान की यामिनी।।"

भारतीय काव्यशास्त्रियों के लिए ग्रन्थ या काव्य में मंगलाचरण करना एक परम्परा बन गयी है। प्रत्येक कवि अपने सर्जन के आरम्भ में मंगलाचरण से ही श्रीगणेश करता है। भारतीय संस्कृति आशीर्वाद की कामना की प्रेरणा देती है। प्रो. ताराशंकर जी ने भी अपनी कृति का 'देवि! दिव्यभारती!' कविता से किया है। वहीं दूसरी ओर कवि ने 'वन्दना' शीर्षक में सरस्वती, शिव, श्रीकृष्ण, विनायक, देवी, एकलिङ्ग एवं गौ की स्तुति का भक्ति–भाव से चित्रण किया है।

भगवती सरस्वती

'देव! दिव्यभारति'! कविता के माध्यम से कवि ने माँ सरस्वती का स्तवन किया है। कवि कहता है कि हे माँ आप सभी वेदों और देवों के द्वारा वन्दनीय हो, आप अठारह पुराणों के गूढ अर्थ को जानने वाली हो। आपकी कृपा से ही वेदव्यास, भास, कालिदास एवं माघ आदि कवि महाकवि हुए है और इनकी कृतियाँ सारस्वत रचनाएँ हैं। ऐसी वेदों में निवास करने वाली हे देवी! इस रचनाधर्मी पर भी ऐसी ही अनुकम्पा करें।

"वेददेववन्दिते। पुराणमर्मबोधिनि!
व्यासभासकालिदासमाघकाव्यलासिनि।
कान्त काव्य कौमुदी कृपाकटाक्षकारिणी!,
बालके कृपां कुरुष्व देवि! वेदवासिनि!
कुन्दचन्द्रचन्द्रि कातुषार हारहारिणि!
हंसराजराजिते! सदैव पुस्तधारिणि!
शान्पिावने वने प्रकाशचारूहासिनि!
वन्दनां सदा करोमि देवि! पद्मवासिनि!"

'वन्दना' कविता में भी कवि माँ सरस्वती की स्तुति करते हुए कहते है कि माँ सरस्वती कमल आसन पर विराजमान होकर अपनी वीणा के निनाद से संसार में व्याप्त जड़ता रूपी मूर्खता के अन्धकार को दूर करो। हे माँ! आप अपना आशीर्वाद सभीलोगों पर बनाए रखों।

'पद्मासने वाञ्छति संस्थिति या,
वीणा निनादेन करोति बोधम्।
जाड्यान्धकारं जगतो विलुप्या–
ऽऽशीदनिमाविष्कुरुते जनेभ्यः।।'

कवि ने विरोधाभास अलंकार के माध्यम से द्वयर्थक शब्दों का प्रयोग कर माँ सरस्वती की वन्दना की है। इससे कवि की विलक्षण व विशिष्ट प्रतिभा द्योतित होती है।

"या लक्ष्मीरपि श्रीर्न या च विदुषां रमापि न हरिप्रिया।
सा सरस्वती पूज्या, पद्मस्थापि न पद्मलया।।"

गणपति

कवि ने भगवान गणपति को बुद्धि व सिद्धि का दाता बतलाते हुए अपने आपको शरणार्थी बतलाया है तथा भगवान से प्रार्थना की है कि विघ्नों का नाश कर आप हम पर अपनी कृपा बनाए रखें। आप सदैव हमारी रक्षा करें।

"बुद्धिसिद्धिविधातारं त्वां शरणागतोऽस्म्यहम्।

प्रातर्भजामि विनेशं कृपानिधान! रक्ष माम्।।"

गणपति वन्दना करते हुए सहज शैली में विरोधाभास अलंकार के माध्यम से चमत्कृति को जन्म दिया है–

"नायकोऽपि विनायको लम्बोदरोऽपि विलम्बोदशेः नः।

विरक्षतु स्थुलत्वाद् विघ्नराजोऽप्यविघ्नराजः।।"

इसी तरह डॉ. पाण्डेय अद्भुत प्रतिभा के धनी है। कवि ने अपनी रचना के प्रारम्भिक काल में रचित श्री गणेश के विनायकरूप की चमत्कारात्मक स्तुति की है। वह आह्लादित करने वाली है।

"विनायकव्यालविनायको यो विनायको लोकहिताय लोके।

विनायकोऽभूत् करुणार्द्रचेता विनायको लोकजनस्य जात।।"

इस पद्य में विनायक शब्द की पञ्चधा आवृत्ति हुई है। विघ्नरूपी सर्पों के लिए गरूड जो गणेश मनुष्यों के हित के लिए संसार में करुणार्द्रचेता गौतम रूप में संसार के गुरु बन गये।

शिव

डॉ. पाण्डेय ने विभिन्न देवों की स्तुति करते हुए कल्याणकारी शिव की भी अराधना की है। कवि ने शिव की नमस्कारात्मक स्तुति की है–

"कैलासे वसति विनायकेन सार्धं

नीहारालयतनयाभवान्युपेतः।

पातुं यः प्रमथगणाधिपः समर्थ

स्तस्मै खण्डपरशवे नमो नमोऽस्तु।।"

कवि ने भगवान शिव के एकलिङ्ग रूप की स्तुति करते हुए कहा है कि एकलिङ्ग जी को मेवाड़ में पूजा जाता है और इन्हीं के आशीर्वाद से महाराणा प्रताप विजय हुए है।

"जयैकलिङ्गनाथस्त्वं मेवाड़पतिपूजितः।

तव प्रसादलाभेन प्रतापो विजयी सदा।।"

गौः

'वन्दना' कविता में कवि ने गौ की भी स्तुति की है। पद्य में कवि ने 'ग' के अनुप्रास के साथ श्लेष की प्रस्तुति कमनीय है वहीं दूसरी और कवि के अर्थगाम्भीर्य को अभिव्यक्त करती है।

'गोर्गावो गवि गोतुल्या

गोभिस्तुल्याः पुनगवि।

गावो गावो गवि ध्येया

गोभिः स्तुत्याः समैरपि।।'

'गौः' शब्द के सूर्य, धेनु एवं वृषभ अर्थ प्रयुक्त हुए है। कवि ने कोश की ओर संकेत किया है–

'गौर्नादित्ये बलीवर्दे किरणक्रतुभेदयोः।

स्त्री तु स्याद्दिशि भारत्यां भूमौ च सुरभावपि।।'

सूर्य की किरणे स्वर्ग में वज्र (हीरे) के समान चमकती है और पृथ्वी पर आँखों के समान (कार्य करती) है। पृथ्वी पर गाय और बैल दोनों ही ध्यान देने अर्थात् रक्षा करने योग्य है, तथा स्तुति योग्य है।

भगवान श्रीकृष्ण

कवि ने 'वन्दना' और 'माघव' दो कविताओं के माध्यम से भगवान् श्री कृष्ण की स्तुति की है। 'वन्दना' कविता में कवि ने श्री कृष्ण की स्तुति करते हुए कहा है कि भगवान् श्री कृष्ण अपने चरण कमल में लगी धूति के द्वारा तीन प्रकार के दुःखों के प्रतिघात से पीड़ित शरण में आये हुए सभी जनों के दुःखों का निवारण करें। अतः ऐसे भगवान श्रीकृष्ण उपासनीय है।

'श्रीकृष्णपादाम्बुजयुग्मलग्नं,

रजः समेषां शरणागतानाम्।

दुःख त्रयस्य प्रतिघातदक्षं,

नित्यं भजेऽहं दुरितापनोदम्।।'

'माधव' शीर्षक से लिखी गई कविता कवि के बुद्धि–कौशल एवं व्याकरण के गम्भीर ज्ञान की परिचायिका है। कवि ने श्लेषा अलंकार का सफल प्रयोग किया है।

'माघे मया वै रचितानुरक्तिः

स्मृतिः कृता चौपनिषद्यजस्त्रम्।

मूर्तेर्गृहीतापचितिश्च लब्ध्यै

तत्त्वं गतिर्माधव! किं मम स्या।।'

एक पक्ष भगवद्–भक्त के प्रति और दूसरी ओर नायिका के प्रति कहा गया हैं दोनो में माधव से प्रार्थना कही है कि हे माधव हम आपकी भक्ति की धारा को निरन्तर बनाए हुए है आप हमें अपनी शरण में ले लो।

अनेक शब्दों की व्युत्पत्ति तथा कोश के संदर्भ में निर्देश दिये है। जिससे यह रचना क्लिष्ट होते भी रसिकजनों के चित्त को आह्लादित किये, बिना नहीं रहती है। एक शब्द में श्लेष नहीं है अपितु अनेक शब्दों में श्लेष के कारण कोष की अपेक्षा रही है।

'ख्याता कृतेष्टिः सकलेऽपि लोके
लब्धा मया दृष्टिरभूतपूर्वा।
अजोऽसि साक्षादनुभूतिगम्यः
तत्वं गतिमार्धवं! किं मम स्याः।।'

भगवद्भक्तपक्षे – मेरे द्वारा किया गया यज्ञ (इष्टिःयागः) की सम्पूर्ण संसार में ख्याति फैल गयी। (तत्फलस्वरूप) मुझे अभूतपूर्व दृष्टि (ज्ञान) प्राप्त हुआ। तुम्हारी अनुभूति साक्षात है। तुम (ब्रह्म, विष्णु, महेश) त्रिदेव स्वरूप हो। अतः हे माधव! मैं तुम्हारी गति को प्राप्त करना चाहता हूँ।

नायिकापक्षे–मेरे द्वारा किया गया इष्टिः (इच्छा अर्थात् तत्वप्राप्तिकामना) सम्पूर्ण संसार में फैल गयी है। (तत्फलस्वरूप) मुझे अभूतपूर्व दृष्टि का (तुम्हारा अवलोकन) प्राप्त हुआ। तुम्हारी अनुभूति साक्षात् है। (कामदेवस्वरूप) हो। अतः हे माधव तुम्हारे द्वारा मेरी गति कैसी है? अर्थात् हे माधव मैं आपकी कृपा प्राप्त करना चाहती हूँ।

इस प्रकार के श्लोकों की रचना कर कवि ने अपनी प्रतिभा और प्रत्युत्पन्नमति का समन्वय रूप दिया है। जिससे यह सिद्ध होता है कि कविता के क्षेत्र में भाव एवं कला की दृष्टि से अच्छी पकड़ है। आज के युग में इस तरह की रचनाएँ लिखना श्रमसाध्य है। शब्दकोश की सम्पूर्णता एवं व्याकरणशास्त्र का गहन अध्ययन ही इन रचनाओं की भूमिका है।

विष्णुपिया लक्ष्मी

विष्णुप्रिया लक्ष्मी की स्तुति के प्रसंग में कवि ने 'सिन्धोर्बाला' कविता की रचना की है। कवि ने विष्णुप्रिया लक्ष्मी के पर्व को विद्युन्माला छन्द में बद्ध किया है–

"दीपावल्यां पुंसां चित्तं, कस्मान्न स्याद्धर्षे मग्नम्।
प्रेक्ष्या सर्वैस्तस्यां रात्रौ, सज्जीभूता विद्युन्माला।।"

इस महापर्व पर तो उल्लास और उमंग जन–जीवन में सागर की तरह उछलता है। सर्वत्र दीपमाला की जगमगाहट होती है।

"द्यूते दक्षैः प्राप्तं सर्वं, धूर्तैरक्षैर्नष्टं सर्वम्।
हेया सर्वैस्तस्यां रात्रौ, सज्जीभूता धोतीशाला।।"

कहीं द्यूत क्रीड़ा, कहीं मदिरा के प्याले, कहीं काम केलि, सभी अनेक विध उपहारों के साथ सुसज्जित होकर ही दीपपंक्ति की श्रद्धा से पूजन करते हैं।

"प्राप्तं वित्तं शान्तं चित्तं, जोषं जोषं दानं दत्तम्।
पूज्या सर्वेस्तस्या रात्रौ, सज्जीभूता सिन्धोर्बाला।।"

कवि ने अर्थप्रधान युग की प्रवृति की ओर संकेत किया है। वित्त प्राप्त होते ही चित्त शान्त हो जाता है। आज सभी अर्थातुर है, अतः सभी इस उष्मा से विरहित नहीं हो सकते है।

भगवान श्रीराम

कवि ने राम रूप को सम्पूर्ण तत्त्वों का सार बतलाया है। हिन्दी भाषा में एक भजन को साधारणतया भक्तजन गाते सुने जाते है– **'सीताराम सीताराम सीताराम कहिये, जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये'** इस भजन को इसी रूप में संस्कृत भाषा में उपनिबद्ध 'रामरस पिब रे' रचना कविप्रतिभा की असामान्यता को प्रकट करती है।

"सीताराम! सीताराम् सीताराम् वद् रे।
रामो रक्षेद् यथाविधि, तथाविधि वस रे।।"

कवि कहता है कि प्राणी! राम का नाम लो यही सुख का सार है। कर्मशील होकर जीना धर्म है किन्तु सब कुछ मानव के हाथ में नहीं है। मानव सक्रिय है किन्तु निमित्त मात्र है।

"मुखे भूयाद् रामनाम, रामसेवा हस्तके।
त्वमेकलो नैव बन्धो!, रामहस्तौ मस्तके।।"

कवि कहता है कि मानव जीवन में सुख–दुःख, लाभ–हानि सभी विधि के विधान है। अतः मनुष्यों को न तो लाभ में हर्षित होना चाहिए और न तो हानि में दुःखी। फल तो ईश्वराधीन है वह जिस स्थिति में रचना चाहेगा। उसी स्थिति में रहना होगा।

"विधिसंविधानजात–हानिलाभौ सह रे।
रामो रक्षेद् यथाविधि, तथाविधि वस रे।।"

कवि ने कहा है कि सभी प्राणियों को अपने कार्यों का परित्याग करके भगवान श्रीराम् की भक्ति में लगे रहना चाहिए। रघुवर ही सभी प्रकार के कष्टों को दूर करने वाले है।

'साधुसंगे रामरंगे, अंगमंग! रज्य रे।
कामरसं त्यज बन्धो! रामरस पिब रे।।'

3.2.2 प्रकृति

डॉ. पाण्डेय ने 'प्रकृति' नामक पद्य भाग में प्रकृति का मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है। इसमें भी कवि की भक्ति भावना व स्वाभाविक प्रकृति–प्रेम–परिलक्षित होता है। गङ्गा का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि भगवान् विष्णु के पादाङ्गुष्ठ से गङ्गा का आविर्भाव होने की सम्पूर्ण कथा है। कवि में गङ्गा की सातिशय पवित्रता को प्रदर्शित किया है–

'विष्णुपादप्रभूता या शिवशिरोविधारिता।
अमृतसदृशक्षीरा लोके गङ्गा विराजते।।'

कवि ने वसन्त ऋतु के प्रति भी अपने प्रेम को प्रदर्शित किया है। नैषधकार ने लिखा है–

'अहो शिशुत्वं तव नैव खण्डितं स्मरस्य सख्या वयसा प्यनेन।

इसी प्रकार युवावस्था की ओर पद विन्यास रखता हुआ रचनाकार अभी 'कुछ–कुछ हो रहा है' इतना ही अनुभव हुआ वसन्त वर्णन में मनोज्ञ वृक्षों के विकास को देखकर आल्हादित हो रहा है। पवन युवकों के श्रम को हरने वाली है। वासन्ती हवा सभी के मन को हरने वाली है। कोयल का मधुर स्वर चित्त को सुन्दर लगता है। अतः ऋतुराज वसन्त समुपासनीय है।

'विकासमाप्तास्तरवो मनोज्ञा, हरन्ति यूनां पवनैः श्रमत्वम्।
रूतं मनोहारि च कोकिलानां, नृपो वसन्तः समुपासनीयः।।'

कवि ने विहङ्गवीथी का भी मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है। सन्ध्याकाल का समय अत्यधिक रमणीय होता है। सन्ध्या होते ही पक्षी अपने घोंसलों में लौटने लगते हैं। अनेक प्रकार के वृक्षों में आसीन अपने नीडों से चञ्चुभाग को बाहर निकालते हुए कर्णप्रिय कलरव करते है।

"विभाति सन्ध्यासमये मनोज्ञा, स्वनीडनिष्कासितचञ्चुभागा।
विचित्रवृक्षेषु विहङ्गवीथी, कलानि कान्तानि करोति या च।।"

डॉ. पाण्डेय की साहित्यिक यात्रा का आरम्भ 'पुष्कर' शब्द से हुआ है। यह इनकी सर्वप्रथम रचना है। 'पुष्कर' शब्द के अनेक अर्थ है–तीर्थराज पुष्कर, कमल, हाथी की सूड का अग्रभाग एवं विहग।

'पुष्करे पुष्करं जातं त्रोटितं पुष्करेण तत्।
पुष्करे केन सङ्कीर्ण पुष्करेण पुनर्हृतम्।।'

डॉ. पाण्डेय ने कलहंस रात्रि व पद्मजश्री आदि के वर्णन में भी प्रकृति का मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है। कवि ने पद्मजश्री में कहा है जिस प्रकार महाकवि माघ के काव्य में ललित अनुभूति होती है और प्रत्येक पद की शोभा श्लोक से उत्पन्न होती है। उस प्रकार वसन्त काल की अनुभूति अनुपम, अवर्णनीय होती है।

"माघस्य काव्ये ललितेऽनुभूता,
पदे पदे पद्यजकान्तलक्ष्मीः।
वसन्तकाले ललितेऽनुभूता,
पदे पदे पद्यजकान्तलक्ष्मीः।।"

हिमालय

'हिमालय' कविता में कवि ने हिमालय की महानता व अपने श्रद्धा भाव को व्यक्त किया है। इसमें कवि ने हिमालय पर्वत का प्राकृतिक वर्णन करते हुए अलंकृति की छवि छितराई है।

'बुधालयो यो विबुधालयो यः,
सुरालयो यः श्वसुरालयो यः।
वरालयो यो विवरालयो यो,
हिमालयो यो महिमलयौऽसौ।।'

इस कविता में हिमालय की प्राकृतिक सुषमा का मनोरम चित्रण किया है। इसमें कवि का पाण्डित्य प्रदर्शन होते हुए भी प्रसाद गुण के कारण चमत्कृति भी है तो हृदयग्राही सहज सरलता भी है।

'वनालयो यः पवनालयो यो,
जनालयो यो विजनालयो यः।
भवालयो यो विभवलयो यो,
हिमालयो यो महिमालयोऽसो।।'

इसमें हिमालयों, विबुधालयो, श्वसुरालयो, पवनालयो, विजनालयों आदि की श्रृंखला दर्शनीय है। कवि का शब्द ज्ञान और यमक की छटा भी अनुपम है।

मधुमास

'मधुमास' कविता में डॉ. पाण्डेय ने प्रकृति की विपरितता का चित्रण किया है। वसन्त ऋतु में भी पेड़ों पर न पत्ते है, न पुष्प। सारे पुष्प वसन्त में भी कहाँ चले गए।

'कीदृशोऽयं मधुमासः?
न पल्लवितः पलाशः
नास्ति पुष्पेषु सुवासः
मन्ये वसन्त–प्रवासः
कीदृशोऽयं मधुमासः?।'

कौतूहलं तनुते

कवि वर्षाकाल में चमकने वाली विद्युत का वर्णन करते हुए कहा है कि विद्युत प्रकट होकर सभी जगह फैल जाती है। कवि ने विद्युत की कान्ति को सुन्दर कामिनी के समान बताया है।

"कौतूहलं तनूते घनान्धकारे
घनश्यामकषाकृष्टा
साकं प्रसरन्ती दृष्टा
कौतूहलं तनुते घनान्धकारे
कनककान्तिः किं कामिनी?
नहि नहि सा सौदामिनी!"

3.3.3 कालिदासीयम्

संस्कृत वाङ्मय में कालिदास का नाम अनन्वय है। कवि कालिदास श्रृंगार के कवि है, प्रकृति चित्रण में मनोविश्लेषण उनकी विशेषता है। उनकी उपमा सर्वोत्कृष्ट है। यथा–

'उपमा कालिदासस्य'

महाकवि कालिदास की कृतियों में भावाभिव्यञ्जना विलक्षण है, तो भाषा की प्रासादिकता सम्मोहित किये बिना नहीं रहती है। डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्' में कालिदास के काव्य–सौष्ठव एवं भावप्रवणता पर कुछ कविताएँ लिखी है।

कालिदासः शिरोमणिः

कालिदास की कला का विकास प्रकृति चित्रण से प्रारम्भ होता है। उनकी यह रूचि उत्तरोत्तर परिमार्जित होती गई। मानवीय अन्तर्द्वन्द्व का चित्तेरा यह कवि किसको प्रिय नहीं है? विश्वजनीन साहित्यिक चेतना इन्हें विश्व कवि के रूप में स्वीकारती है। डॉ. पाण्डेय ने भी कवियों में शीर्षस्थान महाकवि कालिदास को देते हुए 'कालिदासः शिरोमणिः' शीर्षक कविता के माध्यम से अपनी भावाञ्जलि समर्पित करते हुए कहा है–

"वाणीविलाससंसारे प्रदीप्तकवितारके।
चन्द्र इव यशो लेभे कालिदासो महाकवि।।"

कवि ने चन्द्र से उपमित करते हुए उनकी काव्य–कला से सम्बन्धित वैशिष्ट्य के सन्दर्भ में कहा है–

'कालिदासस्य काव्येषु सदोपमार्थगौरवम्।
सत्पदानाञ्च लालित्यं त्रिवेणीसङ्गमो यथा।।'

महाकवि कालिदास ने उपमा दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास एवं अप्रस्तुतप्रशंसा आदि अलंकारों के माध्यम से सौन्दर्य बोध में चमत्कृति दी है। डॉ. पाण्डेय ने उनके काव्य इस प्रकार बताए हैं–

'शाकुन्तलं सलालित्यं मेघदूतं मनोहरम्।
रघुवंशं यशोवंशं तुर्यं कुमारसम्भवम्।।'

इसके अतिरिक्त 'ऋतुसंहार, विक्रमोर्वशीयम् एवं मालविकाग्निमित्रम्' भी कालिदास की सशक्त रचनाएँ है। कवि ने कृतियों के सन्दर्भ में यह श्लोक लिखकर 'गागर में सागर' भरने का यत्न किया है–

'नवरस–परिपूर्णं शब्दवाच्यप्रतीतं,
स्वकृतिषु कमनीयं काव्यकेलिप्रकर्षम्।
ध्वनयति सकलं यो भारतीभासमानः,
कविकुलगुरुवर्य्यः कालिदासो गुरुर्मे।।'

'दूतश्च को भविता'

कविता में मेघदूतम् की ओर कटाक्ष है। कालिदास का यक्ष 'आषाढस्य प्रथमदिवसेमेघ–माश्लिष्टसानुम्' की ओर इङ्गित कर मेघ को दूत बनाकर अपनी प्रियतमा तक संदेश पहुँचाता है। कवि ने इस कविता में प्रकृति के विधान की वैपरीत्य स्थिति की ओर संकेत कर अनावृष्टि का चित्रण

कर 'दूत' को लताशने की बात कही है। कौन विरहिणी किसे दूत बनाकर अपना संदेश भेज सकती है, क्योंकि श्रावण मास में भी चातक अपनी पिपासा से व्याकुल आकाश की ओर देखता रहता है–

'श्रावणस्य प्रथमदिनं
कालिदासस्य यक्षः
आषाढे तु का कथा?
श्रावणेऽपि चातकायते
मेघदर्शनं विना।
.....
तर्हि कश्चित् कुत्र प्रेषयेत्
सम्प्रति सन्देशम्?
दूतश्च को भविता?'

कवि ने चेतन और अचेतन की स्थिति का विश्लेषण करते हुए कहा है–जब चेतन ही निराश हो, संतप्त जीवन जीने को विवश है तो अचेतन पर कैसे विश्वास किया जा सकता है।

हले शकुन्तले

'हले शकुन्तले' कविता में कवि ने प्रियतमा शकुन्तला के लावण्य का चित्रण करते हुए नायक की मनोव्यथा का विश्लेषण किया है। 'अपरः परः, अधरः धरः' का प्रयोग कर विरोधाभास की स्थिति को कहा है–

'अपरः परः किं दासः?
अधरः धरः किं न्यासः?
न यदा तदा किं व्रीडा
प्रकरोतु कामं क्रीडाः?
कामं कम्पितकुण्डले! हले शकुन्तले!
आयाहि आयाहिं, पाहि माम्।
त्राहि माम्, पाहि माम्।'

विरह–वेदना में संतप्त नायक जीवन रक्षा के लिए आह्वान कर रहा है।

शकुन्तलाप्रयाणम्

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के चतुर्थाङ्कः में महर्षि कण्व अपनी तनया शकुन्तला को ससुराल के लिए विदा कर रहे है। उस समग्र अंक को अति सहजता के साथ कुछ ही श्लोकों में प्रस्तुत किया है। कालिदास के–

'दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।

अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव।।'

इस भाव को डॉ. पाण्डेय ने इस रूप में प्रस्तुत किया है।

'दुष्यन्ताऽऽचरितं ज्ञातं कण्वेनाकाशभाषया।

मता सच्छिष्यसंदत्ता विद्येव सा शकुन्तला।।'

'शकुन्तलाप्रयाणम्' कविता में नौ अनुष्टुप् छन्द है। इस कविता के माध्यम से कवि ने समाज की यथार्थ स्थिति का परिचय दिया है।

'शार्ङ्गरवादयः शिष्या अनुसूया–प्रियंवदे।

करुणाविह्वलाः सर्वे प्रिया सखी हि गच्छति।।'

कवि ने बताया हे कि मनुष्य का अपनी पुत्री की विदाई का समय अत्यन्त करुण होता है। इस समय वह भावविह्वल होकर व्यथित हो जाते हैं।

परकीयं धनम्

कविता में डॉ. पाण्डेय ने सम–सामयिक नारी–उत्पीड़न की ओर संकेत करते हुए गृहस्थ के ममत्व की पीड़ा को शब्द दिये हैं–

'तत्पुनः
गृहस्थः/सामाजिक प्राणी
परकीयं किन्तु ममत्वेन नैजं
यौतुकयातुधानैर्विहित दुर्दशं तद्धनं
विलोक्य तादृशं दुःखमनुभवति
यस्यानुमानं तु ज्ञान कण्वोऽपि
कर्तुं नैव पारयति स्म,
परन्तु सावधानमनसो भवन्तु ते
ममत्वप्रदातृ परकीयं धनं
यदा कदाचित्तु
धारयिष्यन्त्येव।'

इन कविताओं में सामाजिक विसंगतियों के साथ मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रतिष्ठापित किया गया है। कालिदास ने कन्या के लिए– **'अर्थो हि कन्या परकीय एव'** कहा है। डॉ. पाण्डेय ने इस भाव को साम्प्रतिक विसंगतियों की ओर अभिव्यक्ति दी है। कवि ने कहा है कि दहेज रूपी कुप्रथा से

स्त्रियों की दुर्दशा हो रही है। अतः सभी को अपने कन्यारूपी धन को अत्यन्त सावधानी व सोचविचार के बाद ही परकीय धन रूप में प्रदान करें।

3.2.4 राष्ट्रीयम्

कवि पाण्डित्य प्रदर्शन, प्रकृति चित्रण एवं कवि–वैशिष्ट्य तक ही सीमित नहीं है। डॉ. पाण्डेय ने 'राष्ट्रियम्' में छह कविताएँ राष्ट्रवाद से ओतप्रोत है। प्रत्येक मानव का अपने राष्ट्र के प्रति भक्ति ही प्रथम धर्म है।

बारहठसिंहत्रयी

भारतीय स्वतन्त्रता के संघर्ष के साथ राष्ट्रिय विचारधारा के प्रति गौरव प्रदर्शित करते हुए डॉ. पाण्डेय ने 'बारहठसिंहत्रयी' शीर्षक से तीन राष्ट्रिय व्यक्तित्व तथा बलिदान की गरिमा को गंधायित किया है।

'राजस्थली–देवपुराभिधाने
ग्रामे श्रुते बारहठान्ववाये।
सिंहत्रयी याऽऽप्तवती प्रसूतिं
स्वतन्त्र्यसंग्रामपुरोहिता सा।।'

श्री केसरी सिंह बारहठ के राष्ट्रप्रेम पर लिखे ग्यारह श्लोक स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास के वे पृष्ठ है। जिन पर राजस्थानी ही नहीं अपितु प्रत्येक भारतीय का मस्तक गर्व करेगा।

'आंग्लाधिराजस्य महं प्रयाते
राणाफतेहाय निजान्वयस्य।
चित्तावनी–सूक्तिचयेन–बोधं
श्री केसरी दिव्यमदात् कवीन्द्रः।।'

दिनांक 1 जनवरी सन् 1903 में लार्ड कर्जन के राज दरबार में भाग लेने के लिए मेवाड़ के महाराणा फतेह सिंह जब दिल्ली के लिये रवाना हुए तो केसरी सिंह बारहठ के 'चेतावनी के चूटिये' से प्रभावित होकर वे दरबार में भाग लिये बिना ही उदयपुर लौट आये।

गणतन्त्रात्मकं राज्यम्

कविता में डॉ. पाण्डेय ने स्वतन्त्रता संग्राम और 'भारत गणराज्य' के लिए विनम्र श्रद्धा अर्पित की है। कवि ने इसमें राष्ट्रभक्तों व क्रान्तिकारियों के बारे में बताया है। सभी के प्रयासों से देश स्वाधीन हुआ।

'भारतं नाम देशोऽयं

ख्यात आसीच्च वर्तते।

बहवोऽत्र नृपा राज्यं

चक्रुर्नीतिपरायणाः।।'

गाँधी आदि महानुभवों ने सत्य अंहिसा के मार्ग पर चलकर शान्ति से स्वाधीनता प्राप्त की और पाश्चात्यों को पराजित किया। डॉ. पाण्डेय ने संवैधानिक सत्ता पर अपने शब्द प्रस्तुत किये हैं–

"पाश्चात्यशासने तस्मिन्

दूरीभूते च भारतात्।

गणतन्त्रात्मकं राज्यं

स्थापितं नीतिकोविदैः।।"

डॉ. पाण्डेय ने कविता में श्री सुभाषचन्द्र बोस एवं महात्मागांधी के आन्दोलन एवं संघर्ष की कथा की ओर दिग्दर्शन कराया है।

भारतं नाम स्वतन्त्रम्

कविता में कवि ने स्वतन्त्र भारत में राजनैतिक भ्रष्टाचार ने आम आदमी तक कदाचरण को जन्म देकर स्वातन्त्रय अर्थ को भी बदनाम कर दिया है।

'पठ्यते नित्यं समाचारः सर्वत्रैव भ्रष्टाचारः

जायते परस्परमाक्षेपः कथं भवेद् वै प्रत्याक्षेपः।

एतादृक् किं लोकतन्त्रम्। भारतं नाम स्वतन्त्रम्।।'

कवि ने भ्रष्टाचार की निर्भिकता से बात कही है।

कुटिला हि पाकाः

कविता में डॉ. पाण्डेय ने अपने पड़ौसी राष्ट्र पाकिस्तान की कुटिल नीति एवं विध्वंसकारी कार्यों की निन्दा करते हुए राष्ट्र प्रेम पर गर्व किया है। काश्मीर भारत का अभिन्न अंग है तथा राष्ट्र का किरीट है।

'मन्मातृभूमेर्ललितं ललाटं

काश्मीरभूकेसरचूर्णरम्यम्।

तद्भूतिचौरा रिपुचारमुख्याः

सीमाप्रविष्टाः कुटिला हि पाकाः।।'

शारदा–देश भारतीयों की संस्कृति और साहित्य का सारस्वत केन्द्र रहा है। इस भूमि के कण–कण में संस्कृत विद्वानों की कविताएँ बिखरी हुई है। इस भूमि के प्रति पाकिस्तान की दूषित वृत्ति निंदनीय है–

'श्रीशारदादेशजकोविदानां
शास्त्रीयचर्चा शिवशक्तिसक्ताम्।
तां छेत्तुकामा यवना निकृष्टाः
सीमाप्रविष्टाः कुटिला हि पाकाः।।'

विधेहि राष्ट्ररक्षणम्

यह कविता एक आह्वान गीत है। जो भारतीय सैनिक के आत्मसम्मान का प्रतीक है। राष्ट्र रक्षकों के अपूर्व शौर्य तथा दृढ़ संकल्प शक्ति का परिचय है। कवि इन्हीं के प्रति निष्ठा व्यक्त करता हुआ संकल्प को दुहराता है–

'मातृभूमिवन्दनं मदेकधर्मसंश्रुतम्
आत्मराष्टरक्षणम् त्वदेककर्मसङ्गतम्।
राष्ट्ररक्षणे क्षमा समस्तलोकबोधिका
धर्मकर्मपावना लसेन्मनः सु भावना।।
प्रचण्डशूरवीर हे! विधेहि राष्ट्ररक्षणम्।'

स्वतन्त्रता

कविता स्वतन्त्रता को समर्पित है जो प्रत्येक राष्ट्रवादी का अहं है। स्वराज जीवन का अधिकार है। प्रत्येक भारतीय स्वतन्त्रता का प्रेमी है। इसी भाव की सौरभ बिखेरते हुए कहा गया है–

'राष्ट्रियं सकललोकविश्रुतं
गौरवं भुवि यया प्रतन्यते।
मानवाश्च मुदिताननाः सदा
शोभते जगति सा स्वतन्त्रता।।'

स्वतन्त्रता सभी मनुष्यों का अधिकार है। स्वतन्त्रता गौरव है मनुष्यों की स्वतन्त्रता से शोभित है।

3.2.5 किं चतुष्कम्

'किं चतुष्कम्?' खण्ड में चार कविताएँ है। इन कविताओं में सम–सामयिक बिन्दुओं का स्पर्श किया गया है। नारी उत्पीड़न की वेदनाओं से व्यथित कवि ने समाज से प्रश्न किये हैं, जो अनुत्तरित है। डॉ. पाण्डेय ने स्त्री दुर्दशा पर जो व्यंग्य किये है। वह समाज के लिए प्रश्न है। कवि ने नारी की स्थिति को दयनीय बताया है।

किं नामधेयं यौतकम्

कविता में डॉ. पाण्डेय ने दहेज के प्रति कटाक्ष किया है। जो अत्यन्त सटीक है। दहेज जो कुप्रथा उसने स्त्री की दशा को दयनीय कर दिया। इस कुप्रथा से व्यथित समाज का सन्तुलन बिगड़ गया है।

'लज्जाभरणभूषिता, प्रसन्ना भवेद् भूषिता।
गुरुशुश्रूषाऽऽचरणा, कान्तानुसारिचरणा।
एवं गुणगणग्रथिता नास्ति चेत्
व्यर्थं ते सयौतकं यौवतम्।
किं नामधेयं यौतकम्?'

इसमें कवि ने नारी उत्पीड़न की वेदनाओं को बताया है। उसने समाज से प्रश्न किया है? नारी की स्थिति असहनीय एवं चिन्ताजनक है।

कोऽयं तस्या अपराध

डॉ. पाण्डेय ने कहा है कि ग्राम से नगर तक नारी के प्रति जो आदर्श और सम्मान होना चाहिए, वह उसे सुलभ नहीं है। पुत्र देने वाली नारी का सम्मान है और कन्या संतान वाली का अपमान।

'कोऽयं तस्या अपराधः?
पुत्रं यदि सा न सूते, बालिकाततिञ्च तनुते।
भाग्याधीना किं कुरुते तदपि सापराधां मनुषे।।
तदा व्यर्थ तवाक्षेपः, मार्गों नियतेरबाधः।
कोऽयं तस्या अपराधः?'

यह विसंगति समाज के लिए कोढ है। सभ्य समाज भी इस कदाचरण से अछूता नहीं है। कवि ने नारी–सम्मान के प्रश्न का स्पर्श कर इस वेदना को गम्भीरता से लिया है। नारी को अपराधिनी कहना प्रमाणिक आयाम है।

आक्षेपः कस्मिन्

कविता में साधारण आदमी के अन्तर्द्वन्द्व को परिभाषित किया है। यह कविता संस्कृत साहित्य में नव–कविता के रूप में प्रतिष्ठापित होगी। किसे बुरा कहे या किस पर आरोप मढ़े? इस भाव को चित्रात्मक रूप में कहा है–

'.....विवशः सः,
गृहे पत्न्याः परिभाषणापेक्षया
अधिकारिणः प्रलापं श्रोतुम्।
.....
पश्यति गृहदर्पणे, यत्र विलोक्यते
विलपन् पृथुकः, दुग्धबिन्दुप्राप्त्यै।
.....
न कदाचिदापि मिलति
निजस्य नियतकर्मणः।
आक्षेपः कस्मिन्
कार्यालये?
अथवा पृथुके?'

व्यक्ति की वैयक्तिकता तथा संत्रासित परिस्थितियों में यायावरी जिन्दगी जीने की एक सीमा होती है। आज का आम आदमी आर्थिक लब्धियों के लिए कुण्ठित जीवन जीने को विवश है। कवि की आम आदमी तक पहुँच है। साम्प्रतिक व्यष्टिवाद की अन्तर्वेदना का प्रभाव इस कविता पर परिलक्षित हो रहा है। अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति किये गृहस्थ का सम्मान भी शेष नहीं रह पाता है।

रामं विना का गति

कविता जीवन सीमा के जीवन्त प्रश्नों का समाधान है। डॉ. पाण्डेय ने इस कविता के माध्यम से कहा है कि राम के बिना कुछ नहीं हो सकता। संसार में प्रभू राम ही हमारी जीवन रूपी नौका

को पार लगा सकते है। कवि कहता है जब कभी हम विचलित होवें, दुःखी होवें। हमें प्रभु राम का ही स्मरण करना चाहिए।

'विस्मृतं कदाचिन्नाम?
निःसृतं मुखाद् हे राम!?
वृथैव यापितं जीवनं
पुनर्न मिलेज् जीवनम्
एवमेव भविता हतिः, तन्नूनं विधेया मतिः।
रामं विना का गतिः?।।'

कवि ने एकमात्र राम की भक्ति को परमगति बताया है। मनुष्यों को हमेशा राम की भक्ति करनी चाहिए। उन्हें कभी नहीं भूलना चाहिए। तभी मनुष्यों की सद्गति होगी।

3.2.6 संस्कृतम्

'संस्कृतम्' खण्ड में केवल दो कविताएँ है। जो संस्कृत के सारस्वत–सौरभ को सभी तक पहुँचाने में समर्थ है। संस्कृत की साम्प्रतिक स्थिति पर कवि चिन्तित है।

दुरवस्था संस्कृतस्य

कवि संस्कृत भाषा की दुर्दशा पर चिन्तित है। कवि ने संस्कृत भाषा की स्थिति पर अपनी असह्य पीड़ा को व्यक्त की है–

'स्मरणचरणयाताः प्रेक्षकाणां विमर्शः
न किमपि लिखितुं ते शक्नुवन्तीति सत्यम्।
बुधजनगणमध्ये धार्यते तैस्तु मौनं
जगति रटितभाषा नैव याति प्रचारम्।।'

आज संस्कृत भाषा की इस दुर्दशा पर संस्कृतज्ञ भी अश्रु बहाने को उत्साहित नहीं है अपितु पाठ–पूजन–अनुष्ठान के माध्यम से जीविका चला रहे है। यह यथार्थ वेदना है। इस विषय पर कवि की चिन्ता को सार्वजनिक बहस का स्थान मिले और सुधारात्मक दिशा की तलाश हो।

सुरभारती

'सुरभारती' कविता में डॉ. पाण्डेय ने गीर्वाणवाणी की गरिमा के माहात्म्य को बताया गया है। यह भारती देश में ही नहीं अपितु विश्व में मानव संदेश प्रसारित करने में सक्षम है।

'आतङ्कवादनाशाय विश्वे सर्वैः प्रयत्यते।

शक्ता तत्सफलीकर्तुं भारते सुरभारती।।'

यह धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रियता, सत्य, अहिंसा, सम्पूर्णता, जातिवाद, तुच्छता–समाप्ति, सदाचार, दहेज उन्मूलन एवं आतंकवाद खण्डन की समर्थक है तथा इसके माध्यम से राष्ट्र को उन्नत बनाया जा सकता है।

3.2.7 मौक्तिकम्

'मौक्तिकम्' शीर्षक से इस भाग में 16 कविताएँ है। त्रिवेणीसङ्गम्ः मेघे माघे गतं वयः, वेदविस्तारको व्यासः, विश्वासः फलदायकः, नित्यां ग्राह्या सत्या शिक्षा, अन्तरालः, उदरस्य कृते, लोभस्य फलमेव मृत्युः, स्वागतं–गीतिका, होलिका रे सखे! गच्छ रे गच्छ, शङ्कराचार्याः, थकारश्रीः, समस्या एवं मौक्तिकम् शीर्षक से है। ये कविताएँ विविध विषयों पर आधारित है।

त्रिवेणीसङ्गमः

'त्रिवेणीसंगमः' कविता में डॉ. पाण्डेय ने गंगा, यमुना एवं सरस्वती के संगम की तरह कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थान्तरन्यास एवं दण्डी के पदलालित्य को बताया है।

'वेदविदां वैदुष्यं
काव्यकोविदानां कला
सहृदयानाञ्च सारल्यं
यत्र समवेतरूपेण समवलोक्यते,
सोऽपि संघोष्यते त्रिवेणीसंगमः पुण्यमहोत्सवः!!!'

उसी प्रकार वैदिकों का वैदुष्य, कवियों की काव्यकला और सहृदय–हृदयों की सरलता का संगम है।

मेघे माघे गतं वयः

कविता में भाषा की प्रौढ़ता तथा उन्नयन के संदर्भ में कवि ने कहा है–

'जातो ज्ञानातिशयः
अतीव भाषायां रयः।
नवनवोन्मेषा प्रज्ञा
श्लाघन्ते यस्मै विज्ञाः।

अयमेव तस्योन्नयः।

मेघे माघे गतं वयः।।'

वेदविस्तारको व्यासः

कविता में डॉ. पाण्डेय ने कृष्णद्वैपायन की पौराणिक सर्जन के प्रति निष्ठा व्यक्त की गई है।

'सकलं दिव्यं भासते

सकलं ज्ञानं कासते

किं नामास्ति तत्साहित्यं

राधाकृष्णसत्साहित्यं

भागवते कृष्णरासः

वेदविस्तारको व्यासः'

विश्वासः फलदायक

कविता नव कविता के रूप में है। कवि ने राम के साथ वन में विचरण करती हुई, रावण द्वारा अपहृत सीता की मनोदशा का वर्णन करते हुए अन्त में हनुमान का अशोकवाटिका में सीता से साक्षात्कार का मर्मस्पशीं चित्रण कर सिद्ध किया है कि विश्वास फलदायक होता है।

'अशोकवाटिकायामपि

शोकवापिकायां मज्जोन्मज्जनशीला

जीवनाकाङ्क्षिणी मीना इव दीना, हीना

भीता सीता, याचते कमपि किमपि।

साफल्यं साहाय्यञ्चाधिगतम्

'विश्वासः फलदायकः' इति

हनुमद्दर्शनं जायते।

नित्यं ग्राह्या सत्या शिक्षा

कविता में कवि ने पाण्डित्य को प्रदशित कर सिद्ध कर दिया है कि अलंकारों की सृष्टि से चमत्कृति को जन्म देने की प्रतिभा है। इसमें कवि ने यमक अलंकार का प्रयोग किया है।

'काऽलङ्कारे सा लङ्का रे!

का सीता रे! काशी तारे।

का सारा मा रामारामा

सा का रामा साकार मा।।'

अन्तराल

कविता में लक्ष्मी की प्रकृति का चित्रण किया गया है। लक्ष्मी स्वभाव से चञ्चल होती है। वह दरिद्रों को देखकर प्रसन्न होती है और उनके भाग्य पर हँसती है। कवि धनी और गरीब के बीच बढ़ती खाई को चिन्हित करता हुआ कहता है–

'धनिकानामन्धकारपूर्णेषु तलगृहेषु संस्थाय,

धनिकतादरिद्रतान्तरालं गभीरीकरोति।'

उदरस्य कृते

कविता में आजीविका के कारण व्यक्ति अपने–आपको यायावर बना लेता है। केवल उदर के लिए बिना मन के भी नीरस जीवन जीने को बाध्य हो जाता है। यह वैयक्तिक अनुभूति भी आम आदमी की मनः स्थिति है।

'चिरपरिचितं सुखमयं सुन्दरञ्च

विस्तृतं संसारे

तथा प्रेमपूरितं परिवारं

परित्यज्य

विवशोऽसौ

समागच्छति अज्ञातस्थानं प्रति।

केवलम् आजीविकायाः कृते! आजीविकायाः कृते!!'

यह कविता एकाकीपन के कष्ट को दर्शाती है। पेट के लिये मनुष्य अपनों को छोड़कर विवश होकर प्रवास करता है।

लोभस्य फलमेव मृत्यु

कवि ने हितोपदेश की 'अतिलोभो न कर्त्तव्यः' कथा को पद्यरूप में निबद्ध कर अपनी काव्य शक्ति का परिचय दिया है।

'अतिलोभो न कर्तव्य इत्युक्तं नीतिकोविदैः।

अतिलोभपरो मृत्युं गच्छति जम्बुकोपमम्।।'

प्राचीन कथा को काव्यरूप में निबद्ध कर प्रसादगुणोपेत इस कविता के माध्यम से कवि ने पाठकों को सन्देश दिया कि अति लोभ नहीं करना चाहिए। कहा भी है– 'लोभः पापस्य कारणम्'।

'स्वागत गीतिका'–'स्वागतगीतिः'

यह दो कविताएँ है। जिनमें हृदय के समर्पण की सौरभ है।

'गायं गायं सर्वे फुल्ला धन्या भूमिर्धन्या मेला।
भूयो भूयो योज्या खेला वारं वारं पुण्या वेला।।'
आगतानां स्वागतं प्रतिपलं कुर्मः स्वागतं कुर्मः।

यह गीति वाद्ययन्त्रों के साथ गाई जाने वाली एक श्रेष्ठ संस्कृत गीति है।

होलिका रे सखे

कवि भारतीय पर्वों के उल्लास से आह्लादित है। होली के अवसर पर यौवन की उमंग से परिपूर्ण है। पर्व के आनन्दमय महोत्सव का चित्र प्रस्तुत किया है–

'गायिका नायिका गायको नायकः,
लासिका राधिका लासको मोहनः।
बालकाः साधका गोपिकाऽऽराधिका,
नैकरागाम्बुधौ मज्जिता हर्षिताः।।'

कवि ने होलिका महोत्सव का अतीव रमणीय चित्र प्रस्तुत किया है। प्रसाद गुण शैली में सहजता का चित्रण अतीव रमणीय बन गया है।

गच्छ रे! गच्छ क्लान्तकान्त!

कविता में नवीन उद्भावना है। उपालम्भ की स्थिति की पीड़ा की अभिव्यक्ति हुई है। प्रतीक्षा के अन्तराल को सहना एक कठिन तपस्या है। कवि ने प्रीति शब्द की सार्थकता को कहा है–

'स्मृतं साम्प्रतं किं धाम? विस्मृतं तस्याः किं नाम?
जायते नित्यं सपीतिः, कथं तर्हि तप्राऽप्रीतिः।।'

शंकराचार्य

कविता में पुरी के शंकराचार्य के जीवन लक्ष्य की सार्थकता एवं गुणवत्ता को वर्णित करते हुए उनकी स्तुति की है। जो सुधीजन तथा त्यागमय तपोनिष्ठ के प्रति अञ्जलि है। शंकराचार्य जी से हमेशा संस्कृत व संस्कृति की रक्षा तथा राष्ट्र गौरव की वृद्धि की प्रेरणा मिलती है।

'संस्कृत रक्षितं यैस्तु संस्कृतिश्चापि रक्षिता।

राष्ट्रगौरववृद्धयर्थं दत्ता सत्प्रेरणा सदा।।'

थकारश्री

कविता के माध्यम से अन्त्याक्षरी में अनुपलब्ध थकार से प्रारम्भ होने वाली कविता का सर्जन कर कवि ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है।

'थूर्वति मातरं रामः पितुरादेशधारकः।

माता संरक्षिता तेन पितुराज्ञा न लङ्घिता।।'

डॉ. पाण्डेय ने 'थ' शब्द के प्रयोग के साथ गिने–चुने शब्दों को चतुराई के साथ प्रयोग कर अपनी सूझ–बूझ का परिचय दिया है।

समस्या

यह कविता हृदयग्राह्य है। समस्यापूर्ति के क्षेत्र में कविप्रतिभ का चमत्कार देखने योग्य है।

'ललितपादनिवेशमनोरमां,

सरसतासरिता–भरितां सदा।

प्रियसखे कवितावनितां कदा,

सकलया कलया कलयामहे।।'

समस्यापूर्ति की दृष्टि से भी कवि अपनी प्रतिभा का धनी है–

तरलगरलयुक्ता राजते राजनीतिः।।

मौक्तिकम्

'मौक्तिकम्' शीर्षक में नव श्लोक हैं प्रत्येक श्लोक का भाव अपना है। विभिन्न क्षणों की अनुभूतियों को कवि ने साहित्यिक रूप दिया है।

'सभासमागताः सर्वे ये संस्कृतानुरागिणः।

शुभाशीर्वाददातारो ब्रह्मतुल्या भवन्तु ते।।'

3.2.8 गद्य परिचय

काव्य के क्षेत्र में श्री पाण्डेय एक ऐसे हस्ताक्षर है। जिनसे भविष्य में संस्कृत–सर्जन में सशक्त रचना देने में सक्षम होगें। नई पीढ़ी (युवा पीढ़ी) के साथ नई दिशा देते हुए यथार्थवादी स्वर

के प्रति आन्दोलन को जन्म देगें। नये कथ्य नूतन शिल्प अलंकारों के बोझ से रहित शैली को आग्रह देने में सफल होंगे।

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' कविता की अपेक्षा गद्य लिखना साधना है। कविता का क्षेत्र सीमित है जबकि गद्य का क्षेत्र निस्सीम। गद्य में लेखक अपने उद्देश्य को दिशा देने में सफल हो जाता है। गद्य–लेखन में सामासिक शैली का साम्राज्य रहा है। आज गद्य सुरूचिपूर्ण शैली की अपेक्षा करता है। गद्य का क्षेत्र विशद है, विविध विधाएँ है, विभिन्न शैलियाँ है, बन्धन मुक्त है।

कथा

इसमें चार अलग–अलग कथाएँ है। आम्रपाली, आत्मसमर्पणम्, सद्बुद्धिं देहि परिवर्तनम्। डॉ. पाण्डेय ने इन रचनाओं में समासालङ्कार–व्याकरण का संयत प्रयोग किया है। स्थान–स्थान पर व्यंग्य शैली का प्रयोग रचना में चारुता प्रदान करता है।

आम्रपाली

डॉ. पाण्डेय ने 'आम्रपाली' कथा को नयी दिशा दी है। किन्तु उनका कवि उनके साथ है इसलिए उनके सौन्दर्य की इस प्रकार परिकल्पना की है–

'मृगनयना, शुकनासा, दाडिमदशना, पाटलपुष्पपत्राधरा, कालालक–कान्तानना कनककान्तकाया कृशोदरी सा विधातुरपूर्वैवानिर्वचनीय सौन्दर्यवती रचना या किल देवदानवमनांसि हठात् समावर्जयत्।'

आम्रपाली सौन्दर्यश्री तथा वासना की अधिष्ठात्री थी। कवि–लेखन ने नये उपमानों के साथ उसकी छवि का वर्णन किया है–

'निर्निमेषं सर्वैः सभासदिभः समवलोकिता अमलकमलकोमलकमनीयावयवा यौवनभारानम्रा कम्रा रूपरयसारसुन्दरी पुरपुरन्दरी यतिमतिगतिः गतिमती रतिः साक्षात्।'

आम्रपाली नगरवधू होते हुए भी राष्ट्र–सम्पदा थी। इस कथा में सामाजिक दृष्टि और नायिका के व्यक्तित्व को नये प्रतिमान दिये है। जबकि सामान्य दृष्टि में नगरवधू की व्याख्या इस प्रकार की जाती रही है।

'गणभोग्या सा सर्वेषां कृते सहजसुलभा स्यात्।'

राज बिम्बसार के जीवन का आदर्श उदाहरण है कि वाराङ्गना के पुत्र को मौलिक अधिकार देकर नारी की महत्ता को गौरवान्वित किया है।

'नास्ति परिचयप्रस्तुतेरावश्यकता अभयस्त्वं निर्भयत्वात्'

इस कथा की शैली रसिकजनों के हृदय को आनन्दित करने वाली है।

आत्मसमर्पणम्

राष्ट्र की मौलिक समस्या 'आतंकवाद' की मूल प्रवृति और उसे दिशा देने में यह कथा साम्प्रतिक समाधान को प्रस्तुत कर रही है। यह कहना अनचित है कि धर्मान्धता आतंकवाद की जननी है। अनेक व्यक्ति ऐसे भी है, जो धर्म से बढ़कर राष्ट्र और मानवतावाद के पक्षपाती है। पिता अपने ही आत्मज के आचरण से खिन्न होकर कहता है–

'समाश्वसिहि, समाश्वसिहि जाते! अग्रजस्य ते कीदृशी वृत्तिः सञ्जाता, एतेन तु वंशमर्यादैवं विच्छिन्ना, कलकंः समारोपितोऽस्मत्कुलमुखे। एनं प्रति मया कीदृशी महत्याशा मनसि चिन्तिता परं सा सहसैव धूलिसात् कृताऽनेन।'

इस कथा का आधार विश्वजनीन विध्वंस प्रवृत्ति वाले आन्दोलन की ओर है, जो बिना किसी उद्देश्य के हिंसा–पथ पर अग्रसर है। सम्पूर्ण विश्व इस हाहाकार से त्रस्त है, भयभीत है, मृत्यु के क्षणबोध से कांप रहा है। भारत के सीमावर्ती क्षेत्र जम्मू कश्मीर भी इस हिंसा–ताण्डव से संत्रस्त है। इस समस्या का समाधान, लेखक की दृष्टि में है। भटकी हुई युवा पीढ़ी अपने दुराग्रह को छोड़कर आत्मसमर्पण कर राष्ट्र की मुख्यधारा से सम्पृक्त हो। विक्रम आतंकवादियों को दिशा दिखा रहा है–

'तद्गमनानन्तरं विक्रमः कारागारक्षिप्तान् निगडितान् तान् सर्वानपृच्छत् किमर्थ देशद्रोहिणः सञ्जाताः? किं न जानीथो यत्–'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। 'साम्प्रतमपि कुमार्गमेनं विसृज्य सदाचारपथाग्रयायिनो भवत। आतङ्कवादेनोग्रवादेन च राष्ट्रस्य महती हानिर्जायते, देशो विशृखंलितो भवति।'

इस प्रकार की कथाएँ उद्देश्यपरक है। यह भी आवश्यक है कि इन कथाओं में साम्प्रतिक वातावरण को उचित स्थान मिल सके, ऐसा होने पर कांचनसुरभि संयोग हो सकेगा।

सद्बुद्धिं देहि

यह कथा लघु–कथा परम्परा में है। हिन्दी एवं अन्य भाषओं में इस प्रकार की विधा बहुत पहले आ चुकी है। संस्कृत–कथा–साहित्य में इस विधा की आवश्यकता है। कम से कम शब्दों में उद्देश्य देना तथा नये संदेश को आम आदमी तक पहुँचाने के लिए यह सफल प्रयोग कहा जा सकता है।

'न काव्यन्यैषा, जननी जन्मभूमिश्च मदीया। या किल स्वतन्त्रेऽपि भारते सुरक्षिता अपि असुरक्षिता वर्तते। तथा असुरक्षिता अपि सुरक्षिता नैव, एवमेव सुरक्षिष्वपि सुरक्षिता नैव विलोक्यते अथवा असुरक्षितामात्रेव दृश्यते।'

इस लघु कथा में संदेश के साथ अलंकृति की चमत्कृति है। सानुप्रासिक योजना में विरोधाभास की झलक भी है। लेखक का यह प्रयास स्वागत योग्य है।

परिवर्तनम्

यह भी लघु कथा है। घर का मुखिया अपने नवजात शिशु को 'आप्तवाक्य' के द्वारा शिक्षा देता है। उसके जीवन को विकास की राह देता है। किन्तु वही पीढ़ी ऐसे पड़ाव पर खड़ी होकर अपने बुजुर्गों की उपेक्षा करने लगती है। उस स्थिति में परिवर्तन की दिशा जन्म लेती है। इस कथावस्तु को सहजता के साथ लेखक ने उद्देश्यपरक बनाया है।

चरित्रनिबन्ध

'गुरुपादपद्मपूजा, क्रान्तिकारी प्रतापसिंह बारहठः, स्वतन्त्रता सेनानीः सागरमलगोपाः तथा हुतात्मद्वयी' शीर्षक से कुछ ऐसे व्यक्तियों के जीवन तथा उनके त्याग, वैदुष्य एवं उच्चाशयता को दिखाया गया है, जिन पर यह राष्ट्र गर्व कर सकता है। पं. जगदीश शर्मा साहित्याचार्य, जो जयपुर के महाराज संस्कृत महाविद्यालय में साहित्य–विभागाध्यक्ष पद पर रहे तथा उन्होंने साहित्य में न्यायशास्त्र की गुत्थियों को समझाने में अपनी प्रतिभा एवं वैदुष्य का परिचय देकर हजारों विद्याथियों को साहित्य शास्त्र में पारंगत किया। ऐसे वैदुष्य की व्याख्या कहते हुए गुरु के प्रति आत्मिक श्रद्धाञ्जलि प्रदान की है। वह गुरुभक्ति के प्रति श्रद्धास्पद है। पंडित जी के स्वाध्याय के प्रति कहा है–

'पितृपादानां प्रेरणया पण्डितमण्डलीमण्डनानां न्यायनदीष्णनां धर्मशास्त्र–साराणां काव्यकला–कोविदानां वैयाकरणके सारिणां वेदविद्याविशारदानां विख्यातवैदुष्यानां विद्यावीरेश्वराणां श्रीवीरेश्वराणां शास्त्रिणा समक्षं विहितप्रार्थनेनिर्देशानुसारनियतसमयमुपस्थिति सन्तुष्टगुरुभ्यो व्याकरण–न्यायदर्शन–धर्मशास्त्र–ज्योतिष–मीमासांतन्त्रादिशास्त्रेस्वप्रतिहत– गतिकमपूर्वज्ञानमधिगतम्।'

इस जीवन–वृत्त में 'गुरू' शब्द का सटीक विवेचन भाषा–लालित्य के साथ हुआ है। 'स्वातंत्र्यान्दोलनहुतात्मचतुष्टयी' रूप में वर्णित जीवनवृत्त में श्री प्रतापसिंह बारहठ, सागरमलगोपा, नानाभाई खाट तथा कालीबाई के स्वातन्त्र्य प्रेम, राष्ट्रिय निष्ठा और बलिदान की अमरगाथा है। लेखन ने उनके जीवन, संघर्ष, भक्ति एवं त्याग के ऐतिहासिक दस्तावेज प्रस्तुत कर श्रद्धाञ्जलि प्रदान की है। कवि की शैली में सहजता है–

'सैनिकभुशुण्डीसञ्चलनध्वनिना साकमेव भिल्लतल्लजैनादिता रणभेरी, यन्नादमाकर्ण्य घटनास्थलैकत्रीभूताः सहस्त्रशो धनुर्धारिणो विकृतपरिस्थितिमवलोक्य भयभीतान पलायितान् ससैनिकान् राज्याधिकारिणोऽनुसृतवन्तो डूँगरपुर यावत्।'

शहीदों के अपूर्व बलिदान के प्रति प्रणाम करते हुए कहा है–

'देवलोकप्रयातानां तेषामात्मोपशान्तये।
समर्प्यते समाधौ वै भावनाकुसुमाञ्जलि।।'

जीवन वृत्तों में उनके जीवन की मर्मस्पर्शी घटनाओं का उल्लेख करते हुए लेखक ने जिस शैली को स्वीकार किया है। वह सहजता, सानुप्रासिकता एवं प्रसादगुणोपेता की त्रिवेणी है।

3.2.9 रूपक परिचय

लेखक बहु–आयामी व्यक्तित्व है, साहित्यिक विधाओं का ज्ञाता तथा अप्रतिहत गति से लेखनी चलाने में समर्थ है। रूपक के क्षेत्र में रचनाएँ प्रदान कर अपनी लेखकीय प्रतिभा तथा कौशल का परिचय दिया है।

'राष्ट्ररक्षणम् और आदर्शराज्यम्' इन दो रूपकों का सर्जन कर नाट्य शैली में प्रवीणता का परिचय दिया है।

आदर्शराज्यम्

इस रूपक में दो ही दृश्य है। इसमें रूपक की शास्त्रीय परम्परा का निर्वहन हुआ है। आरम्भ में 'शारदा' को प्रणाम कर मंगलाचरण के नियम की पालना की है। सूत्रधार द्वारा प्रस्तावना की प्रस्तुति हुई है। पितृशर्मा भगवती के समक्ष तुष्टि की स्वीकृति करते हैं–

'कल्याणि। कारूण्यकृपाकटाक्षं
विधेहि मातर्जगदम्ब! नित्यम्।
दिव्यं स्वरूपं तव देवि! वीक्ष्य
श्रद्धाविनम्रोऽहमतीव तुष्टः।।'

चन्द्रगुप्त के शासन में पितृशर्मा, व्याडि, विस्तार एवं वररूचि पात्रों के माध्यम से कथानक का विस्तार किया गया है। शास्त्रीय–चर्चा–परिचर्चा के पश्चात् आदर्श राज्य की स्थापना का निर्णय होता है। इस रूपक का उद्देश्य है–

'सत्ता भवेत् सैनिककोषयुक्ता
प्रजा सदा स्याद् धनधान्यपूर्णा।

राजापि धर्माचरणे प्रवृत्तः
आदर्शराज्यम् च तदेव मन्ये।।'

3.3 राष्ट्ररक्षणम् का परिचयात्मक अध्ययन

राजस्थान को वीरों व वीराङ्गनाओं की भूमि कहा जाता है। राजस्थान के वीरों का शौर्य व पराक्रम इतिहास प्रसिद्ध है। 'राष्ट्ररक्षणम्' रूपक का कथानक राजस्थान का ऐतिहासिक पृष्ठ है। इतिहास प्रसिद्ध मेदपाटाधिपति महाराणा प्रताप के जीवनवृत्त की उस साहसिकता का परिचय दिया है जिस पर समस्त राष्ट्र का शिर गौरवान्वित है। महाराणा प्रताप सिंह उदयपुर, मेवाड़ में सिसोदिया राजवंश के राजा थे। उनका नाम इतिहास में वीरता और दृढ़ प्रण के लिए अमर है।

महाराणा प्रताप के जीवन का एकमात्र उद्देश्य था–कुल मर्यादा व राष्ट्ररक्षा। जैसा कि लेखक ने 'राष्ट्ररक्षणम्' में लिखा है कि–

"शरीरे रक्तैकबिन्दुसत्तापर्यन्तं कुलमर्यादास्थापनाय देशरक्षायै स्वतंत्रतां पुनः स्थापयितुं च सततं प्रयतिष्ये। नैव दासतां कदापि अंगीकरिष्ये। प्राणा अपि में गच्छन्तु यथेष्टम्।"

डॉ. पाण्डेय ने ऐतिहासिक कथानक को अपनी ओर से प्रस्तुत कर नाट्य परम्परा की सीमा का निर्वहन करते हुए आज की नाट्यकला से समन्वित किया है। पात्रों के संवाद देशकाल तथा भावाभिव्यक्ति से ओतप्रोत है। नाटककार का कवि भी साथ चल रहा है। 'नेपथ्यगीत' राष्ट्रीय भावना से युक्त है–

"प्रचण्डशूरवीर हे! विधेहि राष्ट्ररक्षणम्।
विधेहि धीरवीर हे! स्वकीयराष्ट्ररक्षणम्।
विधेहि राष्ट्ररक्षणम्।
मातृ–भूमिवन्दनं मदेकधर्मसंश्रुतम्।
आत्मराष्ट्ररक्षणम् त्वदेककर्मसङ्गतम्।।"

बहुत से राजा महाराजाओं ने सम्राट अकबर की अधीनता को स्वीकार किया। अकबर की सेना से मेदपाटाधिपति महाराणा प्रताप कभी भी परतन्त्रता के पाश में नहीं बन्धे। स्वतन्त्रता प्रिय होने पर अरावली पर्वतमाला की गुफाओं, घाटियों और सघन वनों में अपने परिवार के साथ अनेक कष्टों में समय व्यतीत किया, परन्तु धर्मगौरव और देशरक्षा के लिए सदैव तत्पर रहे। इनकी ग्यारह वर्षीय पुत्री चम्पा भी पिता के समान ही राष्ट्रभक्ति की भावना से परिपूर्ण अनेक दुःखों को सहन करती हुई, बहुत दिनों तक भूखे रहकर अपने भ्राता अमरसिंह को भोजन देती है।

एक दिन सन्तान दुःख से असहनीय महाराणा प्रताप अकबर को दासता स्वीकार करने के लिए पत्र लिखने ऐसा जानकर पिता को पाठ पढ़ा कर चम्पा पंचतत्व में विलिन हो जाती है।

चम्पा – नैव नैव कदापि तात। न कदापि दासतां स्वीकरोतु भवान् (पितुर्हस्तं स्वशिरसि संस्थाप्य) तात! शपथो मे शिरसः न दास्तां स्वी.....करो.....तु.....न दासताम्..... (इति कथयन्ती पंचतत्वं गत्ता)।

इतिहास में प्रसिद्ध है कि श्री कन्हैयालाल सेठिया की 'पाथल और पीथल' कविता से प्रेरित होकर महाराणा प्रताप ने अकबर की दासता को स्वीकार नहीं किया परन्तु वास्तव में महाराणा प्रताप की पुत्री चम्पा ने ही दासता स्वीकार नहीं करने की प्रेरणा दी थी।

श्री कन्हैयालाल सेठिया की 'पाथल और पीथल' कविता का भाव केवल चित्रण है–

"अरे घास री रोटी ही जद
वन बिलावड़ो ले भाग्यो।
नान्हों सो अमर्‌यो चीख पड्‌यो
राणा रो सोयो दुःख जाग्यो।।"

अतः प्रो. पाण्डेय ने 'राष्ट्ररक्षणम्' में प्रसंगानुकूल ही भावों व रसों का रूचिर सन्निवेश किया है जो रूपककार की आदर्श नाट्यशास्त्रीय बुद्धि कौशल का परिचायक है। 'राष्ट्ररक्षणम्' में संवाद योजना अत्यन्त मनोरम् है। पात्रों के संवाद में पर्याप्त उत्कृष्टता है, अपने उत्कृष्ट संवादों के माध्यम से पात्र न केवल सामान्य भावों को अपितु मनोगत भावों को भी अभिव्यक्त करने में समर्थ हो सके है। पात्र देशकाल तथा भावाभिव्यक्ति से ओतप्रोत है। जिनके कारण डॉ. पाण्डेय के एकांकी रूपकों का महत्त्व संस्कृत साहित्य में महनीय हो जाता है।

3.4 हंसरक्षणम् का परिचयात्मक अध्ययन

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँच तत्त्वों का आनुपातिक मेल या फिर पृथ्वी से आकाश तक ब्रह्माण्ड में स्थित सभी चराचर, जड़ चेतन पदार्थों में आनुपातिक सामञ्जस्य होना ही पर्यावरण के रूप में जाना जाता है। जब तत्त्वों के मिश्रण सम्बन्धी अनुपात से जल, थल और नभ के पदार्थों/प्राणियों की सत्ता में न्यूनता अथवा अधिकता के कारण विकृति आती है तो पर्यावरण बिगड़ने जैसे हालात उत्पन्न होते है और उनके संरक्षण की आवश्यकता पड़ती है।

आज पृथ्वी पर वानस्पतिक–पर्यावरण का संतुलन बिगड़ने से सर्वाधिक समस्या जल की उपलब्धि में न्यूनता है। जल ही जीवन है। जल के अभाव में वन, वनस्पति एवं हरीतिमा का कम

होना जीव एवं जीवन के लिए घातक सिद्ध होने लगा है। इसलिए सम्पूर्ण विश्व में अभ्यारण्यों का विकास तथा संरक्षण और उनमें निवास करने वाले वन्य जीवों की लुप्त होती जातियों को बचाने के लिए प्रतिवर्ष अरबों रूपये खर्च किये जा रहे हैं।

प्राचीनकाल में जल वन एवं वन्य जीवों के संरक्षण के प्रति जागरुकता तत्कालीन शासकों एवं प्रजा में तुल्य रूप से देखने को मिलती हैं। जहाँ गाय, हरिण, हंस आदि को बचाने के साथ ही वृक्षों तक को काटने से बचाने के लिए राजा दिलीप, महर्षिकण्व शिष्य वैरवानस, महात्मा गौतम बुद्ध तथा वर्तमान काल की अमृता देवी आदि के त्याग, समर्पण और बलिदान की प्रेरणादायक घटनाएँ इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में उल्लिखित हैं।

"जीवस्य जीवनं ज्योतिर्जलमेवास्ति जीवनम्।
जीवनं जीवनं ख्यातं जीवो रक्षेच्च जीवनम्।।"

जल जीवन की ज्योति है अर्थात् जल ही जीवन है और जीवन को पानी कहा गया है। अतः जीव को जीवन अर्थात् पानी और जीव की रक्षा करनी चाहिए।

महात्मा गौतम बुद्ध ने तो समस्त संसार के प्राणियों के दुःखों को दूर करने एवं प्रत्येक जीवात्मा को शान्ति प्राप्ति के लिए आजीवन साधना की।

गौतम बुद्ध द्वारा स्वाभाविक रूप से की गई हंस रक्षा की घटना एक आदर्श प्रस्तुत करती है, इसी से प्रेरित हो रचा गया यह 'हंसरक्षणम्' लघुनाटक जीव–रक्षा के लिए समस्त लोगों का मार्ग प्रशस्त करेगा।

पृष्ठभूमि – सम्पूर्ण संसार में बौद्ध धर्म के प्रवर्तक, करुणा के सागर महात्मा गौतम बुद्ध जो कि शाक्यवंश के गौतम गोत्र में महाराज शुद्धोदन के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। "यह बालक दुर्लभ सिद्धि की प्राप्ति कर 'बुद्ध' (महाज्ञानी) अथवा चक्रवर्ती सम्राट् बनेगा।" इस प्रकार असित मुनि द्वारा भविष्यवाणी करने पर पिता ने उसका नाम 'सिद्धार्थ' रखा बचपन में ही माता महारानी महामाया के स्वर्गवास हो जाने पर उसकी छोटी बहन महारानी प्रजावती ने सात दिन के इस बालक का पालन–पोषण किया।

गुरु 'सर्वमित्र' के पास आठ साल की उम्र में विद्यारम्भ कर बालक सिद्धार्थ सारे वेद, वेदांग, काव्यशास्त्र आदि की शिक्षा के साथ राजनीति और युद्धकला में भी पारंगत हुए, फिर भी कभी शिकार करते समय मौका मिल जाने पर भी जानवरों पर दया दिखाते हुए उन्हें नहीं मारा। एक बार सिद्धार्थ ने निशाना साधने के खेल में भाई देवदत्त के बाण से घायल हंस की रक्षा की।

राजकुमार सिद्धार्थ ने समय–समय पर सांसारिक दुःखों का अनुभव कर उनको दूर करने के लिए अनेक प्रकार के संकल्प किये और अन्त में समाधि के समय प्रज्ञा–दीप जलने पर एक महीने बाद ही वैशाखी पूर्णिमा को ज्ञान के प्रकाश से यथार्थ–दृष्टि प्राप्त कर 'बुद्ध' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

'बुद्ध' ने अपने उपदेश जनसाधारण की भाषा में दिये। उन्होंने कहा कि मनुष्यों को न तो विलासिता में ही रत रहना चाहिए और नाही अपने शरीर को कष्ट देना चाहिए। बल्कि उसे शुद्धतापूर्वक नैतिक जीवन व्यतीत करना चाहिए। उन्होंने सेवा, परोपकार व मानव जाति के कल्याण पर बल दिया।

3.5 वृक्षरक्षणम् का परिचयात्मक अध्ययन

वृक्षों के प्रति मानवीय संवेदना

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश की समष्टीभूत इस सृष्टि के पर्यावरणीय संतुलन में वृक्षों की महती भूमिका है। इसलिए हमारे ऋषि–महर्षियों ने वृक्षों का औषधीय महत्त्व समझते हुए उनके संरक्षण हेतु अनेक धार्मिक, सामाजिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी मान्यताओं की प्रतिष्ठापना की है। विभिन्न देवों ने भी वृक्षों के महत्त्व को प्रख्यापित करने के दृष्टिकोण से उनका संरक्षण किया।

प्रकृतिस्य पदार्थों का संतुलन व सामंजस्य ही जीवन की आधारशिला है। इसके अभाव में प्राणियों की सत्ता असम्भव है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश का संतुलित मिश्रण ही जीव की उत्पत्ति का मूलभूत कारण है। जीवन के इन पाँच तत्त्वों के अन्तःस्थ सन्तुलन की तरह बाह्य संतुलन भी इसकी सत्ता के लिए आवश्यक है।

पर्यावरण से तात्पर्य है कि जीव रक्षा के लिए पृथ्वी, जल, वायु, तेज तथा आकाश पाँचों तत्त्वों का सन्तुलन यथास्थिति बना रहे। इस सन्तुलन के लिए सबसे अधिक महत्त्व वृक्षों को देना होगा क्योंकि वन पृथ्वी के मृदा एवं मरुस्थल के विस्तार को रोकने के साथ–साथ जल के वाष्पीकरण को रोकते हुए वातावरण में आर्द्रता के कारण वर्षा का कारण बनते हैं। इसी प्रकार ये वन वायु के शुद्धीकरण द्वारा ऑक्सीजन, कार्बन–डाई– ऑक्साईड आदि हवाओं का संतुलन रखते हुए सौर मण्डल से आने वाले जीव–हानिकारक विकिरणों के प्रभाव को नियंत्रित करते हैं। इस प्रकार पर्यावरण के संतुलन को बनाये रखने का काम मुख्यतः वृक्षों का है, अतः वृक्ष, उद्यान, उपवन, वन तथा इनमें रहने वाले पशु पक्षियों की रक्षा एवं विकास का दायित्व हमारा प्रमुख धर्म है।

पर्यावरण की पृष्ठभूमि में वृक्षों को हम वैदिककाल से स्वीकारते आये हैं। पर्यावरण की अवधारणा पाश्चात्य देशों में वर्तमान अनुसन्धानों के आधार पर प्रकृति की विकृति को रोकने के लिए बनी है। जबकि भारत इसके लिए अति प्राचीन काल से सचेष्ट है। वैदिककाल से ही हमारे ऋषि मुनियों ने दूरदृष्टि रखते हुए पर्यावरण वैज्ञानिकों की धारणाओं के मूलस्त्रोत के रूप में यज्ञादि की

चिन्तना की तथा प्रकृतिस्थ पदार्थ पृथ्वी, अप्, तेज आदि को पूज्य रूप में स्वीकारा। इसके साथ ही वृक्षों के महत्त्व को स्वीकारते हुए बड़, पीपल, तुलसी, आंवला आदि को पूजनीय माना।

भगवान् कृष्ण स्वयं अपने आपको गीता में 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां' कहते हुए पीपल मानते है तथा वृन्दावन में रहना और कदम्ब पर खेलना उन्हें प्रिय रहा। भगवान् शिव ने देवदारू वृक्ष को पुत्रवत् मानते हुए उसकी सुरक्षा के लिए अपने सेवक कुम्भोदर को सिंहरूप में नियुक्त किया तथा देवी पार्वती स्वयं अपने हाथों से घटों द्वारा उसे सींचा करती थी। यक्षराज धनपति भगवान् कुबेर के यहाँ यक्षपत्नी ने भी कल्पवृक्ष का पुत्र की तरह पालन पोषण किया।

प्राचीन काल में ऋषि मुनि तथा उनकी पत्नियाँ भी पर्यावरण के लिए सावधान रहते थे। ऋषि अगस्त्य पत्नी लोपामुद्रा स्वयं अपने हाथों से वृक्षों का आलबाल (जल सिंचन हेतु बनायी पाल) बनाकर जल सेचन करती थी। आचार्य कण्व को तो वृक्ष अपनी पुत्री शकुन्तला से भी अधिक प्रिय थे–

हला! शकुन्तले तत्रापि तातकण्वस्यात्रवृक्षकाः प्रियतराः।[12]

आचार्य कण्व ही नहीं उनके शिष्य, पुत्री, उसकी सखियाँ आदि सभी आश्रम के पर्यावरण संवर्धन में परायण रहते थे। आश्रम के पालित हरिण पर बाण चलाते हुए राजा दुष्यन्त को भी रोकने का साहस कर बैठता है, वन्य–जीव प्रेमी कण्व–शिष्य वैरवानस–

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्।
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः।।[13]

आचार्य कण्व की पुत्री शकुन्तला पेड़ों को सींचे बिना पानी भी नहीं पीती थी, आभूषण प्रिय होने पर भी वृक्षों के फूल पत्ते नहीं तोड़ती थी तथा कलियाँ आने पर अत्यधिक प्रसन्न होकर उत्सव मनाती थी–

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।[14]

यज्ञादि धार्मिक कृत्यों के सम्पादन में इन देवदारू, कल्पवृक्ष, पीपल, बड़, कदम्ब आदि वृक्षों के साथ शमी वृक्ष ने भी अत्यधिक महत्त्व प्राप्त किया। यज्ञार्थ अग्नि उत्पादन के काम में आने वाले अरणि, मन्था आदि उपकरणों का निर्माण शमीवृक्ष की लकड़ी से ही होता है क्योंकि शमी वृक्ष में अग्नि का मूलस्वरूप 'तेज' अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। राजस्थान राज्य में शमी (खेजड़ी) वृक्ष बहुलता से मिलता है और इसकी सुरक्षा के लिए यहाँ की जनता सजग है। यह सजगता आज से

नहीं अपितु सैंकड़ों वर्षों से जीवित है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है विश्नोई जाति के 363 व्यक्तियों का बलिदान।

विश्नोई जाति का नामकरण उसके बीस और नौ (अर्थात् उनतीस) धार्मिक सिद्धान्तों के आधार पर हुआ जिसके संस्थापक गुरू जाम्भोजी का जन्म माता 'हंसा' और पिता 'लोहट' जी पंवार राजपूत के घर राजस्थान के पीपासर (नागौर) में भाद्रपद कृष्णा अष्टमी विक्रम संवत् 1508 (तदनुसार सन् 1451) को अर्द्धरात्रि कृतिका नक्षत्र में हुआ। इन्होंने वैदिक धर्म के आधार पर विक्रम संवत् 1542 में कार्तिक शुक्ला अष्टमी को वैष्णवीय (विश्नोई) धर्म के 20+9 सिद्धान्तों की स्थापना की जिनमें विष्णु नाम के जप के साथ प्राणी मात्र की रक्षा एवं हरे–भरे वृक्षों की सुरक्षा करना प्रमुख है।

विश्नोई धर्म के अनुसार वृक्षों की रक्षा के लिए सम्वत् 1661 (सन् 1904) में श्रीमती करमा व गौरा ने आत्मबलिदान (खडाणा–साका) किया जो रेवासड़ी (रामसड़ी) जोधपुर का बलिदान कहलाता है। वृक्षों की रक्षा का ऐसा ही एक दूसरा बलिदान तिलवासणी, जोधपुर की विश्नोई खीवणीं देवी, नैतू देवी, नैण तथा मोटाराम जी खोंकर द्वारा किया गया। तीसरा आत्मोसर्ग पेड़ों के लिए ही सम्वत् 1700 (सन् 1643) में विश्नोई श्री बूचो जी एचरा ने स्वेच्छा से पोलावास (मेड़ता) में किया।

इन सबसे महत्त्वपूर्ण बलिकदान खेजड़ली गाँव का है जो जोधपुर रियासत के प्राप्त प्रमाणिक दस्तावेजों के अनुसार भद्रपद शुक्ला दशमी मंगलवार सम्वत् 1787 (तदनुसार सन् 1730) में हुआ जिसमें जोधपुर के महाराज अभय सिंह द्वारा वृक्षों को कटवाने पर उन्हें बचाने के लिए खेजड़ली ग्राम की अमृता विश्नोई के साथ 363 लोगों ने आत्मबलिदान किया। इस घटना से खिन्न राजा अभय सिंह ने ताम्रपत्र पर लिखित आदेश प्रसारित कर शमी (खेजड़ली) वृक्षों को नहीं काटने एवं वन्य जीवों को नहीं मारने की घोषणा करवाई।

रक्षणं रक्षणं वृक्षरक्षणं वृक्षरक्षणम्।
क्षणे क्षणे ते रणक्षणो धनं वृक्षरक्षणम्।।
धनं वृक्षरक्षणम्।।

आज भी राजस्थान राज्य के जोधपुर जिले के खेजड़ली ग्राम में विश्नोई समाज के लोग उक्त भाद्रपद शुक्ला दशमी तिथि को हवन कुण्ड का निर्माण कर उसमें आहुति देते हुए वृक्षों के लिए बलिदान करने वाले उन 363 व्यक्तियों के प्रति श्रद्धांजलि समर्पित करते है। तभी से ही विश्नोई जाति के लोग प्राणों की बाजी लगाकर भी तैयार रहते हुए पशु–पक्षियों और पेड़ों की रक्षा के लिए बलिदान देने में नहीं हिचकते है।

रक्ष रक्ष वृक्षरक्षपणं रे।
अधो विधेहि शत्रुशीर्षफणं रे।।

क्षणे क्षणे ते रणक्षणो धनं वृक्षरक्षणम्।
रक्षणं रक्षणं वृक्षरक्षणं वृक्षरक्षणम्।।
धनं वृक्षरक्षणम्।।
धनं वृक्षरक्षणम्।।

इस प्रकार विश्व पर्यावरण संरक्षण संस्कृति के 'चिपको आंदोलन' की यह प्रथम महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। राजस्थान सरकार ने शमी (खेजड़ी) वृक्षको राज्यवृक्ष के रूप में मान्यता प्रदान की है। वर्तमान में सरकारी एवं अनेक सामाजिक संस्थाओं द्वारा 'अमृतादेवी' के नाम से जगह–जगह पर उद्यान निर्माण कर वृक्षों को संरक्षण एवं पर्यावरणविदों को विभिन्न पुरस्कार दिये जाते हैं।

विश्व की संस्कृति में पर्यावरण का महत्त्वपूर्ण योगदान है। सभी मनुष्यों को वृक्षों के प्रति मानवीय संवेदना रखनी चाहिए। जिस प्रकार बहुत मना करने पर भी पेड़ों को काटने में लगे आदमियों को देखकर वृक्षों के प्रति श्रद्धा और प्रेम से प्रेरित होकर अमृता देवी ने अपनी बेटियों के साथ पेड़ों को बचाने के लिए उनसे चिपक कर बलिदान कर दिया।

इस प्रकार बलिदान देने वाली अमृता देवी ने वर्तमान युग में पर्यावरण संरक्षण के लिए चिन्तित सम्पूर्ण विश्व के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बनकर आदर्श स्थापित किया। इसी प्रेरणा को हमें आगे बढ़ाने का सतत् प्रयत्न किया जाना है। सभी मानवों को पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक किया जाना है।

वृक्षों के साथ–साथ वन्यजीवों का भी संरक्षण संवर्धन करना हमारी सांस्कृतिक परम्परा थी। जबकि वर्तमान में न इन्द्रधनुष, न बिजली की गउ़गड़ाहट, न ही बगुलों का उड़ना और न ही मयूरों का नाचना–

नष्टं धनुर्वलभिद्रो जलदोदरेषु सौदामिनी स्फुरति नाद्य वियत्पताका।
धुन्वन्ति पक्षपवनैर्न नभा बलाकाः पश्यन्तिनोन्नतमुखा गगनं मयुराः।।

आज वर्तमान परिस्थितियों में ऐसा पर्यावरण दुर्लभ है। प्राचीन काल में मानव, जीव, प्राणी सभी प्रकृति के अनुकूल रहते थे। आज वह प्रकृति को अपने अनुकूल बनाना चाहता है। यही पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख कारण है।

अहमेव राधा अहमेव कृष्णः

आह्लादमय चमत्कारिक सौन्दर्य का उदभावक साहित्य किसी भी भाषा में शब्द और अर्थ की सीमाओं में सिमट कर नहीं हर पाता है, यही कारण है कि वह अन्य भाषाओं में रूपान्तरित हो देश

देशान्तर यात्रा करता हुआ अपनी सक्षम प्रस्तुति के साथ चिरकाल तक जीवित रहता है, इसी धारणा के चलते अनुवाद परम्परा का विकास हुआ और एक भाषा का श्रेष्ठ साहित्य अन्यान्य भाषाओं में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान पाने लगा।

अनुवाद विधा एक शैली है जिसे हम कला की श्रेणी में रख सकते हैं। प्रत्येक भाषा की अपनी एक विशेषता होती है, उसकी प्रकृति भिन्न होती है, स्वरूप पृथक होता है, अतः अनुवाद रचनाधर्मिता का एक विशेष पहलू होता है जो देश, काल परिस्थिति के अनुसार प्रयोग में ली गई भाषा को नया जामा पहनाता है, नया स्वरूप प्रदान करता है अतः अनुवाद को हम उसके स्वरूप भेद से विभिन्न श्रेणियों में रख सकते है जैसे पदानुवाद, भाषानुवाद, छायानुवाद आदि।

शताब्दियों पूर्व से ही संस्कृत भाषा का साहित्य भी विपुल मात्रा में विश्व की अनेक भाषाओं में रूपान्तरित एवं अनूदित हुआ और ठीक इसी तरह विश्व की अन्यान्य भाषाओं के साहित्य ने भी संस्कृत में अपना स्थान बनाया।

अनूदित रचनाओं पर हम दृष्टिपात करें तो सर्वप्रथम पं. अम्बिका दत्त व्यास का 'शिवराजविजयम्' दृष्टिगोचर होता है जो सप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री रमेशचन्द दत्त के 'महाराष्ट्र–जीवन प्रभात' नामक हिन्दी उपन्यास का अनुवाद है। दूसरा अनूदित उपन्यास भट्ट मथुरानाथ शास्त्री रचित 'आदर्शरमणी' है जो प्रवासी नामक मासिक पत्रिका में प्रकाशित बंगला उपन्यास 'पणरक्षा' का अनुवाद है। जयपुर के समीपस्थ महापुरा ग्राम के पं. हरिकृष्ण शास्त्री ने 'उद्वेजिनी' उपन्यास की रचना ठाकुर रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'चोखेर वाली' के अनुवाद के रूप में की है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल के संस्कृत साहित्यकारों ने भी अन्य भाषा के साहित्य को अनूदित करने में अत्यधिक रूचि दिखाई। जयपुरवास्तव्य राष्ट्रपतिसम्मानित मनीषी पं. मोहनलाल शर्मा 'पाण्डेय' का पहला उपन्यास 'रसकपूरम्' है जो मौलिक सा प्रतीत होता है तथा आचार्य उमेश शास्त्री द्वारा जयपुर के इतिहास से जुड़ी घटना को आधारित कर हिन्दी भाषा में लिखे 'रसकपूर' उपन्यास का संस्कृत में छायानुवाद है। जोधपुर वास्तव्य पं. श्रीराम दवे ने मुंशी प्रेमचन्द के 'निर्मला' तथा जयशंकर प्रसाद के 'ध्रुवस्वामिनी' का संस्कृत में अनुवाद उसी नाम से किया है। हिन्दी साहित्यकार बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास 'आनन्दमठ' का भी इसी नाम से जयपुर वास्तव्य डॉ. शिवचरण शर्मा द्वारा तथा भगवती चरण वर्मा के 'चित्रलेखा' उपन्यास का हरिद्वार निवासी डॉ. निरञ्जन मिश्र ने इसी नाम से संस्कृतानुवाद किया है। काव्यों की संस्कृतानुवाद–परम्परा में जोधपुर के पं. श्रीराम दवे ने ठाकुर

रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'गीतांजलि' काव्य का अनुवाद किया है। इस प्रकार रचनाधर्मिता से जुड़े साहित्यकारों ने अनुवाद विधा में भी अपना वर्चस्व कायम किया।

इसी प्रकार प्रमुख समाचार पत्र 'राजस्थान पत्रिका समूह' के प्रधान सम्पादक गुलाब कोठारी द्वारा रचित छन्दोमुक्त काव्य 'मैं ही राधा, मैं ही कृष्ण' का संस्कृतानुवाद, डॉ. प्रो. ताराशंकर शर्मा पाण्डेय ने उसी शैली में 'अहमेव राधा अहमेव कृष्णः' के रूप में किया है जिसे चिन्तकों ने मौलिक रचनाधर्मिता की श्रेणी में स्थान दिया है।

अहमेव राधा, अहमेव कृष्णः

पत्रिका समूह के प्रधान सम्पादक गुलाब कोठारी द्वारा लिखित 'मैं ही राधा मैं ही कृष्ण' का संस्कृतानुवाद डॉ. प्रो. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने कविता के स्वरूप के अनुरूप ही किया है।

गुलाब कोठारी पत्रकारिता के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध व्यक्तित्व के धनी है। स्वनामधन्य कर्पूरचन्द्र 'कुलिश' द्वारा स्थापित 'राजस्थान पत्रिका' ने आज राज्य की सीमाओं के बन्धन तोड़ राष्ट्रीय स्तर पर अपने पैर पसारे हैं और आज पत्रिका समूह के रूप में विख्यात इस संस्था के प्रमुख एवं पत्रिका के प्रधान सम्पादक गुलाब कोठारी हैं। गुलाब कोठारी वैदिक विज्ञान विधा के पारंगामी एवं गंभीर चिन्तनशील लेखक है, आपके 'कृष्ण तत्त्व की वैज्ञानिकता', 'मनवा रे!' जैसे अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। आप द्वारा लम्बी कविता के रूप में लिखित 'मैं ही राधा मैं ही कृष्ण' नामक रचना पर भारतीय ज्ञानपीठ संस्था से 'मूर्तिदेवी पुरस्कार' दिया गया है जो अपने आपमें एक उल्लेखनीय योगदान को प्रकट करता है। आपकी इसी कृति का संस्कृतानुवाद डॉ. प्रो. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' द्वारा किया गया है।

डॉ. प्रो. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' जयपुर वास्तव्य संस्कृत के प्रौढ़ गद्य पद्य लेखन में पारंगत, 'श्रीवाणी अलंकरण', 'वाचस्पति पुरस्कार' जैसे अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त राष्ट्रपति–सम्मानित पं. मोहनलाल शर्मा 'पाण्डेय' के पुत्र है। राजस्थान सरकार से वर्ष 2010 में सम्मानित डॉ. पाण्डेय ने गुलाब कोठारी की कृति 'अहमेव राधा अहमेव कृष्णः' के रूप में किया है जिसका लोकार्पण भारत के उपराष्ट्रपति म. हामिद अंसारी द्वारा 4 सितम्बर 2013 को नई दिल्ली स्थित अपने आवास पर एक समारोह में किया।

अनुवाद शैली

किसी भी रचना का अनुवाद करने से पूर्व मूल लेखक के वक्तव्य, उसके भाव एवं उसकी विवक्षा पर सूक्ष्म दृष्टिपात कर लेना अत्यावश्यक होता है। अन्यथा अनुवाद शब्दावली का संयोजन

मात्र बनकर रह जाता है तथा मूल छिन्न–भिन्न हो विकृत स्वरूप प्राप्त कर लेता है और मूल लेखक की भावनाओं का समुचित संप्रेषण नहीं हो पाता है। यहाँ कतिपय उदाहरणों पर दृष्टिपात करना उचित होगा।

1. या फिर

भटकते रहो	आहिण्डस्व वा
जन्म–जन्म	जन्मजन्मान्तरे
अपने अहंकार में	स्वीयाहङ्कारे
फंसे रहो	भव जालान्तर्गतो वा
सृष्टि के तन्त्र में।	सृष्टितन्त्रे।

यहाँ भटकते रहो के लिए 'आहिण्डस्व' पद का प्रयोग समुचित है।

2.

जगा सके	जागर्येत
मेरी सोई आत्मा	शयानो मदात्मा
एक हो जाए	येन एकाकारत्त्वमापघेत
मेरे तन–मन से	मम तनुषा मनसा सह,
मिटा सके सारे भेद	विलुप्येरश्च सर्वे भेदाः
बाहर–भीतर के	बाह्या आन्तराः,
मैं, मैं न रहूं	नो स्यामहम्, अस्मितया
तू, तू न रहे,	नो स्यास्त्वम्, त्वत्तया,

यहाँ 'मैं मैं न रहूं' और 'तू तू न रहे' का प्रयोग मूल कवि विवक्षा के अनुरूप ही है।

3.

भरता नहीं है पेट	पूर्यते नो कुक्षिः
बन गए है	जाताः सर्वेऽपि
कुंभकरण सभी	कुक्षिम्भरयः कुम्भकर्णाः
निश्चिन्त	निश्चिन्ता
आस–पास से	आरात्

यहाँ कुक्षि, कुम्भ आदि पदों का प्रयोग पेट भरने से सम्बद्ध होने के कारण किया गया है।

4. तब समझ पाएगें — तदेव बोधिष्यामो

हम — वयं

कलयुग का अर्थ — कलियुगस्यार्थम्

या — अथवा

अर्थ का कलयुग — अर्थस्य कलियुगम्

सभी होंगे स्वच्छन्द — भविष्यन्ति सर्वे स्वच्छन्दाः

सभी होगें वनचर — भविष्यन्ति सर्वे वनेचराः

लुप्त हो जाएगें — लोपिष्यन्ति

सारे समाज — सर्वे समाजाः

इन लम्बे प्रयोगों में मूल भावना के अनुरूप ही शब्दों एवं उनके पूर्वा पर की स्थिति को ध्यान में रखा गया है जिससे मूल लेखक की भावना आहत न हो।

मुहावरा/सूक्ति संयोजन–

हिन्दी भाषा में प्रयुक्त मुहावरों अथवा सूक्तियों का संस्कृतानुवाद में किस तरह रूपान्तरण अथवा अनुवाद किया जा सकता है, किया गया है, यह यहाँ प्रदर्शित किया जा रहा है–

1. ईश्वर प्रसन्न किसी से — यदुपरि प्रसन्न ईश्वरस्तर्हि

तो जलाता है — सन्तापयति

तिल–तिल करके — तिलशो विधाय

परीक्षा लेता है — परीक्षते चामुं

बार–बार — वारम्वारम्

तिल–तिल करके लिए तिलशः का प्रयोग संस्कृत भाषा के अनुकूल है।

2. जब आ जाये — यर्हि प्राप्येत

बन्दर के हाथ — कविकरे

उस्तरा — क्षुरं

तब क्या करेगा	तर्हि किं कुर्यात्
लहू–लुहान खुद को	शोण–शोणितमेवात्मानम्
यही कर रहा है	इरमेव कुरुतेऽद्य
मानव आज	मानवः

यहाँ 'कपिकरे', 'शोणशोणितम्' प्रयोगों में अनुप्रास के साथ सम्पूर्ण मुहावरें एवं वाक्य का प्रयोग सुन्दर तरीके से किया गया है।

3.	छूटता नहीं मोह	परिहीयते नो मोहः
	शरीर के भोग का	शरीर भोगस्य
	कहता रहता है	भणन्नास्ते
	'दिल अभी जवान है'	'मनोऽधुनापि तरुणायते'

यहाँ मुहावरागत 'जवान' के साथ अभिव्यक्त होने भाव को क्रिया के साथ संयुक्त करना मुहावरें का भी सौन्दर्य बढ़ा रहा है।

नवीन शब्द सर्जना

किसी भी मूल रचना की भाषा का अपना एक वैशिष्ट्य होता है। उसके अपने शब्द होते है जो देश काल, परिस्थिति के साथ अपना अर्थ बदल लेते हैं परन्तु जब अनुवाद करने की बात आती है तो उसकी विवक्षा के अनुरूप शब्द अनुवाद की भाषा में ढूँढना मुश्मिल हो जाता है, उस अर्थ के शब्द या तो मिलते नहीं या फिर मिलते है तो उस अर्थ की अभिव्यञ्जना नहीं कर पाते हैं। ऐसी स्थिति में संस्कृत भाषा की अपनी उर्वर क्षमता है जो प्रयोक्ता के पाण्डित्य–कौशल से नवीन शब्द सर्जना करती है। यहाँ इसी प्रकार के शब्दों/प्रयोगों को स्पष्ट किया जा रहा है–

1.	इस जन्म में भी	अस्मिन्नपि जन्मनि
	रहेगा भटकाव तो	भावाटकस्तु भविष्यति
	कुछ काल तक	किञ्चित्कालं यावत्
	झपटेगी	झम्पतिष्यन्ति
	आत्माएँ भी	आत्मका अपि
	फंसाने को फिर से	भ्रमौ पुनः पाशयितुम्

यहाँ भटकाव झपटेगीं, फंसाने को आदि के लिए प्राचीन प्रयोगों के साथ तालमेल बैठाते हुए नवीन शब्द है यथा झम् उपपद के साथ पत् धातु का प्रयोग।

2.	वह तो व्यस्त है	सा तु व्यस्तातीव
	मौज–मस्ती में	आमोद–प्रमोद
	गप–शप में,	अर्थहीनवार्तालपिषु
	पार्टियों में, व्यसनों में	संगोष्ठीषु, व्यसनेषु
	ताश–जुए में,	पत्रक्रीडा–द्यूते
	'टी.वी.' पर गुजरता	त्यपगमयति दूरदर्शनावलोकने
	अधिकांश जीवन	जीवनाधिकांशम्

यहाँ मौज–मस्ती, गप–शप, ताश आदि शब्दों का अनुवाद विलोकनीय है।

3.	जीना है सौ साल	जीवेयं शतम् वर्षाणि यावत्
	इसी चोले में	अस्मिन्नेव चोलके
	लगाकर मुखौटे	आवेष्टय सहस्त्रशो मुखावटान्
	हजारों झूठ के	असत्यस्य

इस वाक्य में मुखौटे के लिए वटि वेष्टने धतु से निष्पन्न शब्द की सहायता ली गई है। इसी प्रकार धकेलते है (धक्केलति), खुराक (भोज्यांशः), फार्म हाउस (वसन्तभवनम्), मूछो पर ताव देते हुए (एठयन्तः) कोल्ह (परञ्जः), जैसे शतशः प्रयोग अनुवादकर्त्ता की स्वोपशता का प्रतिपादन करते है, ये सभी शब्द प्रयोग मूल रचना एवं उसके भावों की माँग के अनुसार सर्जित किये गये हैं।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'अहमेव राधा अहमेव कृष्णः' को डॉ. पाण्डेय ने अनुवाद करने की रचना को नया जामा पहनाने का काम किया। इस विशेषता के कारण ही इस अनुवाद को यथार्थता के साथ स्वीकार किया गया हैं।

≈≈≈≈

संदर्भ सूची

1. साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ
2. साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, 6/3
3. साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, 6/4–5–6
4. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, 1/17
5. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, 1/104
6. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, 1/114
7. कालिदास
8. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, 1/109
9. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि
10. दशरूपक, धनञ्जय
11. साहित्यदर्पण, कविराज विश्वनाथ, षष्ठ परिच्छेद 264/267 कारिकाः
12. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथम अंक
13. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/10
14. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4/9

चतुर्थ अध्याय

डॉ. पाण्डेय की सम्पूर्ण कृतियों का साहित्यिक अध्ययन

चतुर्थ – अध्याय

डॉ. पाण्डेय की सम्पूर्ण कृतियों का साहित्यिक अध्ययन

'साहित्य' का शाब्दिक अर्थ है शब्द और अर्थ का परस्पर विशिष्ट प्रकार का सम्बन्ध। 'सहितयोर्भावः साहित्यम्' और यह सम्बन्ध शाश्वत है। इसलिये कहा गया है– "नित्यः शब्दार्थसम्बन्धः" अर्थात् शब्द और अर्थ का यह पारस्परिक विशिष्ट सम्बन्ध नित्य है। इन दोनों को पृथक् नहीं किया जा सकता है। कोई भी साहित्य यहाँ तक कि सामान्य बात भी इन दोनों के अभाव में संभव नहीं है। अतः शब्द और अर्थ दोनों मिलकर ही 'साहित्य' कहलाते हैं।

'साहित्य' समाज का दर्पण है और संस्कृति का अभिन्न अंग भी, साहित्य में कुछ साहित्यकार ऐसे भी है जो कला को कला के लिए मानते है। इस प्रकार के साहित्यकारों की साहित्यिक कृतियों में कलात्मकता का प्राचुर्य हुआ करता है। किसी भी काव्य का मूल्यांकन उसके अनुभूति व अभिव्यक्ति दोनों आधारों पर किया जा सकता है। जब कवि बिखरी हुई अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में भाषा, लय, छंद, अलंकार, रस आदि काव्य शरीर अंगों का गुम्फन किसी विशेष ढंग से करता है तब काव्य रूप का प्रादुर्भाव होता है। साहित्यकार कला को जीवन के लिए मानते है। जो संवेदनशील है, सहृदय है, भावुक है ऐसे साहित्यकारों की रचनाओं में कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष प्रधान होता है। उनका साहित्य समाज के लिए आदर्श होता है। अनुकरणात्मक होता है तथा जन–जीवन की भावनाओं को अन्तर्मन को छूकर समाज का मार्ग प्रदर्शक होता है।

साहित्य की परिभाषा

"शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्" के परिप्रेक्ष्य में यदि अर्थ काव्य की आत्मा है तो शब्द अर्थात् शैली काव्य का शरीर है। अतः भावों की मनोहरता, स्थिरता और सूक्ष्मता शैली पर ही निर्भर होती है। किसी कवि या लेखक की शब्दयोजना, वाक्यांशों का प्रयोग, उसकी बनावट और ध्वनि आदि का नाम ही शैली है। भामह ने अपने काव्यालंकार में कहा है कि–

"न स शब्दों न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला।
जायते यन्न काव्याङ्गमहो भारो महान कवेः।।"

अतः यह साहित्य साहिती, कवि कर्म का शासक होने के कारण 'साहित्यशास्त्र' कहलाता है।

राजशेखर ने अपने ग्रन्थ काव्यमीमांसा में कहा है–

"पंचमी साहित्यविद्येति यायावारीयः।
सा हि चतसृणामपि विद्यानां निष्पन्दः।।"

अर्थात् यायावरीय के अनुसार पाँचवी साहित्यविद्या है क्योंकि यह चारों विद्याओं का सार है।

'साहित्य विद्या' के स्वरूप के विषय में कहा है–

"शब्दार्थयोर्यथावत्सहभावेन विद्या साहित्य विद्या"

अर्थात् सहृदयों को यथावत् आह्लादित करने वाली परस्पर सम्यक्तया विद्यमान शब्द और अर्थ की विद्या=शास्त्र, साहित्यविद्या=अलङ्कारप्रतिपादकशास्त्र='साहित्यशास्त्र' कहलाती है।

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में 'काव्यपुरुष' को जो क्रोधित होकर घर से बाहर चला गया है, लौटा लाने के लिये 'साहित्यविद्यावधू' (शब्दार्थयोः सहभावेन विद्या) का उल्लेख किया है। यह साहित्यविद्या 'साहित्यशास्त्र' है। क्योंकि जिस प्रकार साहित्यविद्यावधू 'काव्यपुरुष' का नियन्त्रण करने के लिये है, उसी प्रकार 'साहित्यशास्त्र' काव्य के सभी अङ्गो का विवेचन करने वाला होने के कारण उसका नियामक है। विल्हण ने अपने महाकाव्य 'विक्रमाङ्कदेवचरितम्' में कहा है–

"साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं कर्णामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः।
यदस्य दैत्या इव लुण्ठनाय काव्यार्थचौराः प्रगुणीभवन्ति।।"

इन उपर्युक्त उद्धरणों से प्रतीत होता है कि 'साहित्य' शब्द का प्रयोग 'साहित्यशास्त्र' के लिये हुआ है। कुन्तक ने अपने 'वक्रोक्तिजीवितम्' में साहित्य की व्याख्या में लिखा है।

"मार्गानुगुण्यसुभगो माधुर्यादिगुणोदयः।
अलङ्कारविन्यासो वक्रतार्ताशयान्वितः।।
वृत्तौचित्यमनोहारि रसानां परिपोषणम्।
स्पर्धाय विद्यते यत्र यथास्वमुभयोरपि।।
सा काप्यपस्थितिस्तद्विदानन्दस्यन्दसुन्दरा।
पदादिवाक् परिस्पन्दसारः साहित्यमुच्यते।।"

अर्थात् मार्गों (रीतियों) की अनुकूलता से सुन्दर, माधुर्यादि गुणों से युक्त, अलङ्कारो के विन्यास वाला, वक्रता के अतिशय से युक्त, वृत्तियों के औचित्य से मनोहारी, रसों का परिपोषण, पारस्परिक स्पर्धा से यथायोग्य दोनों (शब्द और अर्थ) की स्थिति वाला, काव्य मर्मज्ञों को आनन्द प्रदान करने

वाले व्यापार से सुन्दर और पद आदि वाङ्मय की सारभूत कोई अनिर्वचनीय अवस्थिति 'साहित्य' कहलाती है।

आचार्य कुन्तक ने 'साहित्य' शब्द के यथार्थ अर्थ का प्रतिपादन करते हुए जहाँ यह अपना मत अभिव्यक्त किया है कि शब्द और अर्थ के विशिष्ट सम्बन्ध को 'साहित्य' कहते हैं वहाँ उनका यह भी कहना है कि 'साहित्यशास्त्र' में प्रयुक्त 'साहित्य' शब्द 'काव्य' अर्थ में सीमित हुआ समझना चाहिए।

डॉ. पाण्डेय विरचित कृतियों का साहित्यिक (रस, गुण, रीति, अलंकार, छन्द) विश्लेषण निम्न प्रकार है–

4.1 रस योजना

काव्य में रस आत्म तत्त्व के रूप में समादृत है। यदि अलंकार, गुण, रीति आदि काव्य के सौन्दर्याधायक तत्त्व न भी हो और रस हो तो वह काव्य उत्तम कोटि की श्रेणी में रखा गया है। सर्वप्रथम भरतमुनि ने रस सम्प्रदाय का उल्लेख किया है तथा जो रससूत्र भरतमुनि ने दिया उसी पर अनेकों विद्वानों व काव्यशास्त्रियों ने अपने–अपने ढंग से विशद व्याख्या की। भरतमुनि का रस सूत्र है–

"विमातानुभावव्यभिचारी संयोगाद्रसनिष्पत्ति"[1]

विभाव, अनुभाव व व्यभिचारियों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। यहाँ विभाव, अनुभाव व व्यभिचारी भावों की व्याख्या तो समान है लेकिन संयोग व निष्पत्ति शब्द को लेकर विद्वानों ने अपने–अपने मत अभिव्यक्त किये और इस आधार पर रस के प्रमुख चार सम्प्रदायों का उल्लेख मिलता है। भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद, भट्टशंकुक का अनुमितिवाद, भट्टनायक का भुक्तिवाद तथा अभिनव गुप्त का अभिव्यक्तिवाद।

संस्कृत काव्यशास्त्र में रस एक महत्त्वपूर्ण विषय रहा है और 'न हि रसादृते कश्चिदर्थ प्रवर्तते' अर्थात् रस के बिना काव्य का कोई अर्थ प्रवृत्त नहीं होता। रस की या संघ परिनिवृतयें ही काव्य का सफल प्रयोजन मौलीभूत तत्त्व रहा है। रस की तुलना तो ब्रह्मानन्द सहोदर आनन्द से की गई है। इस प्रकार रस (आनन्दप्राप्ति) काव्य का व जीवन का महत्त्वपूर्ण प्रयोजन है।

काव्य में रस परिपाक के लिए अनुभूति की तीव्रता, भावप्रवणता, गम्भीरता व अभिव्यक्ति की सशक्तता चाहिए। रस के स्वरूप का सांगोपांग विवेचन विश्वनाथ ने किया। रस सिद्धान्त के विषय में

साहित्यदर्पणकार ने कहा है कि 'विभाव अनुभाव तथा सञ्चारीभावों के द्वारा व्यक्त स्थायीभाव ही सहृदयों के हृदय आस्वाद का विषय होता हुआ रस पदवी को प्राप्त करता है–

"विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा।

रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम्।।"[2]

रस को काव्य का आवश्यक तत्त्व माना गया है। इसी भाव को आधार बनाकर डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने भी अपनी कृतियों में विविध रसों का प्रयोग किया है। कवि की कृतियों का अपना स्वतन्त्र विषय व स्वतन्त्र अस्तित्व है। फलस्वरूप यहाँ रसों के निर्वाह में भी विविधता है। अतः इसमें वीर, करुण, श्रृंगार आदि रसों का सम्यक् परिपाक मिलता है।

वीर रस

वीर रस का स्थायीभाव उत्साह है। कार्य करने में स्थिर उद्योग का नाम उत्साह है।

"कार्यारम्भेषु संरम्भा स्थेयानुत्साह उच्यते।"

दान, दया, युद्ध व धर्म के हिसाब से वीर रस के चार भेद है। कवि ने राष्ट्ररक्षणम् में महाराणा प्रताप के जीवनवृत की उस साहसिकता का परिचय दिया है, जिस पर समस्त राष्ट्र का शिर गौरवान्वित है। यह राष्ट्रभक्ति व देशप्रेम की भावना से ओत–प्रोत है।

"मातृभूमिवन्दनं मदेकधर्मसंश्रुतम्,
आत्मराष्ट्ररक्षणम् त्वदेककर्मसङ्गतम्।
राष्ट्ररक्षण क्षमा समस्तलोकबोधिका,
धर्मकर्मपावना लसेन्मनः सु भावना।।"[3]

करुण रस

"इष्टनाशदनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्।
धीरैः कपोतवर्णोऽयं कथितो यमदैवतः।।"[4]

अर्थात् प्रिय वस्तु के अथवा पुत्रादि के विनष्ट होने से अथवा मृत्यु होने से तथा अनिष्ट की प्राप्ति से करुण नामक रस होता है। इसका स्थायी भाव शोक है। यह कपोत वर्ण वाला तथा यम देव वाला है।

डॉ. पाण्डेय ने अपनी कृतियों में समसामयिक समस्याओं के प्रति अपने शोकभाव को प्रकट करने के लिए करुण रस को पुष्ट किया। 'हंसरक्षणम्' में कवि ने राजकुमार सिद्धार्थ सभी नीतियों में

निपुण होते हुए भी कभी शिकार करते समय मौका मिल जाने पर भी जानवरों पर दया दिखाते हुए उन्हें नहीं मारा। एक बार सिद्धार्थ ने निशाना साधने के खेल में भाई देवदत्त के बाण से घायल हंस की रक्षा की। इसी प्रकार महर्षि वाल्मिकी का शोक भी श्लोक में परिणत हो गया।

"मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शश्वतीः समाः।
यत्क्रोञ्चमिथुनादेकमवधी काममोहितम्।।"

'वृक्षरक्षणम्' में कवि ने पर्यावरण संरक्षण के महत्त्व को बताया है। विश्नोई गाँव के खेजड़ली इलाके में वृक्षों के प्रति श्रद्धा और प्रेम से प्रेरित होकर अमृता देवी ने अपनी बेटियों आशु, रतनी और भागु के साथ पेड़ों को बचाने के लिए उनसे चिपक कर बलिदान दिया। इनके आह्वान गीत को सुनकर विश्नोई जाति के 363 लोगों ने पेड़ों की रक्षा के बलिदान दे दिया।

"रक्ष रक्ष वृक्षरक्षपणं रे।
अधो विधेहि शत्रुशीर्षफणं रे।।
क्षणे क्षणे ते रणक्षणो धनं वृक्षरक्षणम्।
रक्षणं रक्षणं वृक्षरक्षणम् वृक्षरक्षणम्।।"[5]

'सारस्वत–सौरभम्' में कवि ने कोऽयं तस्या अपराधः, दुरवस्था संस्कृतस्य, उदरस्य, अन्तरालः, विश्वासः फलदायकः, दूतश्च को भविता, शकुन्तला प्रयाणम्, परकीय धनम्, किं नामधेयं यौतकम् आदि मुक्तक कविताओं के माध्यम से व्याप्त विविध समस्याओं के प्रति अपने शोक भाव की करुण रस की मार्मिक अभिव्यक्ति है। 'विश्वासः फलदायक' में कवि ने क्रोञ्च वध की पीड़ा को, व्याधपाश से विद्ध राम की सहचरी सीता को छोड़कर काञ्चन मृग का अनुसरण करने पर, रावण द्वारा अपहृत अशोक वाटिका में शोकमग्न सीता का कारुणिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

"अशोकवाटिकायामपि
शोकवापिकायां मज्जोन्मज्जनशीला
जीवनाकाङ्क्षिणी मीना इव दीना, हीना
भीता सीता, याचते कमपि किमपि।
साफल्यं साहाय्यञ्चाधिगतम्,
'विश्वासः फलदायकः' इति
हनुमद्दर्शनं जायते।"[6]

'नित्यं ग्राह्या सत्या शिक्षा' में कवि ने वनवास की कथा का वर्णन किया है। इसमें डॉ. पाण्डेय ने रावण द्वारा अपहृत सीता के शोक का करुण दृश्य प्रस्तुत किया है।

"सीता पीडापारावारं,
पारीकर्तुं किं नो चक्रे।
जीवाङ्काक्षा सर्वं सेहे,
का नो मूढ़ा स्वामिस्नेहे।।"[7]

'परकीय धनम्' कविता में कवि ने यौतुक (दहेज प्रथा) के कारण होने वाली पीड़ा को बताया है। इसके माध्यम से हमारे समाज में दृढ़तापूर्वक अपने पैर जमाने वाली दहेज प्रथा जैसी बुराई पर व्यंग्य करते हुए समाज में नारी की कारुणिक अवस्था का दृश्य प्रस्तुत किया है।

"गृहस्थः/सामाजिकप्राणी
परकीयं किन्तु ममत्वेन नैजं
यौतुकयातुधानैर्विहितदुर्दशं तद्धनं
विलोक्य तादृश्य दुःखमनुभवति
यस्यानुमानं तु ज्ञानी कण्वोऽपि कर्तु नैव पारयति स्म।"[8]

'कोऽयं तस्य अपराधः?' कविता में डॉ. पाण्डेय ने वर्तमान समाज में नारी की स्थिति पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए समाज में व्याप्त नारी की दुर्दशा का अत्यन्त कारूणिक चित्र उपस्थित किया है–

"कोऽयं तस्या अपराधः?
पुत्रं यदि सा न सूते
बालिकाततिञ्च तनुते।
भाग्याधीना किं कुरुते
तदपि सापराधां मनुषे।।
तदा व्यर्थ तवाक्षेपः, मार्गो नियतेरबाधः।"[9]

'शकुन्तला प्रयाणम्' में डॉ. पाण्डेय ने शकुन्तला की विदाई का हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के चतुर्थ अंक में वर्णित शकुन्तला की विदाई के समय उपस्थित होने वाले मार्मिक दृश्य के समान हमारे समक्ष उपस्थित होकर अत्यन्त कारूणिक बन गया है–

"दुष्यन्ताऽऽचरितं ज्ञातं कण्वेनाकाशभाषया।
मता सच्छिष्यसंदत्ता विद्येव सा शकुन्तला।।"[10]

शृंगार रस

"शृङ्ग ही मन्मथोद्भेदस्तदागमन–हेतुकः
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृङ्गार इष्यते।"[11]

शृङ्गार शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। शृंग+आर। शृंग का अर्थ होता है कामोद्रेक और आर का अर्थ होता है वृद्धि, गति या प्राप्ति। अतः कामदेव का उद्रेक शृंग कहलाता है। उसके आगमन को शृंगार कहते है। यह उत्तम प्रकृति वाला तथा रति स्थायी भाव वाला होता है। इसके दो भेद सम्भोग एवं विप्रलम्भ होते है। 'माधव' कविता में कवि ने नायिका पक्ष को ग्रहण किया है। यहाँ कवि ने शृंगार रस का रूचिर प्रयोग दृष्टिगत होता है।

"मनोऽभिरामं तिलकं विशेषं
चर्चापि जाता जडतापहत्रीं।
त्वमेव भर्ता सकलं त्वदर्थ
तत्वं गतिर्माधव! किं मम स्याः।।"[12]

'हले शकुन्तले' कविता में कवि ने प्रियतमा शकुन्तला के लावण्य का चित्रण करते हुए नायक की मनोव्यथा का विश्लेषण किया है। यहाँ पर रति नामक स्थायी भाव है जो शृंगार रस में परिणत हुआ है।

"अनघं घनं ते रूपं
कुरुते चलं रे भूपं
मदनं मदं प्रकारि
सरलं शरं प्रसारि
नीलनयने चञ्चले! हले शकुन्तले!"[13]

डॉ. पाण्डेय ने यद्यपि शृंगार रस का प्रयोग किया तथापि शृंगार रस का सन्निवेश अल्प स्थानों पर दिखलाई पड़ता है। अतः शृंगार रस की अभिव्यक्ति अपनी उत्कृष्टता के कारण सहज ही सहृदयों को अपनी ओर आकृष्ट करने वाली है।

रति व भक्ति भाव

"रतिर्मनोऽनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्"

अर्थात् मन का प्रिय वस्तु के विषय में प्रेमपूर्ण तत्परता का भाव रति है। शृंगार रस में रतिनामक स्थायीभाव और वीररस में उत्साह नामक स्थायीभाव ही प्रमुख होते है किन्तु पूज्यजनों के

प्रति प्रेम में स्नेह के अतिरिक्त श्रद्धा भी होती है अतः स्नेह और श्रद्धा के सम्मिश्रण रूप भक्ति को भक्तिरस का स्थायीभाव नहीं माना जा सकता है। यही कारण है कि काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने भक्ति को रस न मानकर भाव माना है। भक्ति या आदर नामक मूल प्रकृति का किसी भी काव्य शास्त्राचार्य ने उल्लेख नहीं किया है। अतः भक्ति को हृदय में स्थित स्थायीभाव नहीं माना जा सकता है। माता–पिता, गुरु और ईश्वर के प्रति श्रद्धायुक्त स्नेह को ही भक्ति कहते हैं। भक्ति का प्रार्दुभाव सामाजिक परिस्थितियों पूज्यजनों का समाज में विशिष्ट स्थान, लोक परम्परा आदि के अनुसार होता है। काव्यानुशासनकार आचार्य हेमचन्द्र ने भी कहा है–

"स्नेहो भक्तिर्वात्सल्यमिति हि रतेरेव विशेषाः।
तुल्ययोः या परस्परमरतिः स स्नेहः अनुत्तमस्य
उत्तमे रति प्रसक्तिः सैव भक्तिपद वाच्या।
उत्तमस्य अनत्तमे रतिः वात्सल्यम्
एवमादौ च विषये भावस्यैवास्वाद्यत्वम्।।"[14]

'सारस्वत–सौरभम्' के पद्य भाग मुक्तकों में देव स्तुति, प्रकृति, देश–प्रेम आदि ऐसे प्रसंग है जहाँ कवि का तद्विषयगत रति भाव ही प्रधानतया उभरकर सामने आया है। 'सारस्वत–सौरभम्' के 'स्तुति' खण्ड में कवि भक्ति भावना को प्रदर्शित करते हुए 'देवि! दिव्यभारती!' कविता में स्वयं को अबोध बालक कहते है एवं माँ शारदा से सदैव कृपा दृष्टि करने का आग्रह करते है। वे कहते है कि तुम्हारी कृपा से ही वेदव्यास, भास, कालिदास एवं माघ आदि कवि महाकवि हुए है और इनकी कृतियाँ सारस्वत रचनाएँ है। हे देवि! आप मुझ रचनाधर्मी पर भी ऐसी ही अनुकम्पा करें।

"वेददेववन्दिते! पुराणमर्मबोधिनि!
व्यासभासकालिदासमाघकाव्यलासिनि!
कान्तकाव्यकौमुदीकृपाकटाक्षकारिणि!
बालके कृपां कुरुष्व देवि! वेदवासिनि!"[15]

भगवान श्रीकृष्ण के प्रति रति भावना को व्यक्त करते हुए कवि ने कहा है कि परम उपासनीय भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल से लगी हुई धूलि के द्वारा तीन प्रकार के दुःखों के प्रतिघात से पीड़ित शरण में आये शरणार्थियों के दुःखों का निवारण करने में समर्थ है। ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण को में नित्य भजता हूँ। यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति कवि का रतिभाव का स्पष्ट रूप से दर्शन होता है।

"श्रीकृष्णपादाम्बुजयुग्मलग्नं
रजः समेषां शरणागतानाम्।
दुःखत्रयस्य प्रतिघातदक्षं
नित्यं भजेऽहं दुरितापनोदम्।।"[16]

'रामरसं पिब रे!' कविता में कवि ने अद्वितीय रूप से भगवान् राम के प्रति रति व भक्ति भाव को प्रदर्शित किया है। कवि ने प्राणी को राम नाम का जाप करने का उपदेश देते हुए कहा है कि हमेशा राम नाम का स्मरण करना चाहिए तथा सदैव राम भक्ति में तत्पर होना चाहिए। ऐसा राम परम भक्त कभी भी इस संसार रूपी सागर में अकेला नहीं रहता उसके साथ हमेशा रघुवर का आशीर्वाद होता है। उसका सभी कार्य प्रभु राम ही करते है। उसे निश्चित होकर प्रभु राम की भक्ति में लीन रहना चाहिए। फल तो ईश्वराधीन है, वह जिस स्थिति में रखना चाहे, उसी स्थिति में रहना होगा। यह गीत मन को स्पर्श करने वाला है।

"फल आशां मुञ्च, शुभकार्यकरणे लग रे।
रामो रक्षेद् यथाविधि तथाविधि वस रे।।"[17]

अतः कवि ने 'स्तुति' भाग के माध्यम से सरस्वती, गणपति, शिव, श्रीकृष्ण, एकलिङ्ग, गौ, राम आदि के प्रति अपनी भक्ति भावना को व्यक्त करने के लिए भक्ति मार्ग का ही अवलम्बन किया है। अतः यहाँ भगवद् विषयक रति भाव ही प्रमुख है।

डॉ. पाण्डेय ने 'प्रकृति' नामक पद्य में प्रकृति की सुषमा का मनोरम चित्रण करते हुए प्रकृति के प्रति अपने अगाध प्रेम को प्रदर्शित किया। कवि ने प्रकृति के प्रति अपने रति व भक्ति भाव को मुक्तकों के रूप में निबद्ध किया जो कवि के अद्वितीय बुद्धि कौशल का परिचायक है। प्रो. पाण्डेय ने गङ्गा का वर्णन करते हुए उसकी स्वाभाविक पवित्रता को अभिव्यञ्जित किया है। इसमें कवि का पौराणिक ज्ञान प्रदर्शित होता है। भगवान् विष्णु के पादाङ्गुष्ठ से गंगा का आविर्भाव होने पर गंगा के वेग को कौन धारण करेगा? अन्यथा यह पाताल में प्रविष्ट हो जायेगी, इस स्थिति से बचने के लिए भागीरथ ने शिव जी की तपस्या की और प्रसन्न होकर शिव ने उसे अपने मस्तक पर धारण किया। इसमें कवि का पौराणिक ज्ञान व विलक्षणता का प्रदर्शन होता है।

"विष्णुपादप्रभूता या शिवशिरोविधारिता।
अमृतसदृशक्षीरा लोके गङ्गा विराजते।।"[18]

प्रो. पाण्डेय ने वसन्त ऋतु के प्रति अपने प्रेम का प्रदर्शन किया है। यथा उसकी मनोरम सुषमा का वर्णन करते हुए कहा है कि वसन्त ऋतु में वृक्ष मनोहरता को प्राप्त करते है। इस ऋतु में चलने वाली पवन युवकों के श्रम को हरण कर लेती है। कोकिलों का स्वर मधुरता से परिपूर्ण हो जाता है अतः ऋतुराज वसन्त सभी के द्वारा उपासना करने योग्य है–

"विकासमाप्तास्तरवो मनोज्ञा, हरन्ति यूनां पवनैः श्रमत्त्वम्।
रूतं मनोहारि च कोकिलानां, नृपो वसनतः समुपासनीय।।"[19]

कवि हृदय प्रकृति की शोभा को देखकर उसके साथ तादात्म्य का अनुभव करने लगता है। विहंगवीथी का कवि ने मनोरम वर्णन उपस्थित किया है। सन्ध्या होते ही पक्षी अपने घोंसलों में लौटने लगते हैं। अनेक प्रकार के विचित्र वृक्षों में आसीन अपने नीडों से चञ्चुभाग को बाहर निकालते हुए कर्णप्रिय कलरव करते है। इस प्रकार का स्वाभाविक चित्रण कवि की सूक्ष्मदृष्टि एवं प्रकृति के साथ कवि हृदय के तादात्म्य को प्रकट करता है। कवि ने मनोरम सन्ध्याकाल एवं विचित्र वृक्षों व विहङ्गवीथी के सुन्दर कलरव का प्रत्यक्षीकरण किया है।

"विभाति सन्ध्यासमये मनोज्ञा, स्वनीडनिष्कासितचञ्चुभागा।
विचित्रवृक्षेषु विहङ्गवीथी, फलानि कान्तानि करोति या च।।"[20]

'हिमालयः' कविता में कवि ने हिमालय की महानता का वर्णन करते हुए हिमालय के प्रति अपने भक्ति भाव को प्रदर्शित किया है। इसमें कवि ने हिमालय की प्राकृतिक सुषमा का मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है। इसमें प्रसाद गुण के कारण चमत्कृति भी है तो इसकी भाषा हृदयग्राही, सहज व सरल भी है। हिमालयों, विबुधालयों, श्वसुरालयों, वरालयों, विवरालयों, महिमालयों एवं हिमालयों की श्रृंखला दर्शनीय है।

"बुधालयो यो विबुधालयो यः,
सुरालयो यः श्वसुरालयो यः।
वरालयो यो विवरालयो यो,
हिमालयो यो महिमालयोऽसौ।"[21]

कवि ने कालिदास के काव्य–सौष्ठव एवं भावप्रवणता पर कुछ कविताएँ लिखी है। इन कविताओं में उनके जीवन एवं काव्य के विषय में गरिमा को प्रतिपादित किया है। कालिदास की कृतियों में भावाभिव्यञ्जना विलक्षण है तो भाषा की प्रासादिकता सम्मोहित किये बिना नहीं रहती है। संस्कृत वाङ्मय में कालिदास का नाम अनन्वय है। कवि कालिदास श्रृंगार के कवि है। प्रकृति–चित्रण में मनोविश्लेषण उनकी विशेषता है। विश्वजनीन साहित्यिक चेतना इन्हें विश्व कवि के रूप में

स्वीकारती है। महाकवि कालिदास साहित्य जगत में शिरोमणि है अर्थात् सर्वश्रेष्ठ है। प्रो. पाण्डेय ने भी कवियों में शीर्षस्थान कालिदास को देते हुए 'कालिदासः शिरोमणिः' शीर्षक कविता के माध्यम से अपनी भावाञ्जलि समर्पित करते हुए कहा है–

"वाणीविलाससंसारे प्रदीप्तकवितारके।
चन्द्र इव यशो लेभे कालिदासो महाकविः।।"[22]

'सुरभारती' कविता में गीर्वाणवाणी की गरिमा के माहात्म्य को बताया गया है। यह भारती देश में ही नहीं अपितु विश्व में मानव संदेश प्रसारित करने में सक्षम है। यह धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीयता, सत्य, अहिंसा, सम्पूर्णता, जातिवाद, तुच्छता–समाप्ति, सदाचार, दहेज उन्मूलन एवं आतंकवाद खण्डन की समर्थक है तथा इसके माध्यम से राष्ट्र को उन्नत बनाया जा सकता है–

"आतङ्कवादनाशाय विश्वे सर्वैः प्रयत्यते।
शक्ता तत्सफलीकर्तुं भारते सुरभारती।।"[23]

'शंकराचार्यः' कविता में कवि ने शंकराचार्य के प्रति भक्ति भाव प्रकट करते हुए कहा है कि जिन शंकराचार्य ने न केवल संस्कृत भाषा की अपितु भारतीय संस्कृति की भी रक्षा की तथा राष्ट्र के गौरव की वृद्धि के लिए जिन्होंने हमेशा सद्शिक्षा प्रदान की उन शंकराचार्य को मैं नतमस्तक होकर प्रणाम करता हूँ। कवि ने शंकराचार्य के जीवनलक्ष्य की सार्थकता एवं गुणवत्ता को वर्णित करते हुए उनकी स्तुति की है, जो सुधीजन तथा त्यागमय तपोनिष्ठ के प्रति अञ्जलि है–

"संस्कृतं रक्षितं यैस्तु संस्कृतिश्चापि रक्षिता।
राष्ट्रगौरववृद्धयर्थं दत्ता सत्प्रेरणा सदा।।"[24]

'सारस्वत–सौरभम्' के पद्यपुष्पगुच्छ में कई मुक्तक कविताओं में कवि देश व समाज की विद्रुपताओं व विसंगतियों का चित्रण करते हुए चिन्ता शोक दैन्य आदि विविध भावों के माध्यम से अपनी सम्वेदना प्रकट की है। अतः विविध भावों से युक्त कुछ उदाहरण निम्न प्रकार है–

उत्साह भाव

"सुभाषभगताऽऽजादै र्विहितं नरपुङ्वैः।
देशस्वाधीनता प्राप्त्यै स्वप्राणानां विसर्जनम्।।"[25]

यहाँ पर सुभाषचन्द्र बोस, भगतसिंह तथा चन्द्रशेखर आदि क्रान्तिकारियों का स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु उत्साह भाव का चित्रण हुआ है।

चिन्ताभाव

"क्रियते यदि दृष्टिपातः,
द्वैधीभावः सदैव जातः
अतः परैः शासित नित्यं
पृच्छतु नाम तदादित्यं
राष्ट्र जातं परतन्त्रम्।
भारतं नाम स्वतंत्रतम्"[26]

यहाँ कवि ने व्यंग्य प्रधान शैली का प्रयोग करते हुए चिन्ता भाव को अभिव्यक्त किया है। इसी तरह 'दुरवस्था संस्कृतस्य' कविता के माध्यम से कवि ने संस्कृत भाषा की वर्तमान दुर्दशा पर शोक भाव को प्रकट करते हुए संस्कृत की दीन–हीन दशा पर चिन्ता भाव व्यक्त किया है–

"सकलसुजनभाषा देववाणीहदेशे,
पटुबटुभिरधीता सा न दृष्टा क्व याता।
जठरभरणलग्नैः साम्प्रतं स्वीकृताऽऽस्ते,
जनमतमिति भाषा पाठपूजाजपानाम्।।"[27]

दैन्य भाव

"पराणं शासनेनात्र देशदुर्भाग्यमागतम्।
स्वार्थसमीहकैः सर्वैः परवस्तु ह्युपेक्षते।।"[28]

यहाँ पर स्वार्थ भावना के कारण देश के परतन्त्र हो जाने पर देश की दैन्य दशा का वर्णन कवि ने किया है।

इस प्रकार निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि कवि ने अपनी कृतियों में शृंगार, वीर, करुण प्रभूति रसों का वर्णन करते हुए रति विषयक भाव या भक्ति भाव को प्रधानता दी है। हास्य, रौद्र, भयानक, वीभत्स प्रभृति रसों का प्रयोग कवि ने प्रायः नहीं किया है। कवि या तो समसामयिक समस्याओं से व्यथित जान पड़ते है। अतः उन्होंने अपने शोक भाव को प्रकट करने के लिए करुण रस का प्रयोग किया है। कुछ प्रसंग ऐसे भी है जहाँ कवि ने वर्तमान समाज तथा राष्ट्र की अवस्था पर चिन्ता तथा दैन्य भाव को अभिव्यक्त किया है। अतः कवि ने विविध रसों एवं भावों की कल्पना की है जिसके कारण यह रचना सहृदयाह्लादक है।

4.2 गुण योजना

"उत्कर्षहेतवः प्रोक्ता गुणालङ्काररीतयः।"[29]

कविराज विश्वनाथ अपने काव्य साहित्यदर्पण में गुण का स्वरूप लिखते है कि गुण, अलंकार और रीतियाँ काव्य की उत्कृष्टता के कारण कहे गये है। जिस प्रकार शौर्य आदि गुण, कटक कुण्डलादि अलंकार और अङ्गरचनादि मनुष्य के शरीर के द्वारा उसकी आत्मा की उत्कृष्टाता को करने वाले होते है। उसी प्रकार माधुर्यादि गुण, उपमादि अलंकार और वैदर्भी आदि रीति काव्य के शरीर शब्द और अर्थ के द्वारा काव्य के आत्मभूत रस का उत्कर्ष करते हुए काव्य के उत्कर्षक कहलाते है।

गुणों की स्थिति आचार्य मम्मट ने रस रूप में स्वीकार की है। गुणों में रस की स्थिति स्पष्ट करने के लिए आचार्य मम्मट ने आत्मा का दृष्टान्त दिया है। उनका कथन है कि जिस प्रकार शूरता आदि गुण आत्मा में नियमतः रहते है उसी प्रकार माधुर्य, ओज, प्रसाद आदि गुण काव्य के आत्मभूत रस में नियमपूर्वक रहते हुए उसे उपकृत करते है, गुणों की स्थिति रसों से पृथक कभी नहीं रहती।

"ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादयः इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।।"[30]

आचार्य वामन के अनुसार गुण काव्य के अन्तरंग तत्त्व है। अर्थात् गुण काव्य में शोभा को उत्पन्न करते है।

"काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्माः गुणाः।"[31]

अतः गुणों की सामान्य परिभाषा यह दी जा सकती है कि काव्य में उसके आत्मभूत रस को उत्प्लावित करने वाले और इस प्रकार काव्य में शोभा का साधन करने वाले जो धर्म है उनकी संज्ञा गुण है।

गुणों की संख्या के विषय में प्राचीन आचार्यों में मतैक्य का अभाव ही रहा है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में गुणों की संख्या 10 बताई है। आचार्य भामह ने गुणों की संख्या तीन मानी है 1. माधुर्य 2. ओज और 3 उभयगुण। आचार्य कुन्तक ने गुणों के दो प्रकार माने है–विशिष्ट तथा साधारण। विशिष्ट गुण चार है 1. माधुर्य 2. प्रसाद 3. लावण्य 4. आभिजात्य। साधारण गुण दो है– 1. औचित्य 2. सौभाग्य। इस प्रकार प्राच्य आचार्यों में गुणों की संख्या व स्वरूप के विषय में एकता व निश्चितता का अभाव है किन्तु आनन्दवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ आदि नवीन ध्वनिवादी आचार्यों ने गुणों की संख्या तथा स्वरूप को सुव्यवस्थित किया। उनके अनुसार गुणों की संख्या तीन है।

"माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुर्नदश।"[32]

इन्हीं गुणों के सन्दर्भ यदि प्रो. पाण्डेय की कृतियों का अध्ययन किया जाए तो प्रसाद गुण कवि के सर्वाधिक रूचिकर गुण के रूप में उभर कर सामने आता है। परन्तु जहाँ कहीं भी श्रृंगार या करुण रस की अभिव्यक्ति हुई है वहाँ प्रसंगानुकूल ही भाषा में माधुर्य गुण का समावेश हुआ है। कुछ प्रसंग ऐसे भी है जहाँ राष्ट्र प्रेम की भावना व्यक्त हुई है। अतः वहाँ वीररस का प्राधान्य होने के कारण यत्र–तत्र ओजगुण भी दिखलाई पड़ता है।

(i) माधुर्य गुण

प्रो. पाण्डेय रचित 'सारस्वत–सौरभम्' में 'माधवः' शीर्षक से लिखी गई कविता कवि के बुद्धि कौशल एवं व्याकरण के गम्भीर ज्ञान की परिचायिका है। कवि ने श्लेषालंकार का सफल प्रयोग किया है। एक पक्ष में भगवद् भक्त के प्रति और दूसरी ओर नायिका के प्रति कहा गया है। इस कविता में नायिका पक्ष में माधुर्य गुण का पूर्णतया उत्कृष्ट रूप विद्यमान है।

"लिङ्गेन साक्षादनुभूयसे त्वं,
प्रीतिर्मदीयाऽस्ति मदातिरेके।
सुखोपलब्ध्या चलतिर्वराङ्गे,
तत्वं गतिर्माधव! किं मम स्याः।।"[33]

अतः माधुर्य गुण का प्रयोग कवि ने अल्प स्थानों पर किया है।

(ii) ओज गुण

प्रो. पाण्डेय रचित 'राष्ट्ररक्षणम्' व 'सारस्वतसौरभम्' के 'राष्ट्रीयम्' में वीर रस का प्रधान्य होने के कारण ओज गुण दिखलाई देता है। कवि ने 'राष्ट्ररक्षणम्' में मेदपाटाधिपति महाराणा प्रताप की साहसिकता का परिचय दिया है। यह ऐतिहासिक कथानक देशकाल तथा भावाभिव्यक्ति से ओतप्रोत है। नेपथ्य राष्ट्रीय भावना युक्त है।

"प्रचण्डशूरवीर हे! विधेहि राष्ट्ररक्षणम्।
विधेहि धीरवीर हे! स्वकीयराष्ट्ररक्षणम्।
विधेहि राष्ट्ररक्षणम्।
मातृ–भूमिवन्दनं मदेकधर्मसंश्रुतम्।
आत्मराष्ट्ररक्षणं त्वदेक कर्मसङ्गतम्।।"[34]

कवि पाण्डित्यप्रदर्शन, प्रकृति–चित्रण एवं कवि–वैशिष्टय तक ही सीमित नहीं है। 'सारस्वत–सौरभम्' के 'राष्ट्रियम्' खण्ड में छह कविताएँ राष्ट्रवाद से ओतप्रोत है। प्रत्येक मानव का

अपने राष्ट्र के प्रति भक्ति ही प्रथम धर्म है। भारतीय स्वतन्त्रता के संघर्ष के साथ राष्ट्रिय विचारधारा के प्रति गौरव प्रदर्शित करते हुए कवि ने 'बारहठसिंहत्रयी' शीर्षक से तीन राष्ट्रीय व्यक्तित्व तथा बलिदान की गरिमा को गंधायित किया है। कवि ने प्रस्तुत किया है–

"राजस्थली–देवपुराभिधाने,
ग्रामे श्रुते बारहठान्ववाये।
सिंहत्रयी याऽऽप्तवती प्रसूतिं,
स्वातन्त्र्य संग्राम पुरोहिता सा।।"[35]

'गणतन्त्रात्मकं राज्यम्' कविता में कवि ने स्वतन्त्रता संग्राम और 'भारत गणराज्य' के लिए विनम्र श्रद्धा अर्पित करते हुए संवैधानिक सत्ता पर अपने शब्द प्रस्तुत किये है–

"पाश्चात्यशासने तस्मिन्
दूरीभूते च भारतात्।
गणतन्त्रात्मकं राज्यं,
स्थापितं नीतिकोविदैः।।"[36]

कवि ने श्री सुभाषचन्द्र बोस एवं महात्मा गाँधी के आन्दोलन एवं संघर्ष की कथा की ओर दिग्दर्शन कराया गया है। स्वतन्त्र भारत में राजनैतिक भ्रष्टाचार ने आम आदमी तक कदाचरण को जन्म देकर स्वातन्त्र्य अर्थ को भी बदनाम कर दिया है।

"पठ्यते नित्यं समाचारः सर्वत्रैव भ्रष्टाचारः
जायते परस्परमाक्षेपः कथं भवेद् वै प्रत्याक्षेपः।
एतादृक् किं लोकतन्त्रम्। भारतं नाम स्वतन्त्रम्।।"[37]

कवि का 'विधेहि राष्ट्ररक्षणम्' एक आह्वान गीत है, जो भारतीय सैनिक के आत्मसम्मान का प्रतीक है। राष्ट्र रक्षकों के अपूर्व शौर्य तथा दृढ़ संकल्प शक्ति का परिचायक है। कवि इन्हीं के प्रति निष्ठा व्यक्त करता हुआ संकल्प को दुहराता है–

"आङ्ग्ललोकपीडिता जनाः त्वयैव रक्षिताः
चीनपाकसैनिकाः पुरा त्वयैव मर्दिताः।
सीम्नि शत्रुचारिणः शृणु प्रगुप्तमर्म रे!
देशभूमि रक्षितः! स्मर त्वदीयकर्म रे!
प्रचण्ड शूरवीर हे! विधेहि राष्ट्ररक्षणम्।
विधेहि धीरवीर हे! मदीयराष्ट्ररक्षणम्।।

विधेहि राष्ट्ररक्षणम्।।"[38]

यह कविता स्वतन्त्रता को समर्पित है जो प्रत्येक राष्ट्रवादी का अहं है। स्वराज जीवन का अधिकार है, प्रत्येक भारतीय स्वतन्त्रता का प्रेमी है। प्रो. पाण्डेय ने इस भाव की सौरभ बिखेरते हुए कहा है–

"राष्ट्रियं सकललोकविश्रुतं,
गौरवं भुवि यया प्रतन्यते।
मानवाश्च मुदिताननाः सदा,
शोभते जगति सा स्वतन्त्रता।।"[39]

(iii) प्रसाद गुण

प्रो. पाण्डेय रचित 'सारस्वत–सौरभम्' में प्रसादगुण का ही प्राचुर्य विद्यमान है। प्रसादगुण का अभिनिवेश भाषानुकूल एवं प्रसंगानुकूल होने के कारण हृदयाहलादक बन गया है। 'हले शकुन्तले' कविता युगीन स्थितियों के साथ सम्पृक्त है। यह पूर्णतया शृंगार रस प्रधान है। कवि ने इसमें प्रियतमा शकुन्तला के लावण्य का चित्रण करते हुए नायक की मनोव्यथा का मनोरम चित्रण प्रसाद गुण के माध्यम से किया है–

"अपरः परः किं दासः?
अधरः धरः किं न्यासः?
न यदा तदा किं व्रीडा
प्रकरोतु कामं क्रीडाः?
कामं कम्पितकुण्डले! हले शकुन्तले!
आयाहि, आयांहि, पाहि माम्।
त्राहि माम्, पाहि माम्।"[40]

'लोभस्य फलमेव मृत्युः' में डॉ. पाण्डेय ने हितोपदेश की 'अतिलोभो न कर्त्तव्यः' कथा को पद्यरूप में निबद्ध कर अपनी काव्य शक्ति का परिचय दिया है। प्रसादगुणोपेत इस कविता के माध्यम से कवि ने कहा है कि अति लोभ नहीं करना चाहिए।

"अतिलोभो न कर्त्तव्य इत्युक्तं नीतिकोविदैः।
अतिलोभपरो मृत्युं गच्छति जम्बुकोपमम्।।"[41]

'स्वागत–गीतिका' से दो कविताएँ है। जिनमें हृदय को समर्पण की सौरभ है। इन दोनों में भी प्रसाद गुण विद्यमान हैं इन पद्यों के श्रवण मात्र से शब्दों से सहज रूप से अर्थ की प्रतिती हो रही है–

'गायं गायं सर्वे फुल्ला, धन्या भूमिर्धन्या मेला।
भूयो भूयो योज्या खेला, वारं वारं पुण्या वेला।।
आगतानां स्वागतं प्रतिपलं कुर्मः स्वागतं कुर्मः।'[42]

कवि भारतीय पर्वों के उल्लास से आह्लादित है। 'होलिका रे सखे!' में प्रो. पाण्डेय ने पर्व के आनन्दमय महोत्सव का चित्र प्रस्तुत किया है। होली के अवसर पर यौवन उमंग से परिपूर्ण है। प्रसाद गुण शैली में सहजता का चित्रण अतीव रमणीय बन गया है।

"होलिका रे सखे! होलिका रे सखे!
मन्यते भारते होलिका रे सखे!!
गायिका नायिका गायको नायकः,
लासिका राधिका लासको मोहनः।
बालकाः साधका गोपिकाऽऽराधिका
नैकरागाम्बुधौ मज्जिता हर्षिताः।।"[43]

'कोऽयं तस्या अपराधः' में प्रो. पाण्डेय ने नारी सम्मान का स्पर्श कर इस वेदना को गम्भीरता से लिया है। नारी को अपराधिनी कहना क्या प्रामाणिक आयाम है–

"कोऽयं तस्या अपराधः?
पुत्रं यदि सा न सूते, बालिकाततिञ्च तनुते।
भाग्याधीना किं कुरुते तदपि सापराधां मनुषे।।"[44]

डॉ. पाण्डेय विरचित 'सारस्वत–सौरभम्' के पद्य भाग में यद्यपि प्रसादगुण का प्राचुर्य है तथापि उनकी मुक्तक कविताएँ (कोऽयं तस्या अपराधः?, लोभस्य फलमेव मृत्युः, रामरसं पिब रे, सिन्धोर्बाला, स्वागतगीतिका, स्वागतगीति, देवि! दिव्यभारती! वन्दना, हले शकुन्तले आदि) अन्य गुणों की विद्यमानता से भी अछूती नहीं है, कवि ने अवसरानुकूल अन्य गुणों का भी यत्र–तत्र सफल प्रयोग किया ही है। परन्तु कवि का आकर्षण प्रसाद गुण युक्त रचना में ही परिलक्षित होता है।

4.3 रीति योजना

मनोगत भावों को परहृदय संवेद्य बनाने का प्रमुख साधन भाषा है और भाषा की क्रमबद्धता या रचना विधान को ही सम्भवतः शैली कहा जाता है। अतः सामान्यतः 'भाषा–शैली' से ऐसा प्रयोग

दृष्टिगोचर होता है कि काव्य में मनोगत भावों को मूर्त रूप प्रदान करने का प्रमुख एवं सहज साधन 'शैली' है।

"शब्दार्थो सहितौ काव्यम्" के परिप्रेक्ष्य में यदि अर्थ काव्य की आत्मा है तो शब्द अर्थात् शैली काव्य का शरीर है। अतः भावों की मनोहरता, स्थिरता और सूक्ष्मता शैली पर ही निर्भर होती है। किसी कवि या लेखक की शब्दयोजना, वाक्यांशों का प्रयोग, उसकी बनावट और ध्वनि आदि का नाम ही 'शैली' है। काव्यशास्त्र के विद्वानों ने शैलियों अथवा रीतियों का विशिष्टता के साथ प्रतिपादन किया है। जैसाकि वामन ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार सूत्र' में कहा है कि–

"विशिष्टा पद संघटना रीतिः। विशेषो गुणात्मा।"

रीति का सर्वप्रथम प्रयोग भामह ने प्रस्तुत किया किन्तु उन्होंने रीति के स्थान पर मार्ग शब्द का प्रयोग करते हुए अपने काव्यग्रन्थ में दो प्रमुख मार्गों का विवेचन किया है। भामह के अनन्तर दण्डी ने रीतियों की सुविशद व्याख्या प्रस्तुत की, किन्तु उन्होंने भी मार्ग शब्द का प्रयोग करते हुए कहा कि सूक्ष्मभेद के कारण काव्य रचना के मार्ग अनन्त है।

"अस्त्यनेको गिरां मार्गः सूक्ष्मभेदः परस्परम्"[45]

दण्डी ने भी भामह अभिमत वैदर्भ और गौडीम दो मार्ग ही माने है तथा भरतप्रोक्त दश काव्यगुणों को वैदर्भी के प्राण माने है और गौड़मार्ग में इनका वैपरीत्य सिद्ध किया है।

"श्लेषः प्रसादः समता माधुर्य सुकुमारता।
अर्थव्यक्ति रुदात्वमोजः कान्तिः समाधयः।।"
"इति वैदर्भमार्गस्य प्राणाः दशगुणा स्मृताः।
एषां विपर्ययः दृश्यते गौड़वर्त्मनि।।"[46]

दण्डी के पश्चात् वामन ने मार्ग के स्थान पर रीति शब्द का प्रयोग किया। रीतितत्व का साङ्गोपाङ्ग वर्णन प्रस्तुत करते हुए वामन ने रीति को काव्य का आत्मतत्व स्वीकार किया। इन्होंने रीति और गुणों का नित्य सम्बन्ध स्थापित करके रस आदि का भी इनमें समावेश कर लिया।

"रीतिरात्माकाव्यस्य"।
"विशिष्टा पदरचना रीतिः।"[47]

वामन ने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रवर्तित दो मार्गों से अतिरिक्त एक नवीन पाञ्चाल मार्ग का संयोजन करते हुए रीतियों की संख्या तीन कर दी।

"सा त्रेधा वैदर्भी गौडीया पाञ्चाली चैति।"[48]

वामन के पश्चात् आचार्य रुद्रट ने रीति को भौगोलिक बन्धन से मुक्त करते हुए एक अन्य लाटी रीति का प्रयोग किया। रुद्रट ने समास के आधार पर रीतियों का विभाजन प्रस्तुत किया। उनके अनुसार समास से रहित रचना वैदर्भी रीति कहलाती है।

"वृत्तेरसमासाया वैदर्भी रीति रेकैव।"[49]

दो तीन पदों के समास वाली रचना पाञ्चाली, पाँच या सात पदों के समास वाली रचना लाटी रीति और समास बहुल रचना गौड़ी रीति है।

"द्वित्रिपदा पाञ्चाली लाटीया पञ्च सप्त वा यावत्
शब्दाः समासवन्तो भवति यथाशक्ति गौडीया।"[50]

रुद्रट के पश्चात् राजशेखर ने रीतियों का आधार वचन विन्यास क्रम बताया है। तत्पश्चात् वक्रोक्तिकार कुन्तक ने पनुः मार्ग शब्द का प्रयोग करते हुए कवि स्वभाव के आधार पर तीन मार्गों सुकुमार, मध्य और विचित्र का वर्णन किया है।

"सम्प्रति तत्र ये मार्गाः कविप्रस्थानहेतवः।
सुकुमारो विचित्रश्च मध्यमश्चोभयात्मकः।।"[51]

ध्वनिवादी आचार्यों में साहित्यदर्पणकार ने रीतियों का विशदवर्णन प्रस्तुत करते हुए कहा है कि रसों का उपकार करने वाली रीतियाँ चार है। वैदर्भी, गौड़ी पाञ्चाली और लाटी।

"उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा।
वैदर्भी चाऽथ गौड़ी च पांचाली लाटिका तथा।।"[52]

विश्वनाथ ने रीतियों के मत में ध्वनिवादी आचार्यों और रीतिवादी आचार्यों में समन्वय करने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार माधुर्य के अभिव्यञ्जक वर्णों से पूर्ण, असमस्त अथवा स्वल्प समास युक्त रचना वैदर्भी रीति है।

"माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्ति र्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।।"[53]

ओजगुण के अभिव्यञ्जक वर्णों से पूर्ण समासप्रचुर, उद्भट रचना गौड़ी रीति है।

"ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः समासबहुलगौडी।"[54]

माधुर्य और ओज के अभिव्यञ्जक वर्णों को छोड़कर अन्य अवशिष्ट वर्णों अर्थात् प्रसाद के अभिव्यञ्जक वर्णों से युक्त रचना पाञ्चाली रीति है।

"वर्णैः शेषैः पुर्नद्धयोः समस्त पञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिकामता।।"[55]

जिसमें वैदर्भी और पाञ्चाली दोनों रीतियों की विशेषता विद्यमान हो वह लाटी रीति है।

"लाटी तु रीति वैदर्भी पाञ्चाल्योरन्तरस्थिता।"[56]

डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्' में प्रसाद गुण से ओत–प्रोत वैदर्भी शैली का प्रयोग किया है। सरलता, सुलभता, सहजता एवं माधुर्य से युक्त वैदर्भी शैली का अन्यतम उदाहरण कवि ने प्रस्तुत किया है–

"दीपावल्यां पुंसां चित्तं
कस्मान्न स्याद्धर्षे मग्नम्।
प्रेक्ष्या सर्वैस्तस्यां रात्रौ
सज्जीभूता विद्युन्माला।।"[57]

रामभक्ति का संदेश कवि ने वैदर्भी शैली में इस प्रकार दिया है।

"साधुसंगे रामरंगे, अंगमंग! रज्य रे!
कामरसं त्यज बन्धो! रामरसं पिब् रे।।"[58]

कवि ने सुभाष, भगतसिंह आदि महापुरुषों के त्याग को वैदर्भी शैली में वर्णित करते हुए उनके महात्म्य की प्रशंसा अत्यन्त सरल एवं मधुर रूप में की है।

"सुभाषभगताऽऽजादै र्विहितं नरपुङ्गवैः।
देशस्वाधीनताप्राप्त्यै स्वप्राणानां विसर्जनम्।।"[59]

महाकवि माघ की प्रशंसा कवि ने वैदर्भी शैली में निबद्ध पद्य के माध्यम से इस प्रकार की है।

"वधं कृत्वा तु कुख्याताः सर्वे भवन्ति मानवाः।
शिशुपालवध कृत्वा माघः सुख्यातिमागतः।।"[60]

इस प्रकार हम कह सकते है कि 'सारस्वत–सौरभम्' में डॉ. पाण्डेय ने विविध विषयों पर आधारित मुक्तकों का संग्रह किया है विविध विषयों की अभिव्यक्ति करने के लिए कवि की भाषा में भी तदनुरूप ही विविधता है अतः इस काव्य संग्रह की भाषा में जहाँ एक ओर सरलता, सहजता व स्पष्टता है। वहीं दूसरी ओर विरोधाभास, यमक, श्लेष प्रभृति अलंकारों से युक्त होने के कारण भाषा

में कहीं–कहीं क्लिष्टता सी जान पड़ती है। डॉ. पाण्डेय ने वैदर्भी रीति को ही अपने मुक्तकों में प्रधानता दी है। अतः गौड़ी व पाञ्चाली रीति के दर्शन इस कृति के मुक्तकों में प्रायः कम होते है। जहाँ वीर रस का प्रसंग है वहाँ ओजगुण की प्रधानता होने पर भी भाषा में सरलता, सहजता की प्रधानता होने पर भी भाषा में सरलता, सहजता व सुलभता है, कहीं पर भी दीर्घ समासयुक्त उग्र पदों का संयोजन नहीं है जो कि गौड़ी रीति की विशेषता है। यह रचना समास युक्त होते हुए भी दीर्घ समासा नहीं है, यहाँ सर्वत्र अल्प समासयुक्त पदों की प्रधानता है। व्यञ्जनों की मधुरता है तथा रचना का लालित्य सर्वत्र विद्यमान है। जो कि वैदर्भी रीति की ही विशेषता का द्योतक है अतः कवि की रूचि वैदर्भी रीति युक्त पदों की संघटना में ही अधिक दिखलाई पड़ती है।

अतः इस कृति में कवि ने सर्वत्र सरलता, सुलभता, सहजता व लालित्य पूर्ण भाषा शैली का सन्निवेश किया है जो काव्य के मुख्य प्रयोजन रसास्वादन की सिद्धि में अत्यन्त सहायक है।

4.4 अलंकार योजना

'अलंकरोति अनेन इति अंलकारः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'अलं' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से करण या भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय करने पर अलङ्कार शब्द निष्पन्न होता है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार काव्य की शोभा बढ़ाने वाले तत्त्व को अलङ्कार कहा जाता है।

"काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते।"[61]

जिस प्रकार कटक, कुण्डलादि आभूषण शरीर को विभूषित करते है अतः वे अलङ्कार है। उसी प्रकार काव्य में अनुप्रास, उपमादि काव्य के शरीर भूत शब्द और अर्थ को अलङ्कृत करते है इसलिए वे अलङ्कार कहलाते है। अतः आनन्दवर्धन ने कहा है–

"अङ्गाश्रितास्त्वलङ्काराः मन्तव्याः कटकादिवत्।"[62]

रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भरत के पश्चात् आचार्य भामह को अलङ्कार सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। भामह के अनुसार जिस प्रकार सुन्दर होते हुए भी कामिनी का मुख बिना भूषणों के शोभायमान नहीं होता उसी प्रकार सरस काव्य की शोभा अलङ्कारों से होती है।

"न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।"[63]

किन्तु वामनाचार्य ने 'सौन्दर्यमलङ्कार' कहकर अलङ्कार शब्द भी व्यापकता को सिद्ध किया। अप्पयदीक्षित ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि सभी अलङ्कार हृदय को प्रिय लगने के कारण काव्य की

शोभा बढ़ाते हुए अलङ्कार के रूप में मान्य नहीं होते हैं, केवल 'गोसदृशी गवयः' कहने से उपमा नहीं बनती। अतः सौन्दर्य बोध को काव्य की आत्मा कहने में सभी आचार्य एकमत है। अलङ्कार अलङ्कार्य का केवल उत्कर्षाधायक तत्त्व होता है। स्वरूपाधायक या जीवनाधायक तत्त्व नहीं।

जो स्त्री या पुरुष अलङ्कार विहीन है वह भी मनुष्य है पर जो अलङ्कार युक्त है वह अधिक उत्कृष्ट समझे जाते है। इसी प्रकार काव्य में अलङ्कारों की स्थिति अपरिहार्य नहीं है, वे यदि है तो काव्य के उत्कर्षाधायक होंगे यदि नहीं है तो भी काव्य में कोई हानि नहीं है। अतः काव्यलक्षण में काव्यप्रकाशकार ने 'अनलङ्कृती पुनः क्वापि' का प्रयोग किया है, तथा अलङ्कार का लक्षण निम्न प्रकार दिया है। यथा–

"उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।"[64]

आचार्य विश्वनाथ अलङ्कार का स्वरूप निरूपित करते हुए अलङ्कार को शब्दार्थ का अस्थिर धर्म मानते है। यथा–

"शब्दार्थयोरस्थिराः ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत्।।"[65]

किन्तु अलङ्कारों को काव्य का अस्थिर धर्म मानने का सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं है। यह केवल ध्वनिवादी सम्प्रदाय का दृष्टिकोण है। अलङ्कार सम्प्रदाय अलङ्कारों को काव्य का अपरिहार्य तत्त्व समझता है। उनके मत में अलङ्कार रहित काव्य की कल्पना उष्णतारहित अग्नि के समान उपहास योग्य है। यथा–

"अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मात् अनुष्मणमनलं कृती।।"[66]

शब्द और अर्थ को आधार मानकर अलङ्कारों का विभाजन त्रिविध प्रकार से किया गया है। 1. शब्दालङ्कार, 2. अर्थालङ्कार, 3. उभयालङ्कार

यह वर्गीकरण शब्दवाच्यता के आधार पर है। जहाँ शब्द का परिवर्तन करके उसके स्थान पर अन्य पर्यायवाची शब्द रख देने पर अलङ्कार नहीं रहता है, वह शब्दालङ्कार है। वामन ने अनुप्रास और यमक दो शब्दालङ्कार माने है। जबकि मम्मट ने छः शब्दालङ्कारों का वर्णन किया है।

"वक्रोक्तिरप्यनुप्रासो यमकं श्लेषचित्रके।
पुनरुक्तवदाभासः शब्दालङ्कतयस्तु षट्।।"

जहाँ शब्द का परिवर्तन करके दूसरा अर्थ रख देने पर भी उस अलङ्कार की सत्ता बनी रहती है, वहाँ अर्थालङ्कार होता है।

जो अलङ्कार शब्द और अर्थ दोनों पर आश्रित होता है कहीं शब्दपरिवृत्ति सहत्त्व और कहीं शब्दपरिवृत्थसहत्त्व है वह उभयालङ्कार कहलाते हैं।

अलङ्कारों के विकासक्रम में जहाँ आचार्य भरत मुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र में चार अलङ्कारों उपमा, रूपक, दीपक और यमक का उल्लेख मिलता है। वहीं अग्निपुराण में इनकी संख्या चौदह हो गई तथा बाद में मम्मट, विश्वनाथ आदि के ग्रन्थों में इनकी संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई तथा सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम ग्रन्थ 'रस गंगाधर' में अलङ्कारों की संख्या 180 तक पहुँच गई।

काव्य का आत्मतत्व साहित्यचार्यों ने रस को माना है और अलङ्कार काव्य के शरीरभूत शब्द और अर्थ के सौन्दर्य में उत्कर्षाधान करते हुए रस के भी उत्कर्षाधायक होते है। इसलिए अलङ्कारों का प्रयोग काव्य में रस को प्रधान मानते हुए करना चाहिए तथा प्रयत्नपूर्वक गढ़े अलङ्कार रस के विघातक होते है। अतः अलङ्कार को अपृथक्यत्नसाध्य होना चाहिए। जैसा ध्वन्यालोककार ने कहा है–

"रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत्।
अपृथग्यत्ननिर्वित्यः सोऽलङ्कारो ध्वनौ मतः।।"[67]

डॉ. पाण्डेय ने अपने गद्य–पद्य नाट्यसंग्रह 'सारस्वत–सौरभम्' में बिना प्रयत्न अनायास प्रयुक्त भिन्न–भिन्न अलङ्कारों का भावानुरूप सुन्दर प्रयोग किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन अलङ्कारो का प्रयोग प्रो. पाण्डेय ने अपने रचना–चातुर्य को प्रदर्शित करने के लिए जान–बूझकर नहीं किया है अपितु स्वतः ही वे अलंकार उनकी भाषा–शैली में गुम्फित हो गये है। अलङ्कारों का वर्णन इस प्रकार है–

अनुप्रास

"अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।"[68]

अर्थात् स्वर की विषमता होने पर भी जो शब्द साम्य होता है। वह अनुप्रास अलङ्कार है। आचार्य मम्मट ने संक्षेप में लक्षण करते हुए कहा है 'जो वर्ण साम्य है, वही अनुप्रास है–वर्णसाम्यम्।

वर्णसाम्य की शब्दसाम्य है। क्योंकि समानता होती है। इस पद की व्युत्पत्ति भी यही अर्थ बताती है– अनु अनुगतं प्रकर्षेण आसनम् 'अनुप्रासः' अर्थात् स्वरवैसादृश्ये अपि व्यञ्जनसदृशत्वं वर्णसाम्यम्। वर्णसाम्य ही शब्दसाम्य है। क्योंकि अनुप्रास में कहीं वर्णों की समता होती है तो कहीं शब्दों की समानता होती है। इस पद की व्युत्पत्ति भी यही अर्थ बताती हैं– अनु अनुगतं प्रकर्षेण आसनम् 'अनुप्रासः' अर्थात् अनु=रसानुगतं वर्णानां प्रकर्षेण आसः = न्यासः। तात्पर्य यह है कि काव्य में जिस रस की व्यञ्जना की जा रही है उस अङ्गी रस के पोषण में संलग्न वर्णविन्यास को अनुप्रास कहा जाता है।

डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्' में अनुप्रास अलंकार का प्रचुर प्रयोग किया है। देवि! दिव्यभारति! वन्दना, हले शकुन्तले!, दुरवस्था संस्कृतस्य, नित्यं ग्राह्या सत्या शिक्षा, स्वागतगीतिका, होलिका रे सखे, रामं विना का गतिः? आदि ऐसी मुक्तक कविताएँ हैं जो पूर्णतया अनुप्रास अलंकार से निबद्ध है। कवि ने प्रकृति की शोभा को अनुप्रास अलंकार में वर्णित किया है यथा विहंगवीथी, पुष्करम्, कलहंस, हिमालयः मधुमास कविता में सर्वत्र अनुप्रास अलंकार की छटा बिखरी हुई है।

"पद्मासने वाञ्छति संस्थितिं या, वीणानिनादेन करोति बोधम्।
जाड्यान्धकारं जगतो विलुप्याऽऽशीर्दानमाविष्कुरुते जनेभ्यः।।"[69]

प्रस्तुत पद्य में सरस्वती की स्तुति की गई है। यहाँ द्वयर्थक शब्दों के प्रयोग होने से यह अनुप्रास अलङ्कार है। इसी तरह स्वाभाविक रूप से अनुप्रास की शोभा देवी–स्तुति परक निम्नाकिंत पद्य में देखने को मिलती है–

"कल्याणि! कारूण्यकृपाकटाक्षं, विधेहि मातर्जगदम्ब नित्यम्।
दिव्यं स्वरूपं तव देवि! वीक्ष्य, श्रद्धाविनम्रोऽहमतीव तुष्टः।।"[70]

प्रथम पंक्ति में ककार की चार बार आवृत्ति से अनायास समुपस्थित अनुप्रास से काव्य की श्रवणीयता आनन्द देने वाली व काव्य शोभा को बढ़ाती है।

"नवरसपरिपूर्णं शब्दवाच्यप्रतीतं,
स्वकृतिषु कमनीयं काव्यकेलिप्रकर्षम्।
ध्वनयति सकलं यो भारतीभासमानः,
कविकुलगुरुवर्य्यः कालिदासो गुरुर्मे।।"[71]

प्रस्तुत पद्य में प्रथम चरण में 'र' व 'प' वर्ण की द्वितीय चरण में 'क' वर्ण की तृतीय चरण में 'भ' वर्ण की तथा चतुर्थ चरण में 'क' वर्ण की आवृत्ति होने से यह अनुप्रास अलंकार का उदाहरण है।

यमक

"सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यजनसंहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते।।"

अर्थात् अर्थ होने पर भिन्न अर्थ वाले स्वरों और व्यञ्जनों के उसी क्रम से आवृत्ति को यमक कहा जाता है। डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्' में यमक अलंकार का अत्यनत मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है। डॉ. पाण्डेय की साहित्यिक यात्रा का आरम्भ 'पुष्कर' शब्द से हुआ है। यह इनकी सर्वप्रथम रचना है–

"पुष्करे पुष्करं जातं त्रोटितं पुष्करेण तत्।
पुष्करे तेन सङ्कीर्णं" पुष्करेण पुनर्हृतम्।।"[72]

'पुष्कर' शब्द के अनेक अर्थ है– तीर्थराज पुष्कर, कमल, हाथी की सूण्ड का अग्रभाग एवं विहग। 'हिमालयः' मुक्तक कविता में तो सर्वत्र ही यमक ही अत्यन्त मनोरम छटा है। यथा–

"बुधालयो यो विबुधोलयो यः
सुरालयो यः श्वसुरालयो यः।
वरालयो यो विवरालयो यो,
हिमालयो यो महिमालयौऽसौ।।"[73]

'वन्दना' मुक्तक कविता के 'गौ' स्तुति तथा 'विनायक' स्तुति में यमक का प्रयोग दर्शनीय है। यथा–

"विनायको व्यालविनायको यो, विनायको लोकहिताय लोके।
विनायकोऽभूत्करुणार्द्रचेता, विनायको लोकजनस्य जात।।"[74]

इस पद्य में विनायक शब्द की पञ्चधा आवृत्ति हुई है जिनका अर्थ–विघ्नरूपी सर्पों के लिए (विनायक व्याल) गरुड़ जो (विनायक) गणेश (विनायक) मनुष्यों के हित के लिये संसार में करुणार्द्र चेता गौतम (विनायक) रूप में संसार के गुरु बन गये। 'नित्य ग्राह्या सत्या शिक्षा' में कवि ने कई स्थानों पर यमक की सृष्टि की है। यथा–

"काऽलङ्कारे सा लङ्का रे!, का सीता रे! काशी तारे।
का सारा मा रामारामा, सा का रामा साकारा मा।।"[75]

अतः हम कह सकते है कि कवि ने यमक अलङ्कार का स्वतन्त्र प्रयोग करते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि वे यमक अलङ्कार का प्रयोग करने में कुशल एवं सिद्धहस्त है।

श्लेषः

"श्लिष्टै पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते।"

अर्थात् श्लैष युक्त पदों से अनेक अर्थों का कथन होने पर श्लेष अलङ्कार होता है। श्लेष पद शिलष् धातु से अधिकरण में 'घञ्' प्रत्यय करने पर 'सुँ' की प्राप्ति होकर बना है। इसका अर्थ है– 'श्लिष्यन्ति अर्थाः यस्मिन् सः' जिसमें कई अर्थ चिपके रहते हैं। जहाँ एक श्लोक या वाक्य में एक, दो या अधिक पद अनेक अर्थों से युक्त होते हैं। वहाँ श्लेष अलंकार होता है। यथा–

"गोर्गावो गवि गो–तुल्या, गोभि स्तुल्याः पुनर्गावि।
गावो गावो गवि ध्येया, गोभि स्तुत्याः समैरपि।।"[76]

यहाँ पर कवि ने 'गौ' शब्द के तीन अर्थ प्रस्तुत किए है। गौर का प्रथम अर्थ है 'सूर्य' अर्थात् सूर्य की किरणें स्वर्ग में वज्र 'हीरे' के समान चमकती है और पृथ्वी पर आँखों के समान (कार्य करती) है। गौर का दूसरा अर्थ 'गाय' व तीसरा अर्थ 'बैल' अर्थात् पृथ्वी पर गाय व बैल दोनों ही ध्यान देने अर्थात् रक्षा करने योग्य है तथा वाणी से स्तुति करने योग्य है।

प्रो. पाण्डेय ने 'माधवः' नामक कविता में सर्वत्र श्लेषालङ्कार का प्रयोग करते हुए अपने बुद्धि कौशल व व्याकरण ज्ञान का गम्भीर परिचय दिया है। यथा–

"ख्याता कृतेष्टिः सकलेऽपि लोके,
लब्धा मया दृष्टिरभूतपूर्वा।
अजोऽसि साक्षादनुभूतिगम्यः,
तत्त्वं गतिर्माधव! किं मम स्याः।।"[77]

प्रस्तुत पद्य में दो पक्ष है एक 'भगवद पक्ष' तथा दूसरा 'नायिकापक्ष' भगवद्पक्ष में 'इष्टि' का अर्थ है 'याग' तथा नायिकापक्ष में दृष्टि–इच्छा (त्वत् प्राप्ति कामना), 'इष्टि' का अर्थ भगवद्पक्ष में है। ज्ञानम् तथा नायिका पक्ष में है 'तवावलोकनम्' इसी प्रकार अजः का अर्थ भगवद् पक्ष में है, 'ब्रह्माविष्णुमहेशत्रिदेवस्वरूप' तथा नायिका पक्ष में है 'कामदेव स्वरूप'। अतः यहाँ पर श्लेष की योजना अत्यन्त प्रभावोत्पादक है।

इस प्रकार कवि ने 'माधवः' तथा 'मेघे माघे गतं वयः' दो कविताओं का पूर्णतया श्लेषालंकार युक्त श्लिष्ट रचना में भी सिद्धहस्त है।

स्वभावोक्तिः

"स्वभावोक्तिरसौ चारू यथावद्वस्तुवर्णनम्।"[78]

अर्थात् अतिशय चमत्कार के साथ वस्तु का यथावत् वर्णन–स्वभावोक्ति अलङ्कार कहा जाता है। 'स्वभावोक्तिः' पद का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है– स्वभावस्य प्रकृतस्य उक्तिः कथनम् अर्थात् स्वभाव यानि प्रकृत वस्तु का प्राकृतिक या स्वाभाविक वर्णन करना। 'चारू' का अर्थ है– चमत्कार–पूर्ण। 'यथावद्वस्तुवर्णनम्' का अर्थ है– जो जैसा है, उसका वैसा ही वर्णन करना। अतः जहाँ पर स्वाभाविक वर्णन होता है वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार है।

डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्' ˙ 'प्रकृति' खण्ड की सभी मुक्तक कविताओं में स्वभावोक्ति अलंकार का सहज एवं रमणीय प्रयोग किया है।

"विभाति सन्ध्यासमये मनोज्ञा, स्वनीडनिष्कासितचञ्चुभागा।

विचित्रवृक्षेषु विहङ्गवीथी, कलानि कान्तानि करोति या च।।"[79]

इस पद्य के माध्यम से कवि ने मनोरम सन्ध्याकाल एवं विचित्र वृक्षों व विहङ्गवीथी के सुन्दर कलरव का स्वाभाविक वर्णन किया है। 'कौतूहलं तनुते' कविता के माध्यम से कवि ने विरोधाभास अलंकार में वर्षा ऋतु का जो स्वभाविक चित्रण किया है वह सहज ही सहृदयों के मन को अपनी ओर आकृष्ट करने वाला है–

"कनककान्तिः किं कामिनी?
नहि नहि सा सौदामिनी!
नीलकण्ठं तर्पयन्ती
जीवाहारं पूरयन्ती
कौतूहलं तनुते घनान्धकारे।।"[80]

यहाँ पर कवि ने वर्षा ऋतु एवं उससे चमकने वाली विद्युत का स्वाभाविक चित्रण किया है। अतः यहाँ स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

उपमा

'साद्यर्म्यमुपमा भेदे'[81]

काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट के अनुसार उपमान और उपमेय का भेद होने पर भी उन दोनों के गुण, क्रिया आदि धर्मों की समानता का वर्णन किया जाए वहाँ उपमा अलङ्कार होता है।

अप्पयदीक्षित के अनुसार 'उपमा' एक नटी है जो अनेक भूमिकाओं में आकर काव्यमञ्च पर रसिकों का मनोरञ्जन करती है।

"उपमैका शैलूषी सम्प्राप्ता चित्रभूमिकभेदान्।
रञ्जयति काव्यरङ्गे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः।।"[82]

डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वत सौरभम्' में उपमा अलङ्कार का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। 'कालिदासः शिरोमणिः' कविता में कवि ने उपमा अलंकार में निपुण, कविकुलगुरु कालिदास के समान ही उपमा अलङ्कार का प्रयोग कर कालिदास की प्रशंसा की है। यथा–

"वाणीविलाससंसारे प्रदीप्तकवितारके।
चन्द्र इव यशो कालिदासो महाकविः।।"[83]

प्रस्तुत पद्य में कवि ने उपमेयवाची कालिदास की उपमानवाची चन्द्र से समानता व्यक्त की है। कवि ने कालिदास को चन्द्रमा के समान बताया है। अतः यहाँ उपमा अलंकार है। इसी तरह कवि ने 'प्रकृतिः' कविता के गंगा वर्णन प्रसंग में गंगाजल की सातिशय पवित्रता की समानता अमृत से की है। यथा–

"विष्णुपादप्रभूता या शिवशिरोविधारिता।
अमृतसदृशक्षीरा लोके गंगा विराजते।।"[84]

'प्रकृति' कविता में ही 'रात्रि' का स्वाभाविक चित्रण करते हुए रात्रि की उपमा मुग्धा नायिका से दी है जो अनुमप है। यथा–

"चिरं प्रतीक्षते रात्रिः सूर्यसमागतोत्सुका।
प्रभाते तु तमायान्तं ज्ञात्वा मुग्धेव लीयते।।"[85]

'विश्वासः फलदायकः' कविता में कवि ने उपमा का मनोरम प्रयोग करते हुए कहा है कि सीता भगवान राम का उसी प्रकार अनुसरण करती है जिस प्रकार सूर्य का अनुसरण छाया करती है। अतः यहाँ सीता व छाया में समानता का वर्णन है–

"सदा छायेव सूर्यमनुगच्छन्ती सीता"[86]

अतः डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्' में कालिदास के समान प्रचुर मात्रा में तो नहीं, परन्तु उपमा का सफल प्रयोग उसी प्रकार किया है जिस प्रकार कालिदास ने अपने काव्यों में किया है।

रूपकम्

"तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।"[87]

अर्थात् जिन उपमान तथा उमेय का भेद प्रकट है उनमें भी अत्यन्त साम्य के कारण अभेदारोप करना ही रूपक अलङ्कार कहलाता है अर्थात् उपमेय उपस्थित होकर भी उपमान के रंग में रंग जाता है–

'रूपयति एकतां नयतीति रूपकं।'

प्रो. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्' में रूपक अलङ्कार का निबन्धन अत्यन्त चारू रूप में किया है। 'कालिदासः शिरोमणिः' कविता के अनेक पद्यों में रूपक अलङ्कार का किया गया है। यथा–

"कविताकामिनीकान्तः सौन्दर्यसमुपासकः।
सर्वार्थान् दर्शयामास तल्लावण्यप्रसाधने।।"[88]

यहाँ उपमेय 'कविता' में उपमान 'कामिनी' का आरोप है, अतः यहाँ रूपक अलंकार है। इसी तरह कवि ने 'परकीय धनम्' कविता में एक स्थान पर रूपक अलंकार का अत्यन्त कुशलतापूर्वक वर्णन किया है–

"योतुकयातुधानैर्विहितदुर्दश तद्धनं।।"[89]

अतः यहाँ उपमेय (यौतुक) का उपमान (यातुधान) से अभेद प्रकट किया गया है अर्थात् दहेज रूपी राक्षस है। अतः यहाँ रूपक अलङ्कार है।

विरोधाभास

"विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः।"

अथवा

"आभासत्वे विरोधस्य विरोधाभास इष्यते।।"[90]

वस्तुतः अविरोध होने पर भी जो दो विरुद्धों का कथन करता है वह विरोधाभास अलङ्कार है। अतः विरोध न होने के कारण इस अलङ्कार में विरोध परिहार भी प्रकट होता है।

प्रो. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्' के अनेक मुक्तकों में विरोधाभास अलङ्कार की छठा दर्शायी है। 'वन्दना' कविता के सरस्वती स्तुति प्रसंग में कवि ने विरोधाभास अलङ्कार का चमत्कारजनक प्रयोग किया है। यथा–

"या लक्ष्मीरपि श्रीर्न, या च विदुषामरमापि न हरिप्रिया।
सा सरस्वती पूज्या, पद्मस्थापि न पद्मालया।।"[91]

प्रस्तुत पद्य में कहा गया है कि जो लक्ष्मी होने पर भी श्री अर्थात् ऐश्वर्य की देवी नहीं है यह विरोध है (परिहार जो लक्ष्मी अर्थात् पश्यति नीतिज्ञम् इति लक्ष्मी : अर्थात् जो सरस्वती है न कि धन की देवी लक्ष्मी है) इसी तरह आगे भी विरोध का परिहार करते हुए यहाँ विरोधाभास अलङ्कार की अनुपम सृष्टि की गई है। 'वन्दना' कविता के गणपति स्तुति में कवि ने जो विरोधाभास की स्थिति दर्शायी है वह सहज ही सहृदयों को अपनी ओर आकृष्ट करने वाली है। यथा–

"नायकोऽपि विनायको लम्बोदरोऽपि विलम्बोदरो नः।
विरक्षतुस्थूलत्वाद् विघ्नराजोऽप्यविघ्नराजः।।"[92]

इसी तरह कवि ने 'हिमालयः' नामक कविता में यमक के साथ–साथ विरोधाभास अलङ्कार की भी योजना की है। अतः कवि ने विरोधाभास अलङ्कार का कुशलता से प्रयोग कर उसमें अपनी निपुणता सिद्ध की है।

'सारस्वत–सौरभम्' में वर्णित डॉ. पाण्डेय द्वारा प्रयुक्त अलङ्कारों का विवेचन करने के पश्चात् हम निष्कर्षपूर्वक यह कह सकते हैं कि यद्यपि अनुप्रास, यमक, श्लेष व विरोधाभास अलंकार कवि के अतिप्रिय जान पड़ते है। क्योंकि 'सारस्वत–सौरभम्' के अधिकांश पद्यों में इन्हीं अलंकारों का प्रयोग है। तथापि इन अलङ्कारों के प्रयोग करने के बाद भी हम कह सकते हैं कि कवि ने कई कविताओं को अलङ्कार के बोझ से परे रखा है। इनकी कविताओं में कहीं भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि अलङ्कारों के आधिक्य के कारण सहृदयों को कविता का भाव समझनें में कठिनाई हो रही हो सर्वत्र कविताएँ अलङ्कार युक्त होने पर भी सहज, सुगम व सुबोध है जो इनके काव्य को सर्वतोभावेन सुन्दर व मधुर बनाता है।

4.5 छन्द योजना

"छन्दः पादौ तु वेदस्य।"

सर्वप्रथम यास्क ने छन्द की व्युत्पत्तिपरक व्याख्या की है। इनके अनुसार 'छन्दान्सि छादनात्' अर्थात् छन्द् भावों को आच्छादित कर उन्हें समष्टिरूप प्रदान करते है। छन्द शब्द 'छादनार्थक 'छद्' धातु से बना है। यास्क के पश्चात् कात्यायन ने छन्द की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'यदक्षर परिमाण तच्छन्दः' अर्थात् जिसमें अक्षरों के परिमाण या संख्या में वर्णों की सत्ता निहित होती है। वह छन्द कहलाता है। अर्थात् प्रत्येक छन्द में वर्णों की संख्या निर्धारित होती है। इसके पश्चात् छन्द एक निश्चित परिभाषा में आबद्ध कर दिया गया, कि 'छन्द' काव्य के उस तत्त्व का नाम है। जिसमें वर्णों की या मात्राओं की संख्या, 'गुरू–लघु' का क्रम यति–गति की व्यवस्था निर्धारित है।

संस्कृत साहित्य में वैदिक युग से ही छन्दों का प्रयोग होता आया है। सामवेद में स्वरों, गान व लय के बारे में विवेचन प्राप्त होता है। वैदिक साहित्य में वर्णिक छन्द पायें जाते है। अर्थात् वैदिक छन्दों में वर्णों की प्रधानता होती है। इनकी संख्या सात मानी गयी है। और ये 'सप्त छन्दांसि' के नाम से जाने जाते है। वैदिक छन्दों में गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप्, वृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप एवं जगती है।

लौकिक संस्कृत में मात्रिक व वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग महर्षि वाल्मिकी के हृदय पटल पर क्रौञ्च वध की घटना से उद्बुद्ध प्रसिद्ध श्लोक से सम्बद्ध है। महर्षि वाल्मिकि का शोक श्लोक रूप में परिणत होकर इस प्रकार प्रस्फुटित हुआ–

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी काममोहितम्।।"[93]

मात्रिक छन्दों में आर्या आदि और वर्णिक छन्दों में अनुष्टुप्, उपजाति, वसन्ततिलका, मालिनी आदि छन्दों का प्रयोग होता है।

डॉ. पाण्डेय विरचित 'सारस्वत–सौरभम्' यद्यपि पूर्णरूपेण छन्दोबद्ध नहीं है। कवि ने इसमें कई छन्दोमुक्त रचनाओं का भी समावेश किया है। नयी कविताओं के छन्दों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये है। पारम्परिक छन्दों का मोहजाल टूटा है। यह छन्दोमुक्त कविता, वर्तमान सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक परिवेश में व्याप्त कुरीतियों, अन्धविश्वास, शोषण, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद मानवाधिकार हनन इत्यादि ज्वलन्त समस्याओं पर आधारित होने के कारण सहृदयों तथा प्रबुद्ध नागरिकों के अन्तःकरण को झंकृत कर रही है। वहीं दूसरी ओर इन कविताओं में पारम्परिक रसों का भी आस्वादन होता है।

प्रो. पाण्डेय ने अपने इस संग्रह के पद्य भाग में छन्दमुक्त रचनाओं के साथ–साथ आर्या, अनुष्टुप, उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, प्रहर्षिणी, विघुन्माला, मालिनी, वंशस्थ, रथोद्धता, तोटक, स्रग्विणी, द्रुतविलम्बित व पञ्चचामर प्रभृति विविध छन्दों में निबद्ध मुक्तकों का भी प्रणयन किया है। प्रो. पाण्डेय विरचित प्रमुख छन्दों का विवेचन इस प्रकार है।

आर्या

"यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादशे द्वितीये चतुथके पञ्चदश साऽऽर्या।।"[94]

जिसके प्रथम व तृतीय चरण में 12, 12 मात्राऐं होती है, द्वितीय में 18 व चतुर्थ चरण में 15 मात्राऐं होती है। वह आर्या छन्द है।

डॉ. पाण्डेय ने एकमात्र 'वन्दना' नामक शीर्षक में गणपति की स्तुति करते हुए आर्या छन्द का प्रयोग किया है यथा–

S I S I I S I S
नायकोऽपि विनायको
लम्बोदरोऽपि विलम्बोदरों नः।
विरक्षतु स्थूलत्वाद्
विघ्नराजोऽप्यविघ्न राजः।।[95]

अनुष्टुप्

वैदिक मन्त्रों में अनुष्टुप् का प्रयोग बहुलता से मिलता है। महाकवि माघविरचित 'शिशुपालवध' में भी इसी छन्द का बहुलता से प्रयोग है। संस्कृत साहित्य का बहुत बड़ा भाग अनुष्टुप् छन्द में ही निबद्ध है।

"श्लोक षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्हस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।"[96]

अनुष्टुप् छन्द के प्रत्येक चरण में छठा अक्षर गुरु होता है तथा पाँचवाँ अक्षर लघु होता है। दूसरे और चौथे चरण में सातवाँ अक्षर लघु होता है। पहले और तीसरे पाद में सातवाँ अक्षर गुरु होता है।

'सारस्वत–सौरभम्' में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग डॉ. पाण्डेय ने बहुलता से किया है। यथा– शकुन्तला, प्रयाणम्, गणतंत्रात्मकम् राज्यम्, सुरभारती, लोभस्य फलमेव मृत्युः, थकारश्रीः आदि मुक्तक

कविताएँ पूर्णतया अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध है इसके अतिरिक्त कवि ने अन्यत्र भी अनुष्टुप् का स्वतन्त्र प्रयोग किया। यथा–एकलिंग, गौ, गणपति की स्तुति में, गंगा के प्रकृति चित्रण में इसके अतिरिक्त कवि ने बारहठसिंहत्रयी के ग्यारह श्लोकों में, कालिदासः शिरोमणिः मुक्तक के नौ पद्यों में भी अनुष्टुप् का प्रयोग किया है। जिससे यह सिद्ध होता है कि कवि ने अधिकांश पद्य भाग को अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध किया है। यथा–

I S S
पुष्करे पुष्करं जातं
त्रोटितं पुष्करेण तत्।
पुष्करे तेन संकीर्णं
पुष्करेण पुनर्हृतम्।।[97]

I S S
थूर्वति मातरं रामः
पितुरादेश धारकः।
माता संरक्षिता तेन
पितुराज्ञा न लंघिता।। [98]

उपर्युक्त उदाहरणों में अनुष्टुप् छन्द है। अतः निर्विवाद रूप में कहा जा सकता है कि कवि ने अनुष्टुप् छन्द का सबसे अधिक प्रयोग किया है।

इन्द्रवज्रा **"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।"**[99]

इन्द्रवज्रा छन्द के प्रत्येक चरण में 11 वर्ण होते हैं तथा गणों का क्रम क्रमशः तगण, तगण, जगण तथा दो गुरु होता है।

डॉ. पाण्डेय ने कई स्थानों पर इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग किया है। 'बारहठसिंहयी' व 'कुटिला हि पाकाः' नामक कविता के कई पद्य इस छन्द में निबद्ध है।

S S I S S I I S I S S
श्रीकृष्णसिंहोद्वसितं सुघन्यं
यत्र प्रजाता नरपुङ्वा ये।
प्रताप–जोरावार–केसरीति
नाम्ना श्रुताः सिंहपदोत्तरस्था।।[100]

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ। ऽ ऽ

पद्मासने वाञ्छति संस्थितिं या

वीणा निनादेन करोति बोधम्।

जाड्यान्धकारं जगतो विलुप्या

ऽऽशीर्दान माविष्कुरुते जनेभ्यः।।[101]

कवि ने 'बारहठसिंहत्रयी' के कुछ पद्यों को छोड़कर शेष पद्यों में तो इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग किया ही है साथ ही कवि ने 'शंकराचार्य' के श्लोक 1,2 व 3 'माधव' के श्लोक सं. 3 व 4 में तथा 'कुटिला हि पाकाः' के श्लोक स. 2,3,4 में इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग किया है।

उपेन्द्रवज्रा **'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।'**[102]

उपेन्द्रवज्रा छन्द के प्रत्येक चरण में 11 वर्ण होते है तथा गणों की व्यवस्था जगण, तगण, जगण व दो गुरु होती है। प्रो. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्' में 'हिमालयः' मुक्तक कविता पूर्णरूपेण उपेन्द्रवज्रा छन्द में निबद्ध है। यथा–

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

मृगालयो यो मृगयालयो यो

गवालयो यो गवयालयो यः।

परालयो यः परमालयो यो

हिमालयो यो महिमालयोऽसौ।।[103]

। ऽ। ऽ ऽ ।। ऽ । ऽ ऽ

विकासमाप्तास्तरवो मनोज्ञा।

हरन्ति यूनां पवनैः श्रमत्वम्।

रूतं मनोहारि च कोकिलानां

नृपो वसन्तः समुपासनीयः।।[104]

उपजाति **"अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदियावुपजातयस्ताः।**

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।।"[105]

उपजाति का अर्थ है– मिश्रित छन्द। उपजाति छन्द, मूलतः संकर छन्द होते है। इन्द्रवज्रा व उपेन्द्रवज्रा दोनों ही छन्द अपनी सरलता व कर्ण मधुरता के कारण कवियों में अत्यन्त लोकप्रिय छन्द रहे है। अतः इन दोनों छन्दों के योग से बने उपजाति छन्द का प्रयोग भी डॉ. पाण्डेय ने किया है।

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

श्रीकेसरी केसरिवत् स्वतन्त्रो

जोरावरं वीरवराग्रगण्यम्।

सहोदरं पुत्रमथ प्रताप–

ममीरचन्द्रस्य युयोज संघे।।[106]

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ। ऽ ऽ

ख्याता कृतेष्टिः सकलेऽपि लोके

लब्धा मया दृष्टिरभूतपूर्वा।

अजोऽसि साक्षादनुभूतिगम्यः

तत्त्वं गतिर्माधव! किं मम स्याः।।[107]

कवि ने 'वन्दना' कविता के देवी स्तुति प्रसंग में 'प्रकृतिः' कविता के पद्मजश्रीः वर्णन में 'कालिदास शिरोमणिः' मुक्तक के श्लोक सं. 10 में, 'बारहठसिंहत्रयी' कविता के श्लोक सं. 4 व 10 में एवं मौक्तिकम् कविता के 2,8 व 9वें श्लोक में उपजाति छन्द का प्रयोग किया है साथ ही 'माधवः' कविता का अधिकांश भाग इसी छन्द में निबद्ध है।

भुजंगप्रयात **"भुजंगप्रयात चतुर्भियकारैः।"**[108]

भुजंगप्रयात छन्द के प्रत्येक चरण में 12 वर्ण होते है। जो चार 'यगण' में विभक्त होते हैं। इसमें गणों के क्रम की समता सर्प की चाल से होने के कारण इस छन्द का नाम भुजंगप्रयात पड़ा। डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वतसौरभम्' में 'होलिका रे! सखे' में भुजंगप्रयात छन्द का रूचिर सन्निवेश किया है। यथा–

।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ । ऽ ऽ

सुरक्ताः सुपीताः सुनीला हि बालाः

सुवाद्यैः सुगीतैः सुनृत्यैः प्रमत्ताः।

सुभोज्यैः सुपेयैः सुभङ्गैः सुतृप्ताः

सकामाः सवामाः सहाला हि जाताः।।[109]

मालिनी **"ननमययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।"**[110]

मालिनी छन्द के प्रत्येक चरण में 15 वर्ण होते है। 'भोगिलोकैः' की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। कि भोग की संख्या 8 है तथा 7 लोक प्रसिद्ध है। अतः मालिनी छन्द में 8 तथा 7 वर्णो

पर यति होती है। गणों का क्रम नगण, नगण, मगण, यगण, यगण होता है। मालिनी छन्द का प्रयोग कवि ने 'सारस्वत–सौरभम्' के 'दुरवस्था–संस्कृतस्य' नामक मुक्तक काव्य में अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया है। यथा–

।। । ।।। ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

स्मरण चरण याताः, प्रेक्षकाणां विमर्शः
न किमपि लिखितुं ते शक्नुवन्तीति सत्यम्।
बुधजनगणमध्ये धार्यते तेस्तु मौनं
जगति रटित भाषा नैव याति प्रचारम्।।[111]

इसके अतिरिक्त समस्या नामक मुक्तक कविता के 'राजनीतिः' शीर्षक के पद्यों में तथा 'कालिदासः शिरोमणिः' के अन्तिम पद्य में मालिनी छन्द का सन्निवेश कवि ने किया है।

वंशस्थ **"जतौ तु वंशस्थ मुदीरितं जरौ।"**

वंशस्थ छन्द के प्रत्येक चरण में क्रम से कुल 12 वर्ण होते है। 'सारस्वतसौरभम्' के स्वतन्त्रता नामक कविता में कवि ने वंशस्थ छन्द का प्रयोग किया है। यथा–

। ऽ । ऽ ऽ । ।ऽ । ऽ । ऽ

विलोक्य यस्या विचमत्कृतिं नवां
समस्त संसार जनाः प्रभाविताः।
विखण्डतामीयुर पारतंगता
न रोचते साप्यधिका स्वतन्त्रता।।[112]

रथोद्वता **"रान्नराविह रथोद्वता लगौ।"**

अथवा

"रातपरैर्नलगै रथोद्वता।"[113]

रथोद्वता छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः रगण, नगण, रगण और अन्त में एक लघु व एक गुरू वर्णों के क्रम से ग्यारह–ग्यारह वर्ण होते है। 'स्वतन्त्रता' नामक मुक्तक कविता के अन्तिम पद्य में कवि ने रथोद्धता छन्द का प्रयोग अत्यन्त चातुर्यपूर्ण ढंग से किया है। यथा–

ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ । ऽ

राष्ट्रियं सकललोकविश्रुतं
गौरवं भुवि यया प्रतन्यतेः।

मानवाश्च मुदिताननाः सदाः

शोभते जगति सा स्वतन्त्रताः।।[114]

द्रुतविलम्बित **"द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।"**[115]

द्रुतबिलम्बित छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, दो भगण, रगण के क्रम से बारह वर्ण होते है। इसे समवृत्त छन्द कहते है। डॉ. पाण्डेय ने अपनी 'समस्या' नामक कविता में द्रुतविलम्बित छन्द का प्रयोग कुशलतापूर्वक किया है। यथा–

। । । ऽ ।ऽ। । ऽ। ऽ

"रूचिरपद्यपलाश मनोहरां

गुणसुगन्धसुगन्धित पादपाम्।

मधुसखे! कवितालतिकां कदा

सकलया कलया कलयामहे।।"[116]

प्रहर्षिणी **"त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्।"**[117]

प्रहर्षिणी छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, नगरण, जगण, रगण तथा अन्त में एक गुरू वर्ण के क्रम से तेरह वर्ण होते है। इसके तृतीय व दसवें वर्ण पर यति होती है। 'सारस्वत–सौरभम्' के निम्न पद्य में गणों की व वर्णों की स्थिति उपर्युक्त लक्षण अनुसार है यथा–

ऽ ऽ ऽ ।। । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ

कैलासे वसति विनायकेन सार्धं

नीहारालयतनया भवान्युपेतः।

पातु यः प्रमथगणाधिपः समर्थ

स्तस्मै खण्डपरशवे नमो नमोऽस्तु।।[118]

विद्युन्माला **"मो मो गो गो विद्युन्माला"**[119]

विद्युन्माला छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, मगण तथा दो गुरू क्रम से आठ वर्ण होते है। डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्' के सिन्धोर्बाला, नित्यं ग्राह्या सत्या शिक्षा तथा स्वागतगीतिका में विद्युन्माला छन्द का मनोरम प्रयोग करते हुए अपनी विद्वता का परिचय दिया है। यथा–

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

मित्रैः सार्धं पीता हाला

नित्यं क्रीता भोग्या बाला।
त्याज्या सर्वेस्तस्यां रात्रौ
सज्जीभूता हाला बाला।।[120]

स्रग्विणी **"कीर्तितैषा चतूरेफिका स्रग्विणी।"**[121]

स्रग्विणी छन्द के प्रत्येक चरण में चार रगण के क्रम से कुल बारह वर्ण होते है। 'होलिका रे सखे!' कविता में डॉ. पाण्डेय ने स्रग्विणी छन्द का प्रयोग किया है। यथा–

ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ
होलिका रे सखे! होलिका रे सखे!
मन्यते भारते होलिका रे सखे!! [122]

तोटक **"वद तोटकमब्धिसकार युतम्।"**[123]

तोटक छन्द के प्रत्येक चरण में चार सगण के क्रम से कुल बारह वर्ण होते है। 'स्वागतगीतिः' नामक मुक्तक कविता में कवि ने तोटक छन्द का प्रयोग किया है। यथा–

।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ
नयनैरयनं परितः खचितं
कुसुमस्तबकैः सुषमं सदनम्।
दररीकुरुत प्रियतारूचिरं
गलहारमिमं शिशुभि रचितम्।।[124]

पञ्चचामर **"प्रमाणिका पदद्वयं वदन्ति पञ्चचामरम्।"**[125]

पञ्चचामर छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, रगण, जगण व एक गुरु के क्रम से कुल सोलह वर्ण होते है। 'मौक्तिकम्' कविता में पञ्चचामर छन्द का प्रयोग द्रष्टव्य है। यथा–

।ऽ।ऽ।ऽ ।ऽ।ऽ ।ऽ ।ऽ
स्वजन्मभूमिवन्दना सुरासुरैः सदा कृता
सदैव मातृसम्यता सुतासुतर्न विस्मृता।
त्रिलोकलोक–सौख्यदा सुलोकतन्त्रमन्त्रदा
शुभा मनः सु राजतां स्वमातृभूमिभावना।।[126]

तूगण **"तूणकं समानिका पदद्वयंविनान्तिकम्।"[127]**

तूणक छन्द के प्रत्येक चरण में रगण, जगण, रगण, जगण, रगण के क्रम से कुल पन्द्रह वर्ण होते है। 'विधेहि राष्ट्ररक्षणम्' आह्वान गीत में डॉ. पाण्डेय ने तूणक छन्द का प्रयोग किया है। यथा–

ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ

आङ्ललोक पीड़िता जनाः त्वयैव रक्षिता
चीनपाक सैनिकाः पुरा त्वयैव मर्दिता।
सीम्नि शत्रुचारिणः शृणु प्रगुप्तमर्म रे!
देशभूमिरक्षितः! स्मर त्वदीय कर्म रे!।।[128]

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि डॉ. पाण्डेय ने जहाँ एक ओर अपनी कृति 'सारस्वतसौरभम्' के पद्य भाग में 15 विविध छन्दों की योजना की है। वहीं कवि ने मधुमासः, कौतूहलं तनुते, दूतश्च को भविता, परकीय धनम्, किं नामधेयं यौतकम्, कोऽयं तस्या अपराधः, आक्षेपः कस्मिन्, त्रिवेणीसंगमः, वेदविस्तारको व्यासः, विश्वासः फलदायः, अन्तरालः, उदरस्य कृते प्रभृति छन्दोमुक्त मुक्तक कविताओं के माध्यम से वर्तमानकाल में प्रचलित छन्दोमुक्त कविताओं की नई सारणी का समर्थन करते हुए संस्कृत साहित्य में नये आयामों को स्थापित कर अपनी कृतियों के माध्यम से नवीन युवा पीढ़ी को देश व समाज के प्रति जागरूक होने का सन्देश प्रदान किया है।

≈≈≈≈

संदर्भ सूची

1. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, 6/272
2. साहित्यदर्पण, कविराज विश्वनाथ, 3/9
3. राष्ट्ररक्षणम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय'
4. साहित्यदर्पण, कविराज विश्वनाथ कारिका सं. 222, पृ.सं.–261
5. वृक्षरक्षणम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय'
6. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–45
7. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–46/47
8. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–24
9. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–36
10. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–23
11. साहित्यदर्पण, कविराज विश्वनाथ, कारकि सं. 183, पृ.सं.–226
12. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–9
13. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–22
14. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, 142
15. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–1
16. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–3
17. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–12
18. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–13
19. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–13
20. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–13
21. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–15
22. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–19
23. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–41
24. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–56
25. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–29
26. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–30
27. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–39
28. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–28

29. साहित्यदर्पण, कविराज विश्वनाथ, कारिका सं. 3, पृ.सं.–21
30. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, कारिका सं. 66, पृ.सं.–380
31. काव्यालंकार सूत्र, आचार्य वामन, तृतीय अधिकरण 1/1–2
32. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, 8/68
33. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–8
34. राष्ट्ररक्षणम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–2
35. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–25
36. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–29
37. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–30
38. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–32
39. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–34
40. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–22
41. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–50
42. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–51/52
43. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–53
44. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–36
45. काव्यादर्श, आचार्य दण्डी, 1/40
46. काव्यादर्श, आचार्य दण्डी, 1/41–42
47. काव्यालङ्कार सूत्र, आचार्य वामन, 1/2 (6–7–8)
48. काव्यालङ्कार सूत्र, आचार्य वामन, 1/2/9
49. काव्यालङ्कार, रुद्रट, 1/6
50. काव्यालङ्कार, रुद्रट, 2/5
51. वक्रोक्तिजीवितम्, कुन्तकाचार्य प्रथमोन्मेषकारिका, 24
52. साहित्यदर्पण, कविराज विश्वनाथ
53. साहित्यदर्पण, कविराज विश्वनाथ, 9/1/2
54. साहित्यदर्पण, कविराज विश्वनाथ, 9/1/3
55. साहित्यदर्पण, कविराज विश्वनाथ, 9/1/4
56. साहित्यदर्पण, कविराज विश्वनाथ, 9/1/5
57. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–10

58. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–12
59. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–29
60. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–61
61. काव्यादर्श, आचार्य दण्डी, 2/9/1
62. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य, 2/7/1
63. काव्यालङ्कार, आचार्य भामह, 2/3
64. काव्य प्रकाश, आचार्य मम्मट, 8/67
65. साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, 10/1
66. चन्द्रालोक, जयदेव, 1/8
67. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य, 2/16
68. साहित्यदर्पण, कविराज विश्वनाथ, 10/3
69. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–2
70. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–3
71. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–20
72. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–13
73. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–15
74. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–3
75. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–46
76. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–4
77. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–6
78. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, 10/111
79. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–13
80. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–18
81. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, 10/87
82. चित्रमीमांसा, अप्पय दीक्षित, पृ.सं.–41
83. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–19
84. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–13
85. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–14
86. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–45

87. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, 10 / 93

88. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–19

89. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–24

90. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, 10 / 110

91. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–3

92. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–2

93. रामायण, वाल्मिकी (बालकाण्ड)

94. छन्दोमञ्जरी, श्री गंगाप्रसाद परमेश्वरदीन पाण्डेय

95. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–2

96. छन्दोमञ्जरी, श्री गंगाप्रसाद परमेश्वरदीन पाण्डेय

97. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–13

98. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–57

99. छन्दोमञ्जरी, श्री गंगाप्रसाद परमेश्वरदीन पाण्डेय, 36 / 1

100. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–25

101. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–2

102. छन्दोमञ्जरी, श्री गंगाप्रसाद परमेश्वरदीन पाण्डेय, 37 / 2

103. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–16

104. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–13

105. छन्दोमञ्जरी, श्री गंगाप्रसाद परमेश्वरदीन पाण्डेय, 38 / 3

106. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–26

107. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–2

108. छन्दोमञ्जरी, श्री गंगाप्रसाद परमेश्वरदीन पाण्डेय, 52 / 5

109. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–53

110. छन्दोमञ्जरी, श्री गंगाप्रसाद परमेश्वरदीन पाण्डेय, 80 / 4

111. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–39

112. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–34

113. छन्दोमञ्जरी, श्री गंगाप्रसाद परमेश्वरदीन पाण्डेय, 43 / 9

114. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–34

115. छन्दोमञ्जरी, श्री गंगाप्रसाद परमेश्वरदीन पाण्डेय, 55 / 10

116. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–58

117. छन्दोमञ्जरी, श्री गंगाप्रसाद परमेश्वरदीन पाण्डेय, 63 / 1

118. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–2

119. छन्दोमञ्जरी, श्री गंगाप्रसाद परमेश्वरदीन पाण्डेय, 26 / 3

120. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–10

121. छन्दोमञ्जरी, श्री गंगाप्रसाद परमेश्वरदीन पाण्डेय, 26 / 3

122. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–53

123. छन्दोमञ्जरी, श्री गंगाप्रसाद परमेश्वरदीन पाण्डेय, 53 / 7

124. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–52

125. छन्दोमञ्जरी, श्री गंगाप्रसाद परमेश्वरदीन पाण्डेय, 52 / 6

126. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–60

127. छन्दोमञ्जरी, श्री गंगाप्रसाद परमेश्वरदीन पाण्डेय, 83 / 7

128. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–32

पञ्चम अध्याय

डॉ. पाण्डेय की सम्पूर्ण कृतियों का सामाजिक व सांस्कृतिक अध्ययन एवं सन्देश, सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना

पञ्चम – अध्याय

डॉ. पाण्डेय की सम्पूर्ण कृतियों का सामाजिक व सांस्कृतिक अध्ययन एवं सन्देश, सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना

5.1 सामाजिक व सांस्कृतिक अध्ययन

बीसवीं शती का शुभारम्भ भारत में ऐतिहासिक युगबोध और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के सुप्रभात की स्वर्णिम किरणें लेकर आया है। बीसवीं शती की संस्कृत रचनाओं में सर्वत्र संस्कृति का गायन है। राष्ट्रीय चेतना का भव्य स्पन्दन है, देशभक्ति का उद्‌बोधन है, युगबोध और सामाजिक चेतना का स्फुरण है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य मानववादी दृष्टिकोण लेकर चला है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में अनेक कवियों की कृतियाँ हमारी सामाजिकता व सांस्कृतिकता की परिचायक है। आधुनिक कवियों ने सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश से सम्बन्धित विषयों पर अनवरत ही विशाल साहित्य की रचना की है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य को अपनी उत्कृष्ट रचनाओं से संवर्द्धित करने वाले ऐसे महाकवियों की श्रेणी में विद्वत् कवि डॉ. पाण्डेय का स्थान महत्त्वपूर्ण है। डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्', हंसरक्षणम्, राष्ट्ररक्षणम्, वृक्षरक्षणम् कृति में अपनी लेखनी के माध्यम से भारतीय समाज व संस्कृति का जो चित्र खींचा है वह अद्वितीय है।

सांस्कृतिक विवेचन के अन्तर्गत कवि ने भारतीय संस्कृति के विविध रूपों को अपनी लेखनी रूपी तूलिका का आधार बनाकर वर्णित किया है। यद्यपि कृतियों में सामाजिकता व राष्ट्रीयता प्रधान है तथापि सांस्कृतिकता का महत्त्व भी कम नहीं है।

सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत कवि ने भारतीय समाज के विविध पहलुओं का वर्णन करते हुए समाज में व्याप्त विविध समसामयिक समस्याओं का अत्यन्त जीवन्त रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। जैसे–जैसे कवि ने समाज को अत्यन्त निकट से देखा, उन्हें अनेक सामाजिक समस्याओं ने झकझोर दिया। कवि हृदय समाज में व्याप्त विविध समस्याओं से व्यथित है, इन समस्याओं से अभिभूत कवि हृदय से अनेक मार्मिक शब्द प्रस्फुटित हुए है जो कविता रूप में परिणत होकर

सामाजिकों को समाज में व्याप्त कुरीतियों को नष्ट करने का सन्देश प्रदान करने वाले है। कवि हृदय इन सामाजिक समस्याओं से इतना अभिभूत है कि 'किं चतुष्कम्?' खण्ड की चार कविताओं में तो सर्वत्र ही कवि ने सामाजिकता का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त भी उदरस्य कृते, अन्तरालः, परकीय धनम् परिवर्तनम् आदि रचनाओं में भी कवि ने भारतीय समाज व समस्याओं का अत्यन्त विशद् रूप में विवेचन किया है।

कवि ने भारतीय संस्कृति के अनुरूप विविध देवों का स्तवन किया है जो उनके सांस्कृतिक अनुराग का द्योतक है। न केवल देव स्तवन से ही कवि के सांस्कृतिक अनुराग का परिचय मिलता है। अपितु कवि ने 'गुरूपादपद्मपूजैव पुरस्कारः' निबन्ध के द्वारा गुरू का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए गुरू भक्ति का जो परिचय दिया है वह निश्चय ही भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही है। इसी तरह कवि ने 'सुरभारती' व 'दुरवस्था संस्कृतस्य' इन दोनों मुक्तक कविताओं के माध्यम से संस्कृत भाषा की वर्तमान अवस्था को देखकर उसके प्रति चिन्ता व्यक्त की है। साथ ही संस्कृत भाषा को सभी समस्याओं का निवारण करने वाली भाषा बतलाया है, क्योंकि संस्कृत भाषा प्राचीनकाल से ही भारत देश में ही नहीं अपितु विश्व में मानव संदेश प्रसारित करने में सक्षम है। इस प्रकार संस्कृत भाषा के प्रति अनन्य अनुराग भी कवि की भारतीय संस्कृति की प्रियता का ही द्योतक है।

कवि ने 'स्वागतगीतिः' व 'स्वागतगीतिका' मुक्तक कविताएँ भी कवि के भारतीय संस्कृति के अनन्य अनुराग के परिचायक है। क्योंकि भारतीय संस्कृति में प्रारम्भ से ही अतिथि को देवतातुल्य माना गया है। अतः हमारी संस्कृति में अतिथियों के आगमन के अवसर पर स्वागतगान की परम्परा रही है और इसी परम्परा में कवि ने संस्कृत भाषा में दो अत्यन्त मनोहर स्वागतगीतों की रचना की है। जो सहज ही उनकी संस्कृति के अनुराग की परिचायक है। यथा–

"वयमागता आगताः, भवतां स्वागतं कुर्मः।
वयमागता आगताः, भवतां स्वगतं कुर्मः।।
दर्शं दर्शं प्रीता बाला
कण्ठीकार्या नीता माला।
प्रेमापूर्ण सेयं माला
धन्या जाता विद्या–शाला।।"[1]

कवि भारतदेश की संस्कृति में विद्यमान पर्वो उल्लासों आदि से भी अत्यन्त प्रभावित है। 'होलिका रे सखे!' कविता कवि की उत्सव प्रियता को दर्शाति है। यथा–

"होलिका रे सखे! होलिका रे सखे!
मन्यते भारते होलिका रे सखे!!
गायिका नायिका गायको नायकः
लासिका राधिका लासको मोहनः।
बालकाः साधका गोपिकाऽऽराधिकाः
नैकारागाम्बुधौ मज्जिता हर्षिताः।।"[2]

इस प्रकार कृति में अनेक ऐसे स्थल है जहाँ कवि की सांस्कृतिक भावना उजागर होती है।

सन्देश

संस्कृत साहित्य का अपना स्वरूप और अपना ही इतिहास है। यह सुदीर्घकाल से बहती हुई अलकनन्दा है जिसमें सजीवता एवं झंकृति है, यह तरङ्गायित है और सहृदय के तारों में कम्पन किये बिना नहीं रहती है। इसके प्राकृत रूप में किसी प्रकार की विकृति नहीं आ पाई। समकालिक प्रभाव अवश्य दिखाई देता है, जो स्वाभाविक है। संस्कृत में आज भी दो धारायें है। 1. प्रौढ़ पाण्डित्य एवं चमत्कृति 2. नवचेतना के साथ नव्य शैली। दोनों में एक समानता है वह है व्याकरण के नियमों की परिपालना। पुरानी पीढ़ी प्रौढ़ता तथा पाण्डित्य का अनुकरण करने वाली है, किन्तु नई पीढ़ी ने दुस्साहस के साथ छन्द की प्रतिबद्धता को भंग किया है और आधुनिक शैली को हृदय से स्वीकार किया है। चिन्तन को नई दृष्टि दी है, नूतन बिम्ब स्वीकार किये हं।

इस पीढ़ी के लेखक तो बहुत है किन्तु दोनों धाराओं का सङ्गम देखने को नहीं मिलता है। प्रो. पाण्डेय में पाण्डित्य, गहनदृष्टि और नवशैली की त्रिवेणी पाठकों को आनन्द से आप्लावित किये बिना नहीं रहती है। 'सारस्वत–सौरभम्' इनके पाण्डित्य, गंभीर चिन्तन और नूतन आयामों का दर्पण है। इस कृति में सभी तरह की रचनाएँ है। जो यह सिद्ध करती है कि लेखक सायास रचनाकार नहीं, अपितु सहज और निसर्गतः रचनाधर्मी है, यह लेखन की विविध विधाओं में लेखनी चलाकर अपनी बहु–आयामी प्रतिभा और विभिन्न शैलियों को जन्म देने वाला है।

समाज में स्त्री की दुर्दशा को देखकर कवि हृदय पुकारता है। 'कोऽयं तस्या अपराधः?' हमारे समाज में आज भी यदि किसी नव वधू के गर्भ से निरन्तर कन्या ही उत्पन्न होती है तो उसका घर में एवं समाज में तिरस्कार किया जाता है। यहाँ तक की उसे यातनाएँ दी जाती है। अतः कवि कहता है कि इसमें उसका क्या अपराध है? यह सब तो भाग्याहीन है। फिर भी उसे ही अपराधी माना जाता है। इसमें उसका क्या अपराध है? कवि कहता है कि क्या पुरुष ही कल्याणकारी है। स्त्री अग्रिमा नहीं है क्या? इसी कविता में कवि परिवार नियोजन का भी सन्देश दे रहा है–

"पुत्रप्राप्तौ बालालेखा चेत्कृता क्व तव मेधा?
प्रसूतिरेवास्ति द्वेधा किमत्र कुरुते वेधाः?
तत् स्वीकुरु निरोधम्, क्व वा रोधः
विधेरब्धिरगाधः। कोऽयं तस्या अपराधः?"[3]

इस प्रकार इस कविता के माध्यम से कवि ने एक ओर समाज में नारी की अवमानना का चित्रण किया है तो दूसरी ओर कन्या सन्तति भी पुत्र के समान ही कल्याणकारी है, कहकर लड़का एवं लड़की दोनों को समान समझने का सन्देश दिया है और अन्त में राष्ट्रहित में 'परिवारकल्याण' सीमित परिवार को अपनाने का सन्देश दिया है। प्रसाद गुण से परिपूर्ण इस प्रकार की रचना संस्कृत साहित्य को जीवित साहित्य सिद्ध करती है।

कवि हृदय जिस प्रकार सामाजिक दुरवस्थाओं से व्यथित है उसी प्रकार संसार की सबसे प्राचीन एवं सम्पूर्ण भाषाओं की जननी संस्कृत की दुरवस्था को देखकर व्यथित हो उठता है।

रटत–रटत छात्राः। मूलमात्रं तु नूनम्, गुरुजनभयभीता श्रावयन्ति प्रपाठम्
स्मरणशरणयातैश्चिन्त्यते वै न तत्त्वं, पतति पतति भाषा कीरवत् पाठिता या।।

वस्तुतः संस्कृत के पठन–पाठन की जिस शैली को संस्कृत विद्यालयों में आज तक स्वीकृति प्राप्त है, उससे बालक गुरुजनों के भय से या परीक्षोत्तीर्णता के लिये केवल रट लेता है, परन्तु न छात्र उसे समझता है और न ही गुरुजन उसे अर्थ समझाते है और उसका फल यही होता है कि तोते की भांति रटी हुई वह भाषा शनैः शनैः विस्मृति के गर्त में पतित हो जाती है। कवि को दुःख है कि आज भी हम केवल रटने पर जोर देते है न कि छात्र की बुद्धि के विकासानुसार समझने की ओर बढ़ रहे है। अतएव कवि कहता है– 'जगति रटित भाषा नैव याति प्रचारम्'। जो देववाणी किसी समय श्रेष्ठ विद्वानों के व्यवहार की भाषा थी आज उसे शिक्षित समाज केवल पूजा–पाठ की भाषा मात्र मानता है, 'जनमतमिति भाषा पाठपूजाजपानाम्' और अन्त में कवि कहता है कि इसकी रक्षा करने की प्रतिज्ञा करो 'कुरुत कुरुत तस्या रक्षणाय प्रतिज्ञाम्।'

कवि का यहाँ भी अपना नया दिशाबोध है। सामान्यतः संस्कृत भाषा के सम्बन्ध में वर्तमान रचनाकार दो प्रकार से अपनी रचना प्रस्तुत करते है– उनमें से कुछ तो संस्कृत के गुणों का वर्णन करने वाले वे है जो प्रचुर मात्रा में व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, माघ भवभूति, भारवि, बाणभट्ट आदि की श्रेष्ठताओं का बखान करते है और सम्पूर्ण ज्ञान संस्कृत में सन्निहित है इत्यादि स्तुतिपरक रचना करते है। दूसरे वे है जो लिखते हैं–संस्कृत की वर्तमान समय में कोई उपयोगिता नहीं है या सरकार को कोसते है। परन्तु कवि ताराशंकर 'पाण्डेय' अपनी रचना के माध्यम से जहाँ पठन पाठन प्रणाली

के दोषों की ओर ध्यान आकर्षित करता है वहीं उसकी रक्षा की प्रतिज्ञा करने का भी आह्वान करते हैं। कवि संस्कृतज्ञों को अपने कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करते हैं।

इसी प्रकार 'सुरभारती' नामक कविता के माध्यम से सूचित करता है कि यही भाषा राष्ट्र की एकता को सुरक्षित करने वाली है 'राष्ट्रियैकत्वधात्री सा भारते सुरभारती'। इसी क्रम में 'भारतं नाम स्वतन्त्रम्' कविता के माध्यम से कवि ने बढ़ते हुए भ्रष्टाचार, एक दूसरे पर आक्षेप प्रत्याक्षेप से लोकतन्त्र की दुर्दशा पर चिन्ता व्यक्त की है। व्यङ्ग्य रूप में कवि लिखता है– "पठयते नित्यं समाचारः सर्वत्रैव भ्रष्टाचारः, जायते परस्परमाक्षेपः कथं भवेद् वै प्रत्याक्षेपः, एतादृक् किं लोकतन्त्रम्। भारतं नाम स्वतन्त्रम्।" और अन्त में कहता है "लोको जायेत जागरूकः सदा दीनेषु दयालुकः भुवनेषु भद्रं पश्येम शरदः शतं वै जीवेम। को ददातु वै गुरुमन्त्रम्? भारतं नाम स्वतन्त्रम्।" कौन यह शिक्षा देगा? अर्थात् हमें स्वयं समझना है और आक्षेप प्रत्याक्षेपों को छोड़कर भारत की जनता को जागरूक बनाना चाहिए। कवि समाज के प्रबुद्धजनों को सन्देश देता है। कि उन्हें सभी को जागरूक करना चाहिए और समाज, राष्ट्र व संस्कृति के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करना चाहिए।

5.2 सामाजिक चेतना

मानव–समाज व समस्याएँ दोनों एक दूसरे से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। जहाँ–जहाँ मानव समाज है। वहाँ–वहाँ समस्याएँ भी है। वे अविच्छिन्न है अतः समाज और समस्याएँ दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है। समाज के जन्म के साथ–साथ समस्याऐं भी प्रादूर्भूत होती है जो धीरे–धीरे विकसित होकर बाद में उग्र रूपधारण कर लेती है और उसके चिन्तन, विचार, क्रियाकलापों और कार्य करने के तौर–तरीकों में कुछ इस प्रकार समाहित हो जाती है कि व्यक्ति इन समस्याओं की कठपुतली बनकर रह जाता है। ये समस्याऐं शाश्वत् है क्योंकि प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे अवांछनीय व्यक्ति भी होते है जो जानबूझकर, लालचवश, अज्ञानवश अथवा परिस्थितियों के कारण ऐसा व्यवहार कर बैठते है, जो समाज के अन्य लोगों के प्रतिकूल अर्थात् उनके लिए हानिकारक अथवा घातक हो सकता है।

समाज में उत्पन्न ऐसी ही समस्याऐं 'सामाजिक समस्याओं' के नाम से जानी जाती है। मानव समाज कभी भी इन समस्याओं से पूर्णतः मुक्त नहीं रहा, किसी न किसी रूप में समस्याऐं समाज को प्रभावित करती रही है और यह प्रक्रिया आज भी जारी है। विश्व का प्रत्येक राष्ट्र नानाविध भयंकर सामाजिक समस्याओं से त्रस्त है।

भारत में अनेकों सामाजिक समस्याऐं अपना कुप्रभाव दिखाकर उसे अवनति की ओर उन्मुख कर रही है। जो चिन्ता का विषय है। ऐसी परिस्थितियों में भी देश में वर्तमान सामाजिक समस्याओं

के प्रति जागरूक रहकर उसके निवारण के लिए यथासामर्थ्य प्रयत्न करना प्रत्येक नागरिक का परम कर्त्तव्य है।

काव्य कवि की मानसिक शक्तियों के विकास की व्याख्या तक ही सीमित नहीं होता, वह इससे भी आगे बढ़ता है। जिस प्रकार वह अपने चतुर्दिक फैली प्रकृति में अपने मनोवेगों का स्पन्दन देखता है। उसी प्रकार अपने चारों और घिरे समाज में वह जीवन के सुख–दुख का इतिहास पढ़ता है। कवि चिन्तन करते–करते ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है। कि उसका जीवन समाज के जीवन का अभिन्न अंग बन जाता है।

इसी प्रकार जिस समय कवि अपने काव्य की रचना करता है, उस समय में होने वाली घटनाओं, विचारों, भावनाओं, वातावरण की झलक उसके काव्य में अवश्य दिखाई देती है। अतः डॉ. पाण्डेय भी सम्प्रति समाज में व्याप्त निर्धनता, बेरोजगारी, यौतुक प्रथा आदि वर्तमान समय की कई समस्याओं के प्रति जागरूक एवं संवेदनशील है। उन्होंने अपनी सरस कृति 'सारस्वत सौरभम्' के अन्तर्गत संकलित कविताओं व कथाओं के माध्यम से सहृदय सामाजिकों का ध्यान इन समस्याओं के प्रति आकृष्ट किया है। कोऽयं तस्या अपराधः? किं नामधेयं यौतकम्?, आक्षेपः कस्मिन्?, उदरस्य कृते, आम्रपाली, परिवर्तनम् आदि ऐसी रचनाएँ है जिनमें इन सामाजिक समस्याओं का वर्तमान रूप व उनके दुष्परिणामों को उल्लेखित कर देशवासियों को इनके समूलोन्मूलन के लिए समुत्प्रेरित किया गया है।

अतः सामाजिक समस्या समाज में विद्यमान एक ऐसी कष्टप्रद दशा है जो न केवल व्यक्ति अपितु सम्पूर्ण समाज के लिए हानिकारक होती है, क्योंकि सामाजिक मूल्यों, आदर्शों और नैतिकताओं आदि के प्रतिकूल होती है तथा समाज की उन्नति में बाधक होती है। डॉ. पाण्डेय ने यौतुक प्रथा, स्त्री–पुरुष भेद, बेरोजगारी, निर्धनता, नारी अवमानना आदि सामाजिक समस्याओं का वर्णन किया है।

भारतीय संस्कृति में विवाह को एक आध्यात्मिक कर्म, दो आत्माओं का मिलन, पवित्र धार्मिक संस्कार और मानव जीवन का अनिवार्य अंग माना जाता है। मनु ने तीनों आश्रमों में श्रेष्ठ आश्रम गृहस्थाश्रम को माना है। जिसका आरम्भ विवाह संस्कार द्वारा होता है। भारतीय संस्कृति में कहा गया है कि स्त्री–पुरुष का पारस्परिक सम्बन्ध तो उनके जन्म लेने से पूर्व ही निश्चित हो जाता है अतः विवाह मानव जीवन को ईश्वर प्रदत्त अनमोल देन है किन्तु वर्तमान समाज में लोगों में निरन्तर बढ़ रही अर्थलोलुपता तथा विलासी प्रवृति ने इस पावन धार्मिक परम्परा को भी कलुषित कर दिया है। इस कुप्रथा के कारण कभी जो नारी देवतातुल्य पूजनीय मानी जाती थी आज धन के लोभ में आकर अनेक अपशब्द संज्ञाओं से अभिहित कर प्रताड़ित की जा रही है। 'यौतुक प्रथा' कौढ़ की तरह समाज

में फैलती जा रही है। जिसके भयंकर दुष्परिणाम सामने आ रहे है। कवि प्रश्नानुप्रश्न की शैली में 'दहेज' जैसी विकट समस्या पर व्यंग्यात्मक शैली में प्रश्न उठाते हुए कहते हैं कि–

"किं नामधेयं यौतकम्?
किं नित्योपयोगि वस्तु
गेहे तव पूर्वमस्तु।
नास्ति चेत् कुरु प्रयत्नं
पौरुषं किं ते सपत्नम्?।।"
सत्यम्! तर्हि तव भिक्षः
अथवा कारयाऽऽत्मनोऽपि यौतवम्।
किं नामधेयं यौतकम्?[4]

कवि यहाँ नारी उत्पीड़न से व्यथित होकर समाज के समक्ष अनेक जीवन्त प्रश्नों को उपस्थित कर सामाजिक चेतना जाग्रत करना चाहते है। वे कहते हैं कि नारी का मूल्यांकन उसके गुणों के आधार पर किया जाता है। न कि दहेज से, उनकी दृष्टि में दहेज युक्त किन्तु निर्गुण नारी सर्वथा है। यथा–

"लज्जाऽऽभरण–भूषिता
प्रसन्ना भवेद् भूषिता।
गुरुशुश्रूषाऽऽ–चरणा
कान्तानुसारिचरणा।।
एवं गुणगणग्रथिता नास्ति चेत्
व्यर्थ ते सयौतकं यौवतम्।
किं नामधेयं यौतकम्?"[5]

यौतुक प्रथा पर प्रश्न उठाने वाली 'परकीय धनम्' मुक्तक कविता में कवि ने यौतुक की तुलना राक्षस से की है–

'यौतुकमातुधानैर्विहितदुर्दशं तद्धनं।'[6]

कवि वर्तमान परिवेश में व्याप्त 'यौतुकप्रथा' के कारण नारी दुर्दशा पर चिन्ता व्यक्त करते हुए 'परकीयधनम्' कविता के माध्यम से समाज को यह सन्देश प्रदान कर जागरुकता उत्पन्न करना चाहते है। कि किसी भी सामाजिक को अपनी पुत्री को परकीय धन के रूप में प्रदान करने से पहले

दहेज रूपी राक्षस पर भलीभाँति विचार कर लेना चाहिए तथा अत्यन्त सोच विचारपूर्वक ही कन्या रूपी धन को परकीय धन के रूप में प्रदान करना चाहिए। यथा–

"तत्पुनः
गृहस्थः/सामाजिक प्राणी
परकीयं किन्तु ममत्वेन नैजं
यौतुकयातुधानैर्विहितदुर्दश तद्धनं
विलोक्य तादृशं दुःखमनुभवति
यस्यानुमानं तु ज्ञानी कण्वोऽपि कर्तुं नैव पारयति स्म।
परन्तु सावधानमनसो भवन्तु ते
ममत्वप्रदातृ परकीयं धनं।।"[7]

समाज में बढ़ती हुई विसंगतियों को उठाते हुए समाज में स्त्री की दुर्दशा को देखकर कवि हृदय पुकारता है कि 'कोऽयं तस्या अपराधः।' हमारे समाज में यदि आज भी किसी नववधू के गर्भ से निरन्तर ही कन्या संतति उत्पन्न होती है तो उसका घर एवं समाज में तिरस्कार होता है यहाँ तक कि उसे अनगिनत यातनाएँ दी जाती है। अतः कवि समाज के इस अपराध से दुःखित होते हुए समाज से प्रश्न करता है कि इसमें उसका क्या अपराध है–

"पुत्रं यदि सा न सूते
बालिकाततिञ्च तनुते।
भाग्याधीना किं कुरुते
तदपि सापराधां मनुषे।।
तदा त्यर्थ तवाक्षेपः, मार्गो नियतेरबाधः।
कोऽयं तस्या अपराधः?"[8]

स्त्री–पुरुष के भेद के कारण वर्तमान में मनुष्य शिक्षित होते हुए भी अपने आपको कन्या–भ्रूण हत्या रूपी पाप के दलदल में धकेलता जा रहा है इस तरह के कुकृत्य ने सम्पूर्ण मानव जाति को कलंकित कर दिया है। ऐसा कलंक जो मानव के दुष्कृत्यों तथा अन्याय की पराकाष्ठा का सूचक है। कन्या भ्रूण हत्या के लिये भी 'दहेज प्रथा' जैसी सामान्य बुराई को उत्तरदायी माना जा सकता है। क्योंकि गरीब माता–पिता दहेज देने के भय से कन्या के जन्म को अपशकुन समझने लगते है और उन्हें जन्म के पूर्व ही कोख में ही समाप्त कर दिया जाता है।

नारी स्वभाव से सहनशील होती है। आरम्भ में वह ही प्रसव पीड़ा को सहन करती है। अन्त में भी अपने ऊपर अत्याचारों को सहन करती है। इसी भाव से व्यथित डॉ. पाण्डेय ने कहा है कि ग्राम से नगर तक नारी के प्रति जो सम्मान और आदर्श होना चाहिए वह उसे सुलभ नहीं है। पुत्र देने वाली नारी का सम्मान है और कन्या सन्तान वाली का अपमान है यह विसंगति समाज के लिए कोढ़ है। सभ्य समाज भी इस कदाचरण से अछूता नहीं है। अतः कवि ने एक ओर जहाँ समाज में नारी की अवमानना का चित्रण किया है तो दूसरी ओर कन्या संतति भी पुत्र के समान ही कल्याणकारी है यह कहकर पुत्र व पुत्री दोनों को समान समझने का संदेश प्रदान कर समाज में जागरुकता लाने का प्रयास किया है यथा–

"अग्रिमा नास्ति किमद्य नारी
नर एवं किं कल्याणकारी।
बालिकापि धत्ते पुत्रसाम्यं
मोदस्व तवेदं महद्भाग्यम्।।"[9]

स्त्री–पुरुष को समान समझने का सन्देश प्रदान कर अंत में कवि ने राष्ट्रहित में 'परिवारकल्याण' सीमित परिवार को अपनाने का सन्देश प्रदान करते हुए कहा है कि–

"तत्स्वीकुरु निरोधम्, क्व वा रोधः विधेरब्धिरगाधः।
कोऽयं तस्या अपराधः?"[10]

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने न केवल मुक्तक कविताओं के माध्यम से अपितु कथा के माध्यम से भी सामाजिकता का चित्रण कर विविध समस्याओं को जीवन्त रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। 'आम्रपाली' कथा का उद्धेश्य कवि की दृष्टि में समाज में नारी के महत्त्व को स्थापित करते हुए गोरवान्वित करना है। समाज में होने वाले आम्रपाली के अपमान से डॉ. पाण्डेय ने सामान्य नारी की दुर्दशा का चित्रण किया है। सभा में होने वाले आम्रपाली के प्रति निर्णय को सुनकर लेखक का हृदय व्यथित हो जाता है तथा अपने हृदय की आह से वे समाज पर अत्यन्त तीक्ष्ण कटाक्ष करते हैं–

"किदृगश्लीलोऽसामाजिकोऽधार्मिकश्च निर्णयः। स्वयं राष्ट्ररक्षकैरबलैका निरपराधापि नगरवधूर्निर्मापिता, यस्या गुणो दुष्धातोरिव दोषाय कल्पितः।"[11]

प्राचीनकाल में निरपराध होते हुए भी अबला नारी पर जो अत्याचार किए जाते थे वे आज भी शिक्षित समाज में उसी रूप में बने हुए है अतः समाज की इस अवस्था से दुःखित होकर डॉ. पाण्डेय नारी दशा के उत्थान के लिए समाज को जागरूक बनाना चाहते है। 'आम्रपाली नगरवधू होते हुए भी राष्ट्र सम्पदा थी' इस वक्तव्य के माध्यम से लेखक ने सामाजिक दृष्टि व नायिका के व्यक्तित्व को

नए प्रतिमान दिए है। साथ ही समाज में नारी की महत्ता को गौरवान्वित कर समाज में नारी उत्थान के प्रति चेतना जागृत करते हुए समाज में स्त्री के प्रति जो पूजनीय भाव होना चाहिए उसे सत्य रूप में प्रतिष्ठापित किया है।

नारी उत्थान के प्रति अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को चेतना प्रदान करने के पश्चात डॉ. पाण्डेय ने समाज में अपने पैर मजबूती से जमाने वाली अन्य समस्याओं के विषय में भी पाठकों को अवगत कराते हुए सामाजिकों को जाग्रत करने का प्रयास किया है। 'परिवर्तनम्' कथा के द्वारा प्रो. पाण्डेय ने वर्तमान सामाजिक परिवेश की सत्यता को अतिसहजता के साथ यथार्थ रूप में चित्रित किया है। नई पीढ़ी आज भी हमारे समाज में अपने बुजुर्गों की उपेक्षा कर रही है, यह बुराई समाज में दिनोंदिन बढ़ती जा रही है जो अत्यधिक निन्दनीय है। जबकि हमारा समाज प्रारम्भकाल से ही वृद्धोपसेविनी रहा है जैसा कि मनुस्मृति में महाराज मनु ने लिखा है कि–

"अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलं।।"[12]

डॉ. पाण्डेय नवीन पीढ़ी में पुनः इसी भाव को जाग्रत करना चाहते है तथा समाज में वृद्धों को पुनः उसी प्रतिष्ठित पद पर देखना चाहते है जिसकी सत्यता मनु ने प्रतिपादित की है। अतः वर्तमान पीढ़ी को वृद्धों की सेवा के प्रति जागरुक होना चाहिए। समाज में व्याप्त बेरोजगारी जैसी विकराल समस्या के प्रति भी डॉ. पाण्डेय ने समाज को चेतनता प्रदान करने का प्रयास करते हुए 'आक्षेपः कस्मिन्?' कविता के माध्यम से व्यंग्यात्मक शैली में प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। भारत में बेरोजगारी की समस्या अपनी चरम सीमा पर है। भारत जैसे समृद्ध राष्ट्र में आज भी बेरोजगारी रूपी पिशाच मजबूती से अपनी जड़े जमाय हुए है यद्यपि सरकार द्वारा बेरोजगारी उन्मूलन हेतु कई योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है तथापि यह समस्या अभी भी विकट रूप में विद्यमान है। बेरोजगारी जैसी विकाराल समस्या से जूझते हुए नवयुवक के अन्तर्द्वन्द्व को परिभाषित करते हुए डॉ. पाण्डेय कहते है कि अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति किए बिना गृहस्थ का सम्मान भी शेष नहीं रह पाता, व्यक्ति हरपल आजीविका की तलाश में भटकता रहता है। किसे बुरा कहे या किस पर आरोप मढ़े यथा–

"विवशः सः,
गृहे पत्न्या परिभाषणापेक्षया,
अधिकारिणः प्रलाप श्रोतुम्।
पश्यति गृहे दर्पणे, यत्र विलोक्यते

विलपन् पृथुकः, दुग्धबिन्दुप्राप्त्यै।
न कदाचिदपि मिलति
निजस्य नियतकर्मणः
आक्षेपः कस्मिन्
कार्यालये
अथवा पृथुकः?"[13]

यहाँ भी कवि अन्त में प्रश्न उपस्थित करते हुए इस सामाजिक समस्या के प्रति लोगों में चेतनता उत्पन्न करना चाहते है।

बेरोजगारी के कारण गरीबी व अमीरी के बीच की दूरी ओर अधिक बढ़ती जा रही है। लक्ष्मी निर्धनों का उपहास करती हुई धनिकों के पास संचित होती जा रही है जिससे उच्च व निम्न वर्ग में और अधिक अन्तराल आता जा रहा है। जो सामाजिक विसंगतियों का प्रधान कारण है। क्योंकि समाज में अर्थ की प्रधानता को कौन नहीं जानता? आज का युग अर्थप्रधान युग है सभी अर्थातुर है तथा जिसके पास धन है वही व्यक्ति गुणवान् व विद्वान् है। जैसा कि नीतिशतक में भर्तृहरि ने भी कहा है कि–

"यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते।।"[14]

लक्ष्मी अपनी विपरीत प्रकृति के कारण धनिकों के पास ही संचित हो रही है तथा निर्धन वर्ग विविध समस्याओं से जूझने पर भी निर्धन ही बने हुए है। इससे समाज में जो अन्तराल आ रहा है वह राष्ट्र की सामाजिक दशा के लिए अभिशाप है। अतः यहाँ कवि ने 'अन्तरालः' कविता के माध्यम से लक्ष्मी की विपरीत प्रवृत्ति का वर्णन करते हुए समाज में व्याप्त निम्न वर्ग की दयनीय दशा का चित्रण किया है साथ ही लोगों को इस समस्या के प्रति जागरूक किया है। यथा–

"फलतो लक्ष्मीः
दरिद्राणां प्रसन्नतां विलोक्य
तद्भाग्योपरि हसन्ती
धनिकानामन्धकारपूर्णेषु तलगृहेषु संस्थाय
धनिकतादरिद्रतान्तरालं गभीरीकरोति।"[15]

अन्ततः हम कह सकते हैं कि डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वतसौरभम्' में वर्तमान समाज में व्याप्त विविध समसामयिक समस्याओं यथा यौतुक प्रथा, स्त्री–पुरुष भेद, बेरोजगारी, नारी उत्पीड़न, उच्च व निम्न वर्ग के बीच बढ़ता अन्तराल आदि को अपनी लेखनी का आधार बनाकर उन समस्याओं के प्रति लोगों में चेतनता उत्पन्न करने का प्रयास किया है। विविध सामाजिक समस्याओं की वेदनाओं से त्रस्त कवि ने सामाजिकों के समक्ष अनेक जीवन्त प्रश्नों को प्रस्तुत किया है। जो अनुत्तरित है, जिनके द्वारा लेखक समाज में जागृति उत्पन्न करना चाहते है तथा भारतीय समाज को एक आदर्श समाज के रूप में स्थापित करना चाहते है। लेखक ने सामाजिकों के समक्ष जो प्रश्न उपस्थित किए है वे अनुत्तरित है, बौद्धिक चेतना ही इस जागरण को मूर्त्त रूप दे सकती है।

5.3 राष्ट्रीय चेतना

राष्ट्र की भूमि, संस्कृति, सभ्यता, भाषा, दर्शन, कला, इतिहास, परम्पराओं, पौराणिक मान्यताओं आदि के प्रति लोगों के मन में स्वाभाविक रूप से गरिमा एवं महिमा की जो अदम्य व प्रबल भावना रहती है, जिससे प्रेरणा पाकर लोग अपने राष्ट्र की भौतिक व आध्यात्मिक सम्पदा की रक्षा हेतु सदैव तत्पर रहते है। राष्ट्र अनेक विविधताओं में भी एकता की अनुभूति करता है तथा राष्ट्रभूमि को स्वर्ग से भी महान समझने लगता है। वह शुद्ध अपनत्व की भावना ही 'राष्ट्रीय–भावना' कहलाती है।

आधुनिक संस्कृत कवि भी अपने काव्यों में राष्ट्रीय भावना को प्रतिबिम्बित कर रहे हैं। आधुनिक संस्कृत कवि डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्' संकलन के पद्यपुष्पगुच्छ भाग की 'राष्ट्रीयम्' खण्ड की छः कविताओं के माध्यम से, गद्यपुष्पगुच्छ की 'आत्मसमर्पणं व 'सद्बुद्धिं देहि' दो कथाओं, तीन चरितात्मक निबन्धों के द्वारा व दो एकांकी रूपकों के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को पुष्ट किया है। भारत देश के प्रसिद्ध इतिहास को बतलाते हुए कवि लिखते हैं कि–

"भारतं नाम देशोऽयं
ख्यात आसीच्च वर्तते।
बहवोऽत्र नृपां राज्यं
चक्रुर्नीतिपरायणा।।"[16]

'राष्ट्रीयम्' पद्यपुष्पगुच्छ में कवि ने भारतमाता की स्तुति करते हुए यहाँ के योद्धाओं की प्रशंसा की है। डॉ. पाण्डेय ने राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणों की आहूति देने वाले शहीदों की शहादत व अपूर्व बलिदान के प्रति प्रणाम करते हुए उन्हें भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। यथा–

"देवलोकप्रयातानां तेषामात्मोपशान्तये।
समर्प्यते समाधौ वै भावनाकुसुमाञ्जलिः।।"[17]

यद्यपि भारतीयों में राष्ट्रवाद की भावना आज भी विद्यमान है किन्तु आतंकवाद, मासूमों की निर्मम हत्या, भ्रष्टाचार प्रभृति समस्याओं ने यहाँ के निवासियों को झकझोर के रख दिया है। डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्' में राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त किया है।

भारत में ऐसी अनेक समस्याएँ है जो मजबूती से अपनी जड़े जमाए हुए है साथ ही जो राष्ट्रीय एकता की भी बाधक है। ऐसी ही समस्याओं को वर्णित करते हुए डॉ. पाण्डेय ने अपने पड़ौसी राष्ट्र पाकिस्तान की कुटिल नीतियों एवं विध्वंसकारी कार्यों की निन्दा करते हुए हमारे सबसे प्रमुख 'कश्मीर मुद्धे' को उठाते हए आतंकवाद के कारण भारत व पाकिस्तान के सम्बन्धों में जो अन्तराल आ रहा है उसकी आलोचना की है। शारदा देश भारतीयों की संस्कृति एवं साहित्य का सारस्वत केन्द्र रहा है। इस भूमि के प्रति पाकिस्तान की दूषित वृत्ति निन्दनीय है। यथा–

"श्री शारदादेशज कोविदानां,
शास्त्रीय चर्चा शिवशक्तिसत्ताम्।
तां छेत्तुकामा यवनाः निकृष्टाः,
सीमाप्रविष्टाः कुटिला हि पाकाः।।"[18]

आज के नवीन युवा किस तरह अनेक प्रकार के प्रलोभनों में आकर अपने ही राष्ट्र में आतंकवाद रूपी राक्षस को जन्म देते है तथा अपने बन्धुओं का रक्त बहाते है। इस समस्या का वर्णन 'आत्मसमर्पणम्' कथा में करते हुए लेखक ने कहा है कि यह कहना अनुचित है कि धर्मान्धता आतंकवाद की जननी है, अनेक व्यक्ति ऐसे भी है जो धर्म से बढ़कर राष्ट्र व मानवतावादी के पक्षपाती है। इस कथा का मूलाधार विश्वजनीन विध्वंस प्रवृत्ति वाले आन्दोलन की ओर है जो बिना उद्धेश्य के हिंसा पथ पर अग्रसर है। सम्पूर्ण विश्व इस हाहाकार से त्रस्त है, भयभीत है, मृत्यु के क्षणबोध से कांप रहा है जैसा कि हम आये दिन समाचार पत्रों में पढ़ते व न्यूज चैनल्स पर देखते हैं कि हमारे कितने ही निर्दोष जवान इस आतंकवाद रूपी राक्षस का ग्रास बन रहे है। भारत का स्वर्ग 'जम्मू–कश्मीर' अनेक वर्षों से इस आतंकवादरूपी राक्षस के हिंसा–ताण्डव से त्रस्त है। इस समस्या के प्रति लोगों में चेतना जागृत करने के लिए लेखक का मत है कि इस समस्या से निजात पाने का एक ही उपाय है और वह है कि हमारी भटकी हुई नवीन युवा पीढ़ी अपने दुराग्रह को छोड़कर आत्मसमर्पण कर राष्ट्र की मुख्यधारा से सम्पृक्त हो–

"किं न जानीथो यत् जननी जन्मभूमिश्च
स्वर्गादपि गरीयसी। साम्प्रतमपि कुमार्गमेनं
विसृज्य सदाचारपथाग्रयायिनो भवत।

आतंकवादेनोग्रवादेन च राष्ट्रस्य महती

हानिर्जायते, देश विश्रृखलितो भवति।।"[19]

आतंकवाद, उग्रवाद ही नहीं अपितु हमारे राष्ट्र में 'भ्रष्टाचार' की समस्या विकराल रूप धारण कर रही है। यद्यपि भारत स्वतन्त्र है तथापि स्वतन्त्र भारत में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार, द्वेष भावना, एक–दूसरे पर आक्षेप–प्रत्याक्षेप आदि से लोकतन्त्र की दुर्दशा पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कवि हृदय ने भारत की स्वतन्त्रता पर जो आक्षेप किया है वह अत्यन्त सटीक है यथा–

"क्रियते यदि दृष्टिपातः

द्वैधीभावः सदैव जातः

अतः परैः शासितं नित्यं

पृच्छतु नाम तदादित्यं

राष्ट्रं जातं परतन्त्रतम्।

भारतं नाम स्वतन्त्रतम्।।"[20]

भ्रष्टाचार या आतंकवाद ही नहीं अपितु हमारे राष्ट्र में कई ऐसी समस्याऐं है जो निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होते हुए राष्ट्रीय परिवेश को दूषित कर रही है। जिसमें जनसंख्या वृद्धि, जातिवाद, बलात्कार आदि समस्याऐं प्रमुख है। डॉ. पाण्डेय अपनी कृति के माध्यम से इन समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए लोगों में इनके प्रति चेतना उत्पन्न करना चाहते है। राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने के निमित्त डॉ. पाण्डेय अन्ततः यहाँ के निवासियों में सद्बुद्धि हेतु प्रार्थना करते है। ताकि यहाँ के निवासियों में सद्बुद्धि हेतु प्रार्थना करते है। ताकि यहाँ के निवासी अपने राष्ट्र को उन्नति पथ पर अग्रसर करने के निमित्त सत्प्रेरणा प्राप्त कर जागृत हों। अन्ततः डॉ. पाण्डेय ने राष्ट्रीय चेतना की भावना को राष्ट्र के उत्थान के निमित्त इस प्रकार अभिव्यक्ति प्रदान की है–

"हे राष्ट्रपिताः! पथभ्रष्टान् सहोदरान् अग्रजान्, भ्रातृन् में शिक्षया सदाचारम्, देहि सद्बुद्धिम्, येन संरक्षिता जननी जन्मभूमिश्च मदीया मानवती, मानववती, मानवतावती च स्यात्।"[21]

अतः यौतुकप्रथा, स्त्री–पुरुष भेद, बेरोजगारी, उच्च व निम्न वर्ग के बीच बढ़ता अन्तराल, भ्रष्टाचार, जातिवाद, जनसंख्या, आतंकवाद आदि के कारण सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना लुप्त होती जा रही है तथा समाज व राष्ट्र भी अवनति की ओर उन्मुख है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि समाज व राष्ट्र में सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया जाए जिससे प्रबुद्ध नागरिक समाज व राष्ट्र की उन्नति में सहायक हो सकें।

≈≈≈≈

संदर्भ सूची

1. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–51
2. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–53
3. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–36
4. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–35
5. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–35
6. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–24
7. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–24
8. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–36
9. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–36
10. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–36
11. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–62
12. मनुस्मृति, आचार्य मनु
13. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–37
14. नीतिशतक, भर्तृहरि
15. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–48
16. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–28
17. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–29
18. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–31
19. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–72/30
20. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–30
21. सारस्वतसौरभम्, डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय', पृ.सं.–74

उपसंहार

उपसंहार

'संस्कृतोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' इस उक्ति से संस्कृत भाषा की व्यापकता, विश्वजनीनता तथा सर्वकालिकता का स्पष्टतया से पता चलता है। संस्कृत–साहित्य का अपना स्वरूप और अपनी ही विशिष्टता है। यह सुदीर्घकाल से बहती हुई अलकनन्दा है जिसमें सजीवता व झंकृति है, यह तरंगायित है और सहृदय के तारों में कम्पन किए बिना नहीं रहती है।

संस्कृत साहित्य के दोनों पक्षों को पल्लवित व पुष्पित करते हुए अनेक कवियों व मनीषियों ने संस्कृत साहित्य के साहित्यिक कोश में विपुल वृद्धि की है। आधुनिक संस्कृत महाकवि न यश के लिए काव्य रचना कर रहे हैं, धन के लिए काव्य रचना कर रहे हैं, अपितु वे तो भारतभूमि, संस्कृति और संस्कृत के प्रति पूर्णता भावेन समर्पित है, जैसाकि कहा भी गया है कि–

"न यशसे, न धनाय, शिवेतरक्षतिकृतेऽपि च नैव कृतिर्मम।
इयमिमां भारतावनि संस्कृतिं सुरगवीं च निषेवितुमुद्गता।।"

साहित्य के दो पक्ष सभी साहित्याचार्यों द्वारा स्वीकार किए गए है। जिनमें से एक पक्ष के द्वारा हम अपने भावों, विचारों, आकांक्षाओं तथा कल्पनाओं का अभिव्यंजन करते हैं, उसे 'भावपक्ष' कहते हैं तथा दूसरे पक्ष के द्वारा हम अपने सौन्दर्य ज्ञान की सहायता से उन्हें सुन्दरतम बनाते है तथा उसमें एक अद्भुत आकर्षण का आविर्भाव करते हैं, जिसे 'कलापक्ष' कहते है। साहित्य के इन दोनों पक्षों का घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा दोनों के समुचित संयोग और सामंजस्य से ही साहित्य को स्थायित्व मिलता है। तथा उसका सच्चा स्वरूप उपस्थित होता है। इसी वक्तव्य का शब्दान्तर से आचार्य कुन्तक भी अनुमोदन करते हुए कहते है कि–

"साहित्यमनयोः शोभाशालितां प्रतिकाप्यसौ।
अन्यूनानतिरिक्तत्व मनोहारिण्य वास्थितिः।।"

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का कैनवास आज इतना व्यापक हो गया है, कि उस पर न जाने कितनी विधाओं में चित्र उकेरे जा रहे है। विविध विधाओं व नवीन दृष्टि को अपने काव्य सृजन का आधार मानने वाले अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के विद्वत् कवियों यथा सीतानाथ आचार्य, पद्मशास्त्री, पं. श्री मोहनलाल पाण्डेय, डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, डॉ. हरिराम आचार्य, डॉ. रेवा

प्रसाद द्विवेदी आदि के नाम अनन्वय है, जिन्होंने अपनी विविध विधाओं व विविध शैलियों से अलंकृत रचनाओं के द्वारा माँ भारती का शृंगार किया तथा संस्कृत साहित्य जगत में सृजन के नये आयाम स्थापित किए है।

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' भी इसी नवीन रूप में प्रवाहित संस्कृत साहित्य रूपी अलकनन्दा के प्रवीण चितेरे कवि है। संस्कृत नाट्य प्रणेता–पं. हरिजीवन मिश्रः, सारस्वत–सौरभम्, वृक्षरक्षणम्, हंसरक्षणम्, राष्ट्ररक्षणम् इनके गम्भीर चिन्तन ओर नूतन आयामों का दर्पण है। यह कृतियाँ लेखक की विविध विधाओं में बहु आयामी प्रतिभा व विभिन्न शैलियों की परिचायिका है।

शोध प्रबन्ध विषय को मैंने पाँच अध्यायों में विभाजित किया है।

प्रथम अध्याय के अन्तर्ग डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का परिचय (व्यक्तित्व व कृतित्व) है। सम्पूर्ण विश्व में अपनी रचना एवं स्थापत्य कला के लिए सुप्रसिद्ध 'गुलाबी नगर' जयपुर का प्राचीनतम स्थान महर्षि गालव का आश्रम गलतातीर्थ के नाम से जाना जाता है। इसी गालव तीर्थ में ऋषि पंचमी के शुभ अवसर पर जब पं. गंगाबक्ष जी पौत्र पं. श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा अपने सहयोगियों के साथ सायंकाल 4.30 बजे ऋषि तर्पण कार्यक्रम में व्यक्त थे। तभी अपने यहाँ पौत्र जन्म का समाचार मिला। अकस्मात् ही अतीव हर्षोत्फुल्ल मन से पण्डित जी ने ऋषि पंचमी को जन्म होने से पौत्र का नाम 'ऋषि शंकर' रखा जो कालान्तर में शिक्षाक्षेत्र में प्रवेश के समय से ताराशंकर के रूप में परिवर्तित हुआ। पं. दुर्गाप्रसाद जी के ज्येष्ठ पुत्र पं. मोहनलाल शर्मा संस्कृत क्षेत्र में अपना विशेष स्थान रखते हैं। इन्होंने खण्डकाव्य, उपन्यास आदि की रचनाएँ कर संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया तथा गद्य पद्य में अपनी प्रौढ़ शैली की रचना के आधार पर कई पुरस्कारों के साथ–साथ शास्त्र, महोदधि, विद्यासागर, प्रतिनव बाणभट्ट आदि मानद उपाधियाँ प्राप्त की। ऐसे वंश परम्परागत धार्मिक एवं आस्तिक विचारों से परिपूर्ण संस्कृत वातावरण में पं. मोहनलाल शर्मा के पुत्र रत्न के रूप में 05 अगस्त 1957 को जन्में डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने विद्यार्थी जीवन में स्वयं को मेधावी, परिश्रमी प्रतिभावन छात्र के रूप में प्रस्तुत किया। छात्रावस्था में ही आपने अनुष्टुप् पद्य की रचना कर स्वजनों को आह्लादित किया। डॉ. पाण्डेय का अनेक शोध पत्रों में योगदान रहा है। डॉ. पाण्डेय ने विभिन्न संस्थाओं द्वारा आयोजित काव्य–गोष्ठियों में भाग लेकर संस्कृत साहित्य में अपनी सहयोगिता प्रदान की है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत संस्कृत साहित्य में पद्य गद्य व रूपक साहित्य का उद्भव तथा विकास है। संस्कृत साहित्य अपनी विविधता, समृद्धि, सक्रियता, विशष्टता, सार्वभौमिकता, उपलब्धि आदि सभी दृष्टि

से अनुपम है। संस्कृत साहित्य का एक–एक अंग अपनी समृद्ध परम्परा लेकर चरम विकास के बिन्दु तक पहुँचा है। समस्त संस्कृत साहित्य दो भागों में विभक्त है। वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य। लौकिक साहित्य में अनेक विधाएँ परिगणित की जाती है। संस्कृत साहित्य में स्वतन्त्र रूप से मुक्तक या गीतिकाव्य का 'श्री गणेश' महाकवि कविकुल गुरु कालिदास की कृति 'ऋतुसंहार' से हुआ माना जाता है। भर्तृहरि के शतकत्रय मुक्तक के रूप में प्रसिद्ध है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में अनेक रचनाकार हुए हैं जिन्होंने मुक्तक काव्यों में विषयवस्तु तथा अभिव्यक्ति की दृष्टि से नूतन प्रयोग किया है। उन्नीसवीं शती के अन्त से लेकर अद्यावधि संस्कृत साहित्य में सहस्र की संख्या में लघुकथाओं व कथासंग्रहों का प्रणयन किया जा रहा है। इसी परम्परा में आधुनिक कवि डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का स्थान महत्त्वपूर्ण है। 'सारस्वतसौरभम्' कृति के पद्य खण्ड में कवि ने 42 मुक्तक कविताओं का संग्रह किया है। जहाँ एक ओर प्रत्येक मुक्तक अपने आपमें स्वतन्त्र तथा पूर्ण है छन्दों तथा अलंकारों में निबद्ध है। वहीं दूसरी ओर कुछ मुक्तक कविताएँ नवीन विधा का समर्थन करते हुए छन्दोमुक्त है। इस संग्रह ग्रन्थ में कवि ने वर्तमान समय में सहृदयों को प्रिय लगने वाली विविध समसामयिक विषयों पर लिखी गई मुक्तक कविताओं का संकलन किया है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' विरचित कृतियों का अध्ययन है। अनेक भारतीय मनीषियों का विचार है कि वैदिक काल में नाटक के प्रधान अंग नृत्य, संगीत, संवाद आदि का अस्तित्व था। ये ही अंग विकसित होकर कालान्तर में नाटक के रूप में परिवर्तित हो गए। अनेक कवियों ने भरतमुनि को आदर्श मानकर नाटकों की रचना की है। आधुनिक कवियों में डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का नाम अनन्य है। डॉ. पाण्डेय की कृतियों का परिचयात्मक अध्ययन इस प्रकार है–

डॉ. पाण्डेय ने 'संस्कृत नाट्य प्रणेता–पं. हरिजीवन की नाट्य कृतियों का समीक्षात्मक व समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। पं. हरिजीवन मिश्र ने दश नाट्य कृतियों का लक्षणानुसार सागोंपांग रचना की। उनकी सभी नाट्य रचनाओं का प्रकाशन हुआ। इनके विरचित रूपकों में अभिनेय के गुणों का भी दर्शन होता है। यह निर्विवाद कह सकते है कि पण्डित हरिजीवनमिश्र आधुनिक काल के भास कहलाते है। इनके सभी रूपकों में मनोरंजन के साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश है। अतः 17वीं शताब्दी में संस्कृत नाट्य साहित्य रचनाकारों में नाट्यकार हरिजीवन मिश्र का स्थान अद्वितीय है।

'सारस्वतसौरभम्' में डॉ. पाण्डेय ने कथा, आलेख, नाटक एवं विभिन्न मुक्तक काव्यों का संग्रह प्रकाशित किया है। इसमें यमक, श्लेष, अनुप्रास, उपमा, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, समासोक्ति आदि

अलंकारों के प्रयोग से कविता का स्वरूप ह्रदयावर्जक बन गया है। कवि ने छन्द में अनुष्टुप्, आर्या, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, मालिनी आदि छन्दों का प्रयोग तो किया ही है वहीं नवीन सरणी को अपनाते हुए छन्दोमुक्त रचनाऐं भी की है। कवि ने श्रृंगार, करुण प्रभृति रसों का प्रयोग करते हुए अवसरानुकूल भावों को प्राथमिकता दी है। देव–स्तवन प्रसंग में भक्ति रस की अभिव्यंजना हुई है। 'सारस्वतसौरभम्' में कवि ने न केवल स्तुति व प्रकृति से सम्बन्धित विषयों का समावेश किया है। अपितु वर्तमान समाज व राष्ट्र में व्याप्त यौतुक प्रथा, स्त्रीदशा, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, राजनीति, आतंकवाद आदि समसामयिक विषयों पर भी कवि ने अत्यन्त सफलतापूर्वक लेखनी चलाते हुए भावपक्ष को पुष्ट किया है।

'वृक्षरक्षणम्' डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' कृत उत्तराखण्ड संस्कृत संस्थान व दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर प्रथमतया पुरस्कृत लघुनाटक है। कवि ने इसमें बताया है कि पर्यावरणीय संतुलन में वृक्षों की महती भूमिका होती है। इसलिए हमारे ऋषि–महर्षियों ने वृक्षों का औषधीय महत्त्व समझते हुए उनके संरक्षण हेतु अनेक धार्मिक, सामाजिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी मान्यताओं की प्रतिष्ठापना की। यज्ञादि धार्मिक कृत्यों के सम्पादन में देवदारू, कल्पवृक्ष, पीपल, बड़, कदम्ब आदि वृक्षों के साथ शमी वृक्ष ने भी अत्यधिक महत्त्व प्राप्त किया। राजस्थान राज्य में शमी (खेजड़ी) वृक्ष बहुलता से मिलता है और इसकी सुरक्षा के लिए यहाँ की जनता सजग है। विश्व पर्यावरण संरक्षण संस्कृति के 'चिपको आन्दोलन' की यह प्रथम महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है।

'हंसरक्षणम्' डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' कृत दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत लघुनाटक है। इसमें कवि ने महात्मा गौतम बुद्ध द्वारा स्वाभाविक रूप से की गई हंस–रक्षा की घटना को प्रस्तुत किया है। इसके माध्यम से कवि ने जीव–रक्षा के लिए सभी लोगों को जागरूक करने का प्रयास किया है। सम्पूर्ण विश्व में अभ्यारण्यों का विकास तथा संरक्षण और उनमें निवास करने वाले वन्य जीवों की लुप्त होती प्रजातियों को बचाने के लिए समस्त लोगों में जागरुकता उत्पन्न होनी चाहिए। प्राचीन काल में भी जल, वन एवं वन्यजीवों के संरक्षण के प्रति जागरुकता तत्कालीन शासकों एवं प्रजा में तुल्य रूप से देखने को मिलती है।

'राष्ट्ररक्षणम्' डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' कृत पुरस्कृत लघु नाटक है। राजस्थान को वीरों व वीराङ्गनाओं की भूमि कहा जाता है। 'राष्ट्ररक्षणम्' का कथानक राजस्थान का ऐतिहासिक पृष्ठ है। इतिहास प्रसिद्ध मेदपाटाधिपति महाराणा प्रताप के जीवनवृत्त की उस साहसिकता का परिचय दिया है, जिस पर समस्त राष्ट्र का शिर गौरवान्वित है। ऐतिहासिक कथानक को अपनी ओर से प्रस्तुत कर

नाट्य परम्परा की सीमा का निर्वहन करते हुए आज की नाट्यकला से समन्वित किया है। जो कवि की प्रतिभा व कौशल का परिचायक है। संवाद छोटे और संवेगपूर्ण है। सहजता के साथ रंगमंच पर अभिनीत किये जाने वाला यह रूपक राष्ट्रियता से ओतप्रोत है।

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' की कृतियों का साहित्यिक अध्ययन है। साहित्य समाज का दर्पण है और संस्कृति का अभिन्न अंग भी। साहित्यकार कला को जीवन के लिए मानते है। जो संवेदनशील है, सहृदय है, भावुक है, ऐसे साहित्यकारों की रचनाओं में कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष प्रधान होता है। उनका साहित्य समाज के लिए आदर्श होता है। यायावरीय के अनुसार पाँचवीं साहित्य विद्या है। डॉ. पाण्डेय विरचित कृतियों का साहित्यिक (रस, गुण, रीति, अलंकार, छन्द) विश्लेषण निम्न है–

रस– डॉ. पाण्डेय ने अपनी कृतियों में वीर, करुणा, श्रृंगार आदि रसों का वर्णन करते हुए रति विषयक भाव या भक्ति भाव को प्रधानता दी है। कवि समसामयिक समस्याओं से व्यथित जान पड़ते हैं अतः उन्होंने अपने शोक भाव को प्रकट करने के लिए करुण रस का प्रयोग किया है।

गुण–डॉ. पाण्डेय की कृतियों में प्रसाद गुण सर्वाधिक रूचिकर गुण के रूप में उभरकर सामने आता है परन्तु जहाँ कहीं भी श्रृंगार या करुण रस की अभिव्यक्ति हुई है वहाँ प्रसंगानुकूल ही भाषा में माधुर्य गुण का समावेश हुआ है। जहाँ राष्ट्रप्रेम की भावना व्यक्त हुई है वहाँ वीर रस का प्राधान्य होने के कारण यत्र–तत्र ओजगुण भी दिखलाई पड़ता है।

रीति–डॉ. पाण्डेय ने वैदर्भी रीति को ही अपने मुक्तकों में प्रधानता दी है। अतः गौड़ी व पाञ्चाली रीति के दर्शन इस कृति के मुक्तकों में प्रायः कम होते हैं। कवि की रूचि वैदर्भी रीति युक्त पदों की संघटना में ही अधिक दिखलाई पड़ती है।

अलंकार – डॉ. पाण्डेय ने अपने गद्यपद्यनाट्य संग्रह–'सारस्वतसौरभम्' में बिना प्रयत्न अनायास प्रयुक्त भिन्न–भिन्न अलंकारों का भावानुरूप सुन्दर प्रयोग किया है। अलंकारों का प्रयोग डॉ. पाण्डेय ने अपने रचना चातुर्य को प्रदर्शित करने के लिए जानबूझकर नहीं किया है अपितु स्वतः ही वे अलंकार उनकी भाषाशैली में गुम्फित हो गये हैं।

छन्द–डॉ. पाण्डेय विरचित 'सारस्वत–सौरभम्' यद्यपि पूर्ण रूपेण छन्दोबद्ध नहीं है। कवि ने इसमें कई छन्दोंमुक्त रचनाओं का भी समावेश किया है। नयी कविताओं के छन्दों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये हैं।

पंचम अध्याय के अन्तर्ग डॉ. पाण्डेय की कृतियों का सामाजिक व सांस्कृतिक अध्ययन, सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में अनेक कवियों की कृतियाँ हमारी सामाजिकता व सांस्कृतिकता की परिचायक है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य को अपनी उत्कृष्ट रचनाओं से संवर्द्धित करने वाले ऐसे महाकवियों की श्रेणी में विद्वत् कवि डॉ. पाण्डेय का स्थान महत्त्वपूर्ण है। डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वतसौरभम्', हसंरक्षणम्, राष्ट्ररक्षणम् कृति में अपनी लेखनी के माध्यम से भारतीय समाज व संस्कृति का जो चित्र खींचा है वह अद्वितीय है। सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत कवि ने भारतीय समाज के विविध पहलुओं का वर्णन करते हुए समाज में व्याप्त विविध समसामयिक समस्याओं का अत्यन्त जीवन्त रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। डॉ. पाण्डेय समाज में व्याप्त निर्धनता, बेरोजगारी, यज्ञैतुकप्रथा आदि वर्तमान समय की कई समस्याओं के प्रति जागरुक व संवेदनशील है। कवि ने भारतीय संस्कृति के अनुरूप विविध देवों का स्तवर किया है। जो उनके सांस्कृतिक अनुराग का द्योतक है।

निष्कर्ष

आधुनिक संस्कृत साहित्य में डॉ. पाण्डेय का भावपक्ष की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि ने वर्तमान परिवेश में व्याप्त विविध विषयों को अपनी लेखनी का आधार बनाकर भावपक्ष की सुन्दराभिव्यक्ति दी है। जो कि उन्हें आधुनिक संस्कृत कवियों के मध्य परम स्थान प्रतिष्ठापित करने वाली है। डॉ. पाण्डेय का कलापक्ष की दृष्टि से भी आधुनिक संस्कृत कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि ने जहाँ विविध छन्दों का प्रयोग किया है, वहीं नवीन सरणी को अपनाते हुए छन्दोमुक्त रचनाऐं भी की है। आधुनिक संस्कृत कवियों का उद्देश्य है संस्कृत रचनाओं का प्रणयन सरल व सुबोध भाषा में करना। अतः डॉ. पाण्डेय ने भी सर्वत्र सरल और माधुर्य व्यंजक पदों का प्रयोग किया है। वैदर्भी रीति को प्रधानता देते हुए कवि ने सर्वत्र प्रसादगुणयुक्त सरल व सहज पदावली का प्रयोग किया है जो कि आधुनिक संस्कृत कविताओं की प्रमुख विशेषता है। इनकी भाषा में कहीं भी क्लिष्टता, दुरुहता तथा शब्दाडम्बर नहीं है वरन् लेखक ने प्रायः सुगम्य भाषा शैली के माध्यम से अपनी बात कह दी है।

अतः अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय में कवियों ने भावपक्ष व कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से नवीन बिम्बों को अपनाया है। आधुनिक संस्कृत कवियों के समान डॉ. पाण्डेय ने भी विविध समसामयिक समस्याओं का उल्लेख करते हुए उनका समीचीन समाधान भी प्रस्तुत किया है। प्रो. (डॉ.) ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' प्रतिभासमृद्ध, गहन अध्येता, व्याकरण का प्रौढ़ज्ञान रखने वाले, शास्त्रीय परम्परा से जुड़े

हुए किन्तु सामयिक वेदनाओं से संत्रस्त समर्थ कवि एवं लेखक है। अतः डॉ. पाण्डेय का आधुनिक संस्कृत साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

उपसंहार

प्रो. (डॉ.) ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' की कृतियों को बालकों, युवकों आदि में सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय भावना आदि के लिए विद्यालयों, महाविद्यालयों एव विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिए। ताकि भावि पीढ़ी को हमारे राष्ट्र व समाज के बारे में जानकारी हो। सृजनकर्त्ता का यह कार्य अत्यन्त प्रेरणास्पद, प्रशंसनीय एवं स्तुत्य है। प्रो. पाण्डेय की रचनाएँ संस्कृत समाज के लिए मार्गदर्शन युवा वर्ग के लिए आदर्श रूप में सिद्ध होगी। संस्कृत समाज अवश्यमेव इससे लाभान्वित होगा।

≈≈≈≈

शोध सारांश

शोध सारांश

विश्व वाङ्मय में संस्कृत साहित्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, पुराण, रामायण, महाभारत अन्यान्य सभी शास्त्र तथा सभी दृश्य एवं श्रव्य काव्यों की परिगणना होती है।

संस्कृत वाङ्मय को समृद्ध करने की यह परम्परा प्राचीनकाल से अभी तक अनवरत चली आ रही है। आधुनिक युग अर्थात् विगत दो शताब्दियों में असंख्य महाकाव्य, नाटक, गीतिकाव्य मुक्तक काव्य, शतक काव्य लिखे गये। वर्तमान में अनेकों नवीन विधाओं में रचनाऐं लिखी जा रही है। रेडियो, नाटक, आकाशवाणी के रूपक, संस्कृत गीत, छन्दहीन व छन्दोबद्ध संस्कृत कविताएँ नए–नए रूप धारण करके सामने आ रही है। समस्त भारत के आधुनिक कवियों द्वारा केवल काव्य नाटक और गीत ही नहीं अपितु शास्त्रीय ग्रन्थों का निर्माण भी सतत् गति से किया जा रहा है।

राजस्थान में भी विशाल संस्कृत साहित्य लिखा गया है। विगत दो शताब्दियों में 300 से अधिक महाकाव्य, असंख्य नाटक, गद्य रचनाएँ ऐतिहासिक काव्य आधुनिक विषयों को लेकर लिखे गये, काव्य प्रचुर संख्या में है। राजस्थान के कवि विभूतियों में विद्वत शिरोमणि मधुसूदन ओझा, पं. मोतीलाल शास्त्री, मोहनलाल पाण्डेय आदि विशेष उल्लेखनीय है। पं. विद्याधर शास्त्री, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री आदि ने वैविध्यपूर्ण रचनाओं का सृजन कर राजस्थान का गौरव बढ़ाया है। पं. श्रीरामदवे, डॉ. हरिराम आचार्य, डॉ. पद्मशास्त्री, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, डॉ. नारायण शास्त्री कांकर, विद्याधर शास्त्री आदि कवियों ने युगानुकूल रचनाएँ लिखकर संस्कृत साहित्य की श्री विधि की है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान रखने वाले, अपने काव्य सृजन के अमृत से संस्कृत अनुरागियों को असीम आनन्द प्रदान करने वाले व्यक्तित्व "प्रो. डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन" को मैंने अपने शोध प्रबन्ध का विषय बनाया। डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' लब्ध राष्ट्रपति पुरस्कार पं. श्री मोहनलाल शर्मा 'पाण्डेय' के सुपुत्र है। जो कि स्वयं भी संस्कृत के विद्वत् कवि है। डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने विविध ग्रन्थों की रचना की है साथ ही अनेक ग्रन्थों का सम्पादन व पत्रिकाओं का सम्पादन कार्य भी किया है। आपको समय–समय पर अनेक पुरस्कारों से भी पुरस्कृत किया जा चुका है। आपकी रचनाओं में संस्कृत नाट्य प्रणेता पं. हरिजीवन मिश्र (समीक्षा प्रबन्ध), राष्ट्ररक्षणम् (पुरस्कृत लघुनाटक), हंसरक्षणम् (पुरस्कृत लघुनाटक),

वृक्षरक्षणम् (पुरस्कृत लघुनाटक), सारस्वत–सौरभम् (गद्य पद्य नाट्य संग्रह) व अहमेव राधा अहमेव कृष्णः (संस्कृतानुवाद) आदि प्रमुख किताबें हैं।

उपर्युक्त शोध प्रबन्ध विषय को मैंने पाँच अध्यायों में विभाजित किया है जो इस प्रकार है–

प्रथम अध्याय – डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' परिचय (व्यक्तित्व व कृतित्व)

महापुरुषों का अवतरण लोक कल्याण के लिए होता है। जगत् में आकर अपने प्रशंसनीय कार्यों द्वारा वे साधारण प्राणियों से पृथक् अपनी पहचान बनाते हैं तथा श्रमसाध्य गौरवमय व लोकोत्तर कृत्यों से जगत् को आनन्दित करते हुए कीर्ति प्राप्त करते हैं। भारत में ऐसे अनेक महामहनीय पुरुष है, जिन्होंने अपने ज्ञानचक्षु से सम्पूर्ण मानव समाज को राहें दिखलाई है, ऐसे ही एक महामहनीय पुरुष हैं– 'डॉ. ताराशंकर शर्मा पाण्डेय'। जिन्होंने संस्कृत के क्षेत्र में अपने अथक परिश्रम एवं उत्कृष्ट प्रयासों द्वारा सृजन कार्य कर उज्ज्वल यश व सफलता प्राप्त की है। काव्य सृजन यश के लिए होता है। कहा भी गया है कि–

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिवृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेश युजे।।"

वस्तुतः संस्कृत एवं संस्कृति के अनन्य उपासक, यशस्वी, सुकवि एवं विद्वान् डॉ. पाण्डेय ने वर्तमान में राजस्थान संस्कृत विद्वत् परम्परा में आधुनिक एवं समसामयिक विषयों पर सृजन को नूतन आयाम प्रदान किया है। संस्कृत साहित्य के सुधी समीक्षक शोध कार्य विशेषज्ञ एवं सुपरिचित कवि डॉ. पाण्डेय का परिचय निम्न हैं–

सम्पूर्ण विश्व में अपनी रचना एवं स्थापत्य कला के लिए सुप्रसिद्ध 'गुलाबीनगर' जयपुर का प्राचीनतम स्थान महर्षि गालव का आश्रम गलतातीर्थ के नाम से जाना जाता है। इसी पीठ के महन्तों के प्रत्येक धार्मिक एवं पौरोहित्य कार्य में इनके पूज्य पण्डित (जोशी) पं. गंगाबक्ष शर्मा की प्रधानता रहती थी। इसी गालव तीर्थ के यज्ञकुण्ड नाम के जलाशय में ऋषि पंचमी के शुभ अवसर पर जब पं. गंगाबक्ष जी पौत्र पं. श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा अपने सहयोगियों के साथ सांयकाल 4.30 बजे ऋषि तर्पण कार्यक्रम में व्यस्त थे। तभी अपने यहाँ पौत्र जन्म का समाचार मिला। अकस्मात् ही अतीव हषोत्फुल्ल मन से पण्डित जी ने ऋषि पंचमी को जन्म होने से पौत्र का नाम 'ऋषि शंकर' रखा जो कालान्तर में शिक्षाक्षेत्र में प्रवेश के समय से ताराशंकर के रूप में परिवर्तित हुआ। इनके वंश का परिचय 'नतितति' खण्डकाव्य के अधोलिखित पद्य से स्पष्ट होता है–

"श्रीगंगाबक्षशर्मा जनकगुरुगुरूः कर्मकाण्ड प्रवीणः
जोशी श्वोदत्तशर्मा पितृवरजनको गालववर्षेः सुधानाम्नः।
पूज्यो दुर्गाप्रसादः पितृवरचरणः सुरजाख्या च माता
राजन्तां पूर्वजा में हरिपदरसिकाः कीर्तिशेषाः प्रपूज्याः।।"

पं. दुर्गाप्रसाद जी के ज्येष्ठ पुत्र पं. मोहनलाल शर्मा संस्कृत क्षेत्र में अपना विशेष स्थान रखते हैं। इन्होंने पत्रदूतम् व नतिति खण्डकाव्य व रसकपुरम् (अनूदित) पद्मिनी उपन्यास की रचना कादम्बरी जैसी प्रौढ़ शैली में कर संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया तथा गद्य–पद्य में अपनी प्रौढ़ शैली की रचना के आधार राष्ट्रपति सम्मान, वाचस्पति पुरस्कार (के.के. बिड़ला फाउन्डेशन, नई दिल्ली) अखिल भारतीय संस्कृत पुरस्कार, माघ पुरस्कार आदि अनेक पुरस्कारों के साथ–साथ शास्त्र महोदधि, विद्यासागर, प्रतिनव बाणभट्ट आदि मानद उपाधियाँ प्राप्त की, इनके वंश का संक्षिप्त परिचय निम्न है–

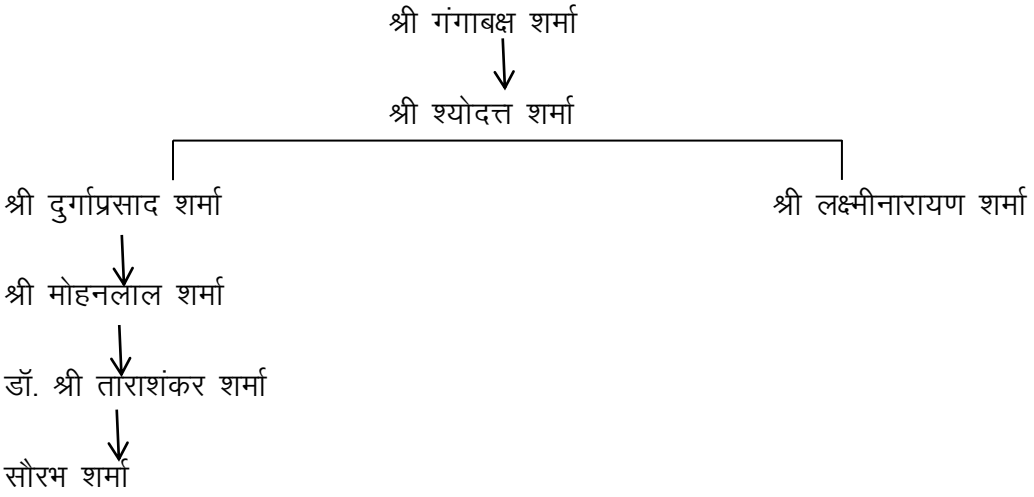

शिक्षा

ऐसे वंश परम्परागत धार्मिक एवं आस्तिक विचारों से परिपूर्ण संस्कृत वातावरण में पं. मोहनलाल शर्मा के पुत्र रत्न के रूप में 05 अगस्त 1957 को जन्में डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने विद्यार्थी जीवन में स्वयं को मेधावी, परिश्रमी प्रतिभावान छात्र के रूप में प्रस्तुत किया आपकी शिक्षा की नींव आपके पिता श्री मोहनलाल पाण्डेय के सान्निध्य में तैयार की गई। पिता श्री ने बचपन से ही अमरकोष, शब्दरूप, धातुरूप एवं लघुसिद्धान्त कौमुदी के अध्ययन एवं कण्ठाग्रीकरण पर अधिक बल दिया फलस्वरूप प्रो. पाण्डेय को अनेक शब्दों के विभिन्न अर्थों के निष्पादन में व्युत्पन्नता प्राप्त होने लगी छात्रावस्था में ही आपने अनुष्टुप् पद्य की रचना कर स्वजनों को आह्लादित किया। 1980 में साहित्याचार्य परीक्षा में राजस्थान विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते हुए स्वर्ण पदक प्राप्त

किया। साहित्याचार्य की पूर्वार्द्ध परीक्षा में विश्वविद्यालय में सर्वोच्च अंक प्राप्ति के उपलक्ष्य में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् जयपुर द्वारा प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया। आचार्य उत्तरार्द्ध में अध्ययन के दौरान ही संस्कृत विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा 10 दिसम्बर 1979 को आयोजित कालिदास समारोह के अन्तर्गत निबन्ध प्रतियोगिता व शोध पत्र वाचन में प्रथम स्थान प्राप्त किया। वर्ष 2004 में प्रोफेसर डॉ. लल्लन पाण्डेय के निर्देशन में राजस्थान विश्वविद्यालय से विद्यावारिधि की उपाधि प्राप्त की।

कर्मक्षेत्र

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने साहित्याचार्य करने के बाद दादू आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर में ही व्याख्याता पद पर कार्य किया तथा वहीं से राजस्थान लोक सेवा आयोग के माध्यम से राज्य सेवा में चयनित हुए। 'आत्मा वे जायते पुत्रः' उक्ति को चरितार्थ करते हुए वैदुष्य के साथ आपने कुशल प्रशासकीय गुणों से मनोहरपुर के आचार्य महाविद्यालय को सुप्रतिष्ठा प्रदान की। ज.रा. राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय जयपुर में प्रोफेसर साहित्य, विभागाध्यक्ष, कुलानुशासक, प्रभारी अनुसंधान केन्द्र आदि पर नियुक्त रहते हुए वर्तमान में आप ज.रा. राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर में प्रोफेसर साहित्य के पद पर नियमित कार्यरत है। इसी विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित व्याख्यानमाला कार्यक्रम में समन्वयक पद पर तथा शैक्षिक विभाग के समन्वयक के पद पर कार्य किया। इसी तरह आपकी योग्यता के कारण ज.रा. राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा आयोजित विविध कार्यक्रमों यथा पर्यावरण कार्यशाला, पुनश्चर्या पाठ्यक्रम व साहित्यिक स्पर्धा आदि में भी समन्वयक के रूप में कार्य किया।

सम्मान व पुरस्कार

संस्कृत साहित्य के निष्णात विद्वान् तथा बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. पाण्डेय को संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अपनी प्रखर प्रतिभा, उत्कृष्ट रचनाओं तथा प्रशंसनीय कार्यों के लिए अनेक पुरस्कारों, मानपत्रों तथा पदक प्रदान कर सम्मानित किया है। डॉ. पाण्डेय को समाज, मनीषिमण्डल, केन्द्र सरकार व राज्य शासकों के द्वारा समय–समय पर प्रशस्ति पत्र व सम्मान पत्र से सम्मानित किया गया। संस्कृत साहित्य परिषद् विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा आपको राज्यस्तरीय उत्कृष्ट लेखन का प्रथम पुरस्कार 10 दिसम्बर 1979 को दिया गया। साहित्याचार्य परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने पर राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा वर्ष 1980 में आपको स्वर्ण पदक से नवाजा गया। वर्ष 2001–02 में दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली सरकार द्वारा आयोजित लघु नाटक लेखन प्रतियोगिता में आपको द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। लघु नाटक, लेखन प्रतियोगिता में आपकी नवीन रचना 'हंसरक्षणम्' पर

आपको तृतीय पुरस्कार दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा प्रदान किया गया। जयपुर में श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जयन्ती के पावन अवसर पर समायोजित विद्वत् सम्मान समारोह में आपकी सतत् साहित्य साधना के उपलक्ष्य में तुलसी सम्मान से सम्मानित किया। आपके संस्कृत साहित्य व समाज सेवा के क्षेत्र में शाश्वत् व उत्कृष्ट योगदान देने के लिए गौड़–विप्र–रत्न से सम्मानित किया। व्यास बाला बक्ष शोध संस्थान, जयपुर द्वारा आपको संस्कृत नव कविता सृजन पर महर्षि पुरस्कार प्रदान किया गया। वर्ष 2010 में शोध परिषद् में प्रस्तुत 'कालिदास की परवर्ति साहित्यकारों में छाप' शीर्षक से उत्कृष्ट शोध पत्र प्रस्तुत करने पर आपको विक्रम कालिदास पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

इसके अतिरिक्त भी डॉ. पाण्डेय के व्यक्तित्व के कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू भी है। जिनका विवेचन किए बिना सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विवेचन करना अपर्याप्त होगा। डॉ. पाण्डेय का संस्कृत साहित्य को अप्रतिम योगदान है। उत्तर भारत की प्रथम संस्कृत फिल्म मुद्राराक्षसम्, जो कि मुद्राराक्षस नाटक पर आधारित है एवं व्यास बाला बक्ष शोध संस्थान, जयपुर के बैनर तले जिसका निर्माण कार्य हुआ है में संवाद लेखन का कार्य कर सहृदय रसिकों को अपनी योग्यता व प्रतिभा से सहज ही आकृष्ट कर लिया है। डॉ. पाण्डेय की प्रतिभा न केवल भारत में अपितु विदेशों (मॉरिशस) में भी उनकी प्रतिभा का प्रस्फुटन धीरे–धीरे हो रहा है। डॉ. पाण्डेय का अनेक शोध पत्रों में योगदान रहा है। डॉ. पाण्डेय ने विभिन्न संस्थाओं द्वारा आयोजित काव्य–गोष्ठियों में भाग लेकर संस्कृत साहित्य में अपनी सहयोगिता प्रदान की है।

अतः हम कह सकते हैं कि डॉ. पाण्डेय का व्यक्तित्व अनेक मानवीय दुर्लभ गुणों से अभिमण्डित है, उनमें विद्ववता के साथ ही लोक व्यवहारिकता, भावुकता, सुकुमार, कल्पनाशीलता का अद्भुत सम्मिश्रण होने से उनका व्यक्तित्व इन्द्रधनुष सा हो गया है।

कृतित्व

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का संस्कृत साहित्य को अप्रतिम योगदान है। अपने अनूठे साहित्यिक अवदान से आपको माँ भारती के श्री चरणों में अपनी रचनाएँ समर्पित कर भारत को विश्व में गौरवान्वित किया है। आपके द्वारा रचित 'राष्ट्ररक्षणम्' नामक एकांकी रूपक जिस पर अखिल भारतीय मौलिक संस्कृत लघुनाटक लेखन प्रतियोगिता में द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। साथ ही आपके द्वारा प्रणीत संस्कृत नाट्य प्रणेता 'पं. हरिजीवनमिश्रः (समीक्षा प्रबन्ध)' भी अत्यन्त महत्त्व रखने वाला है। आपके द्वारा रचित दो लघुनाटक 'हंसरक्षणम्' व 'वृक्षरक्षणम्' भी संस्कृत साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा पुरस्कृत है। 'सारस्वतसौरभम्' नामक पद्यगद्यनाट्यसंग्रह में विविध विषयों को गद्य, पद्य तथा नाटक का जो संग्रह किया गया है। वह अद्वितीय है।

द्वितीय अध्याय – संस्कृत साहित्य का उद्‌भव तथा विकास

संस्कृत साहित्य अपनी विविधता, समृद्धि, सक्रियता, विशिष्टता, सार्वभौमिकता, उपलब्धि आदि सभी दृष्टि से अनुपम है। भारत के साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक स्वरूप का सर्वांगीण अंकन तथा प्रतिबिम्बन जितना प्रचुर प्राञ्जल रूप में संस्कृत साहित्य में हुआ है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। संस्कृत साहित्य का एक–एक अंग अपनी समृद्ध परम्परा लेकर चरम विकास के बिन्दु तक पहुँचा है।

संस्कृत काव्य शास्त्रियों ने रसात्मक वाक्य को काव्य माना है।

"वाक्यं रसात्मकं काव्यं"।

श्रव्य काव्य को शैली की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया है।

"श्रव्यं श्रोतव्यमात्रं तत्पद्यमयं द्विधा।"

पद्य काव्य को पुनः दो भागों में विभक्त किया गया है। अनिबद्ध काव्य और प्रबन्ध काव्य। जो रचना छन्दोबद्ध नहीं है। उसको गद्य कहा जाता है। गद्य में जिस काव्य की रचना होती है उसे गद्य काव्य कहते हैं। जिसकी रचना छन्दोबद्ध होती है उसे पद्य कहते हैं। तथा जो काव्य गद्य और पद्य दोनों में निबद्ध हो उसे चम्पू काव्य कहते हैं।

श्रव्य काव्य के अनिबद्ध काव्य भेद के अन्तर्गत मुक्तक काव्य को परिगणित किया गया है। मुक्तक काव्य को गीतिकाव्य, खण्डकाव्य काव्य का वह स्वरूप है जिसमें काव्यत्त्व के साथ संगीतात्मकता प्रमुख होती है। इन पद्यों को वाद्यों के साथ गाया जा सकता है। अतः मुक्तक को गीतिकाव्य भी कहते हैं। गीतिकाव्य में महाकाव्य के पूरे गुण नहीं होते है, अतः इसे खण्डकाव्य भी कहते हैं।

"खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च।"

अग्निपुराणकार ने मुक्तक में चमत्कार को आवश्यक अङ्ग बताते हुए कहा है कि मुक्तक काव्य के एक श्लोक में ही सैंकड़ों चमत्कार होते हैं।

"मुक्तकं श्लोक एवैकचमत्कार क्षमः सताम्।"

समस्त संस्कृत साहित्य दो भागों में विभक्त है। वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य। अधिकतर विद्वत्वर्ग यह प्रमाण सहित स्वीकार करता है। कि समस्त लौकिक साहित्य वैदिक साहित्य से ही आविर्भूत है। लौकिक साहित्य में अनेक विधाएँ परिगणित की जाती है। जैसे महाकाव्य, नाटक,

ऐतिहासिक काव्य, मुक्तक काव्य, गद्यकाव्य इन सबका मूल स्त्रोत वैदिक साहित्य ही है। आचार्य भरत ने भी नाट्योत्पत्ति का मूल कारण वेदों को ही माना है।

"जग्राह पाठयं ऋग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानार्थवणादपि।।"

अतः मुक्तक काव्य का बीज भी हमें वैदिक साहित्य में मिलता है तथा उसी का विकसित रूप लौकिक साहित्य में प्राप्त होता है। ऋग्वेद में ऐसे अनेक सूक्त है जो मुक्तक काव्य के उद्‌गमस्त्रोत के रूप में प्राप्त होते है। इस प्रकार लौकिक साहित्य के पूर्ववर्ती साहित्य में मुक्तक काव्य या गीतिकाव्य के बीज, अल्प रूप में देखे जा सकते हैं। किन्तु लौकिक साहित्य में इनका स्वतन्त्र विकास कालिदास के गीतिकाव्य से ही प्रारम्भ होता है।

संस्कृत साहित्य में स्वतन्त्र रूप से मुक्तक या गीतिकाव्य का 'श्री गणेश' महाकवि कविकुल गुरु कालिदास की कृति 'ऋतुसंहार' से हुआ माना जाता है। कालिदास ने इस गीतिकाव्य में समस्त षड् ऋतुओं का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है। मेघदूत कालिदास की प्रौढ़ एवं परिष्कृत कृति है। इसमें कवि की प्रौढ़ कल्पना उदात्त भावना, परिष्कृत शैली एवं कोमलकान्त पदावली का मञ्जुल सामञ्जस्य है। मेघदूत ने दूतकाव्य की समृद्ध परम्परा को जन्म दिया है। भर्तृहरि के शतकत्रय मुक्तक के रूप में प्रसिद्ध है।

'वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं' छन्द के अंश से रहित श्रव्य काव्य गद्य काव्य कहलाता है। संस्कृत गद्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक संहिताओं में हमें गद्य के प्रथम दर्शन मिलते हैं। वैदिक गद्य अत्यन्त सरल एवं सुबोध है। इसमें समासों का प्रायः अभाव है। उदाहरण एवं उपमा तथा अन्य सादृश्यमूलक अलंकार, विशेषकर रूपक आदि का सुन्दर संयोजन है। यथा–

"ब्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापति समैरयत्।
प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत्।।" (अथर्ववेद 15)

पतञ्जलि का महाभाष्य संस्कृत गद्यकाव्य समृद्धि का परिचायक है। संस्कृत गद्य काव्य का सिरमौर गद्यकाव्यकार दण्डी, सुबन्धु व बाण का युग माना जा सकता है। इन तीनों लेखकों की रचनाएँ संस्कृत गद्य काव्य परम्परा के चरम विकास काल की द्योतक है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में अनेक रचनाकार हुए है जिन्होंने मुक्तक काव्यों में विषयवस्तु तथा अभिव्यक्ति की दृष्टि से नूतन प्रयोग किया है। उन्नीसवीं शती के अन्त से लेकर अद्यावधि संस्कृत साहित्य में सहस्र की संख्या में लघुकथाओं व कथासंग्रहों का प्रणयन किया जा रहा है।

इसी परम्परा में आधुनिक कवि डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का स्थान महत्त्वपूर्ण है। 'सारस्वत–सौरभम्' कृति के पद्य खण्ड में कवि ने 42 मुक्तक कविताओं का संग्रह किया है। जहाँ एक ओर प्रत्येक मुक्तक अपने आपमें स्वतन्त्र तथा पूर्ण है छन्दों तथा अलंकारों में निबद्ध है। वहीं दूसरी ओर कुछ मुक्तक कविताएँ नवीन विधा का समर्थन करते हुए छन्दोमुक्त है। इस संग्रह ग्रन्थ में कवि ने वर्तमान समय में सहृदयों को प्रिय लगने वाली विविध समसामयिक विषयों पर लिखी गई मुक्तक कविताओं का संकलन किया है। कवि ने 'सारस्वत–सौरभम्' के गद्य खण्ड में आम्रपाली, आत्मसमर्पणम्, सद्बुद्धिं देहि व परिवर्तनम् इन चार प्रमुख लघुकथाओं का संग्रह किया है ये सभी लघुकथाऐं जीवन की गहनतम समस्याओं व विवेचनों को लेकर चलने वाली है। संस्कृत गद्य की वर्तमानकालीन प्रमुख प्रवृत्ति निबन्ध साहित्य में आधुनिक विद्वत् लेखक डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने 'सारस्वत–सौरभम्' में चार चरितात्मक निबन्धों का संग्रह किया है जो लेखक के गद्य नैपुण्य के द्योतक है।

तृतीय अध्याय – डॉ. पाण्डेय विरचित कृतियों का अध्ययन

'काव्येषु नाटकं रम्यम्' उक्ति प्रसिद्ध है तथा सार्थक भी। 'साहित्य' में रूपक (नाटक) का एक प्रमुख स्थान है। वह दर्शकों को ऐतिहासिक व काल्पनिक पात्रों से साक्षात्कार करवा कर उनके जीवन चरित्र से शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा देता है। साहित्यदर्पणकार काव्य को इस प्रकार विभक्त करते हैं–

"दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।।"

दृश्यकाव्य में रूपकों तथा उपरूपकों का ग्रहण होता है। क्योंकि इनका मञ्च पर अभिनय किया जाता है। नाटकादि 'रूपक' के भेद है। जो नाट्य शास्त्रिय सिद्धान्तों के अनुसार किये गए है। नाटक रूपक का एक भेद है। रूपक 10 है तथा उपरूपक 18 है।

"नाटकमथप्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।।"

अनेक भारतीय मनीषियों का विचार है कि वैदिक काल में नाटक के प्रधान अंग नृत्य, संगीत, संवाद आदि का अस्तित्व था। ये ही अंग विकसित होकर कालान्तर में नाटक के रूप में परिवर्तित हो गए। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य (संवाद), सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस–तत्त्व ग्रहण कर नाट्यवेद की रचना की–

"जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयं रसानाथर्वणादपि।।"

अनेकों कवियों ने भरतमुनि को आदर्श मानकर नाटकों की रचना की है। आधुनिक कवियों में डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' का नाम अनन्य है। डॉ. पाण्डेय की कृतियों का परिचयात्मक अध्ययन इस प्रकार है। डॉ. पाण्डेय ने संस्कृत नाट्य प्रणेता–पं. हरिजीवन मिश्र की नाट्य कृतियों का समीक्षात्मक व समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। पं. हरिजीवन मिश्र ने दश नाट्य कृतियों की लक्षणानुसार सांगोपांग रचना की। इनके सभी रूपकों में मनोरंजन के साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश है। पण्डित हरिजीवन मिश्र आधुनिक काल के भास कहलाते हैं। डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्' में कथा, आलेख, नाटक एवं विभिन्न मुक्तक काव्यों का संग्रह प्रकाशित किया है। 'सारस्वत–सौरभम्' में कवि ने न केवल स्तुति व प्रकृति से सम्बन्धित विषयों का समावेश किया है। अपितु वर्तमान समाज व राष्ट्र में व्याप्त यौतुकप्रथा, स्त्रीदशा, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, राजनीति, आतंकवाद आदि समसामयिक विषयों पर भी कवि ने अत्यन्त सफलतापूर्वक लेखनी चलाते हुए भावपक्ष को पुष्ट किया है। 'वृक्षरक्षणम्' डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' कृत उत्तराखण्ड संस्कृत संस्थान व दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर प्रथमतया पुरस्कृत लघुनाटक है। कवि ने इसमें बताया है कि पर्यावरणीय संतुलन में वृक्षों की महती भूमिका होती है। राजस्थान राज्य में शमी (खेजड़ी) वृक्ष बहुलता से मिलता है और इसकी सुरक्षा के लिए यहाँ की जनता सजग है। 'चिपको आन्दोलन' की यह प्रथम महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है।

'हंसरक्षणम्' डॉ. पाण्डेय कृत दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत लघुनाटक है। इसमें कवि ने महात्मा गौतम बुद्ध द्वारा स्वाभाविक रूप से की गई हंस रक्षा की घटना को प्रस्तुत किया है। इसके माध्यम से कवि ने जीव रक्षा के लिए सभी लोगों को जागरूक करने का प्रयास किया है। 'राष्ट्ररक्षणम्' डॉ. पाण्डेय कृत पुरस्कृत लघु नाटक है। 'राष्ट्ररक्षणम्' का कथानक राजस्थान का ऐतिहासिक पृष्ठ है। इसमें इतिहास प्रसिद्ध मेदपाटाधिपति महाराणा प्रताप के जीवनवृत्त की उस साहसिकता का परिचय दिया है, जिस पर समस्त राष्ट्र का शिर गौरवान्वित है।

चतुर्थ अध्याय – डॉ. पाण्डेय की कृतियों का साहित्यिक अध्ययन

'साहित्य' समाज का दर्पण है और संस्कृति का अभिन्न अंग भी। साहित्य में कुछ साहित्यकार ऐसे भी है जो कला को कला के लिए मानते है। इस प्रकार के साहित्यकारों की साहित्यिक कृतियों में कलात्मकता का प्राचुर्य हुआ करता है। साहित्यकार कला को जीवन के लिए मानते है जो संवेदनशील है, सहृदय है, भावुक है ऐसे साहित्यकारों की रचनाओं में कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष प्रधान होता है।

उनका साहित्य समाज के लिए आदर्श होता है, अनुकरणात्मक होता है तथा जन–जीवन की भावनाओं को अन्तर्मन को छूकर समाज का मार्ग प्रदर्शक होता है। राजशेखर ने अपने ग्रन्थ काव्यमीमांसा में कहा है–

"पंचमी साहित्यविद्येति यायावरीयः।
सा हि चतसृणामपि विद्यानां निष्पन्दः।।"

अर्थात् यायावरीय के अनुसार पाँचवी साहित्य विद्या है क्योंकि यह चारों विद्याओं का सार है।

डॉ. पाण्डेय विरचित कृतियों का साहित्यिक (रस, गुण, रीति, अलंकार, छन्द) विश्लेषण निम्न है।

रस – काव्य में रस आत्मतत्व के रूप में समादृत है। यदि अलंकार, गुण, रीति आदि काव्य के सौन्दर्याधायक तत्त्व न भी हो और रस हो तो वह काव्य उत्तम कोटि की श्रेणी का माना जाता है। डॉ. पाण्डेय ने अपनी कृतियों में वीर, करुण, शृंगार आदि रसों का वर्णन करते रति विषयक भाव या भक्ति भाव को प्रधानता दी है। हास्य, रौद्र, भयानक, विभत्स प्रभृति रसों का प्रयोग कवि ने प्रायः नहीं किया है। कवि समसामयिक समस्याओं से व्यथित जान पड़ते है अतः उन्होंने अपने शोक भाव को प्रकट करने के लिए करुण रस का प्रयोग किया है। कुछ प्रसंग ऐसे भी है जहाँ कवि ने वर्तमान समाज तथा राष्ट्र की अवस्था पर चिन्ता तथा दैन्य भाव को अभिव्यक्त किया है।

गुण – आचार्य वामन के अनुसार गुण काव्य के अन्तरंग तत्त्व है। अर्थात् गुण काव्य में शोभा को उत्पन्न करते हैं।

'काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्माः गुणाः।'

अतः गुणों की सामान्य परिभाषा यह दी जा सकती है कि काव्य में उसके आत्मभूत रस को उत्प्लावित करने वाले और इस प्रकार काव्य में शोभा का साधन करने वाले जो धर्म है उनकी संज्ञा गुण है। डॉ. पाण्डेय की कृतियों में प्रसाद गुण सर्वाधिक रूचिकर गुण के रूप में उभरकर सामने आता है। परन्तु जहाँ कहीं भी शृंगार या करुण रस की अभिव्यक्ति हुई है वहाँ प्रसंगानुकूल ही भाषा में माधुर्य गुण का समोवश हुआ है। कुछ प्रसंग ऐसे भी है जहाँ राष्ट्रप्रेम की भावना व्यक्त हुई है। अतः वहाँ वीर रस का प्राधान्य होने के कारण यत्र–तत्र ओजगुण भी दिखलाई पड़ता है।

रीति – ध्वनिवादी आचार्यों में साहित्यदर्पणकार ने रीतियों का विशद वर्णन प्रस्तुत करते हुए कहा है कि रसों का उपकार करने वाली रीतियाँ चार है– वैदर्भी, गौड़ी, पाञ्चाली और लाटी।

"उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा।

वैदर्भी चाऽथ गौड़ी च पाञ्चाली लाटिका तथा।।"

डॉ. पाण्डेय ने वैदर्भी रीति को ही अपने मुक्तकों में प्रधानता दी है। अतः गौड़ी व पाञ्चाली रीति के दर्शन इस कृति के मुक्तकों में प्रायः कम होते हैं। कवि की रूचि वैदर्भी युक्त पदों की संघटना में ही अधिक दिखलाई पड़ती है।

अलंकार – 'काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते।'

काव्य की शोभा बढ़ाने वाले तत्त्व को अलंकार कहा जाता है। जिस प्रकार कटक कुण्डलादि आभूषण शरीर को विभूषित करते हैं। अतः वे अलंकार है। उसी प्रकार काव्य में अनुप्रास उपमादि काव्य के शरीर भूत शब्द और अर्थ को अलंकृत करते है वे अलंकार कहलाते है। अतः आनन्दवर्धन ने कहा है–

"अङ्गाश्रितास्त्वलङ्काराः मन्तव्याः कटकादिवत्।"

डॉ. पाण्डेय ने अपने गद्यपद्यनाट्यसंग्रह 'सारस्वत–सौरभम्' में बिना प्रयत्न अनायास प्रयुक्त भिन्न–भिन्न अलंकारों का भावानुरूप सुन्दर प्रयोग किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन अलंकारों का प्रयोग डॉ. पाण्डेय ने अपने रचना चातुर्य को प्रदर्शित करने के लिए जान बूझकर नहीं किया है अपितु स्वतः ही वे अलंकार उनकी भाषा शैली में गुम्फित हो गये हैं।

सर्वप्रथम यास्क ने छन्द की व्युत्पतिपरक व्याख्या की है। इनके अनुसार 'छन्दान्सि छादनात्' अर्थात् छन्द भावों को आच्छादित कर उन्हें समष्टिरूप प्रदान करते हैं।

डॉ. पाण्डेय विरचित 'सारस्वतसौरभम्' यद्यपि पूर्णरूपेण छन्दोबद्ध नहीं है। कवि ने इसमें कई छन्दोमुक्त रचनाओं का भी समावेश किया है। नयी कविताओं के छन्दों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये हैं। पारम्परिक छन्दों का मोहजाल टूटा है। यह छन्दोमुक्त कविता, वर्तमान, सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक परिवेश में व्याप्त कुरीतियों, अन्ध–विश्वास, शोषण, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद इत्यादि ज्वलन्त समस्याओं पर आधारित होने के कारण सहृदयों तथा प्रबुद्ध नागरिकों के अन्तःकरण को झंकृत कर रही हैं।

पंचम अध्याय – डॉ. पाण्डेय की कृतियों का सामाजिक व सांस्कृतिक अध्ययन

आधुनिक संस्कृत साहित्य मानववादी दृष्टिकोण लेकर चला है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में अनेक कवियों की कृतियाँ हमारी सामाजिकता व सांस्कृतिकता की परिचायक है। अर्वाचीन संस्कृत

साहित्य को अपनी उत्कृष्ट रचनाओं से संवर्द्धित करने वाले ऐसे महाकवियों की श्रेणी में विद्वत् कवि डॉ. पाण्डेय का स्थान महत्त्वपूर्ण है। डॉ. पाण्डेय ने 'सारस्वत–सौरभम्', हंसरक्षण्म्, राष्ट्ररक्षणम्, वृक्षरक्षणम् कृति में अपनी लेखनी के माध्यम से भारतीय समाज व संस्कृति का जो चित्र खींचा है वह अद्वितीय है। कवि ने भारतीय संस्कृति के विविध रूपों को अपनी लेखनी रूपी तूलिका का आधार बनाकर वर्णित किया है। यद्यपि कृतियों में सामाजिकता व राष्ट्रियता प्रधान है, तथापि सांस्कृतिकता का महत्त्व भी कम नहीं है।

सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत कवि ने भारतीय समाज के विविध पहलुओं का वर्णन करते हुए समाज में व्याप्त विविध समसामयिक समस्याओं का अत्यन्त जीवन्त रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। जैसे–जैसे कवि ने समाज को अत्यन्त निकट से देखा, उन्हें अनेक सामाजिक समस्याओं ने झकझोर दिया है। कवि हृदय समाज में व्याप्त विविध समस्याओं से व्यथित है। इन समस्याओं से अभिभूत कवि हृदय से अनेक मार्मिक शब्द प्रस्फुटित हुए है जो कविता रूप में परिणत होकर सामाजिकों को समाज में व्याप्त कुरीतियों को नष्ट करने का सन्देश प्रदान करने वाले है। कवि–हृदय इन सामाजिक समस्याओं से इतना अभिभूत है कि 'किं चतुष्कम्'? खण्ड की चार कविताओं में तो सर्वत्र ही कवि ने सामाजिकता का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त भी कवि ने अपनी रचनाओं में भारतीय समाज व समस्याओं का अत्यन्त विशद् रूप में विवेचन किया है।

कवि ने भारतीय संस्कृति के अनुरूप विविध देवों का स्तवन किया है। जो उनके सांस्कृतिक अनुराग का द्योतक है। न केवल देव स्तवन से ही कवि के सांस्कृतिक अनुराग का परिचय मिलता है। अपितु कवि ने 'गुरुपादपद्मपूजैव पुरस्कारः' निबन्ध के द्वारा गुरु का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए गुरु भक्ति का जो परिचय दिया है वह निश्चय ही भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही है। इसी तरह कवि ने 'सुरभारती' व 'दुरवस्था संस्कृतस्य' इन दोनों मुक्तक कविताओं के माध्यम से संस्कृत भाषा की वर्तमान अवस्था को देखकर उसके प्रति चिन्ता व्यक्त की है। साथ ही संस्कृत भाषा को सभी समस्याओं का निवारण करने वाली भाषा बतलाया है। क्योंकि संस्कृत भाषा प्राचीनकाल से ही भारत देश में ही नहीं अपितु विश्व में मानव संदेश प्रसारित करने में सक्षम है। इस प्रकार संस्कृत भाषा के प्रति अनन्य अनुराग भी कवि की भारतीय संस्कृति की प्रियता का ही द्योतक है।

जिस समय कवि अपने काव्य की रचना करता है, उस समय में होने वाली घटनाओं, विचारों, भावनाओं, वातावरण की झलक उसके काव्य में अवश्य दिखाई देती है। अतः डॉ. पाण्डेय भी सम्प्रति समाज में व्याप्त निर्धनता, बेरोजगारी, यौतुकप्रथा आदि वर्तमान समय की कई समस्याओं के प्रति जागरूक एवं संवेदनशील है। उन्होंने अपनी सरस कृति 'सारस्वतसौरभम्' के अन्तर्गत संकलित

कविताओं व कथाओं के माध्यम से सहृदय सामाजिकों का ध्यान इन समस्याओं के प्रति आकृष्ट किया है। कोऽयं तस्या अपराधः? किं नामधेयं यौतुकम्? आक्षेपः कस्मिन?, उदरस्य कृते, आम्रपाली, परिवर्तनम् आदि ऐसी रचनाएँ है जिनमें इन सामाजिक समस्याओं का वर्तमान रूप व उनके दुष्परिणामों को उल्लेखित कर देशवासियों को इनके समूलोन्मूलन के लिए समुत्प्रेरित किया गया है।

उपसंहार – संस्कृत साहित्य के दोनों पक्षों (भाव पक्ष–कला–पक्ष) को पल्लवित व पुष्पित करते हुए अनेक कवियों व मनीषियों ने संस्कृत साहित्य के साहित्यिक कोश में विपुल वृद्धि की है। आधुनिक संस्कृत महाकवि न यश के लिए काव्य रचना कर रहे हैं, न धन के लिए। अपितु वे तो भारतभूमि संस्कृति और संस्कृत के प्रति पूर्णता भावेन समर्पित है। जैसाकि कहा भी गया है–

"न यशसे, न धनाय, शिवेतरक्षतिकृतेऽपि च नैव कृतिर्मम।
इयमिमां भारतावनि संस्कृतिं सुरगवीं च निषेवितुमुद्गता।।"

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का कैनवास आज इतना व्यापक हो गया है कि उस पर न जाने कितनी विधाओं में चित्र उकेरे जा रहे हैं। विविध विधाओं व नवीन दृष्टि को अपने काव्य सृजन का आधार मानने वाले अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के विद्वत् कवियों यथा सीतानाथ आचार्य पद्मशास्त्री, पं. मोहनलाल पाण्डेय, डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, डॉ. हरिराम आचार्य, डॉ. रेवा प्रसाद द्विवेदी आदि के नाम अनन्वय है। जिन्होंने अपनी विविध विधाओं व विविध शैलियों से अलंकृत रचनाओं के द्वारा माँ भारती का शृंगार किया तथा संस्कृत साहित्य जगत में सृजन के नये आयाम स्थापित किए है।

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' भी इसी नवीन रूप में प्रवाहित संस्कृत साहित्य रूपी अलकनन्दा के प्रवीण चितेरे कवि है। संस्कृत नाट्य प्रणेता पं. हरिजीवन मिश्र, सारस्वतसौरभम् वृक्षरक्षणम्, हंसरक्षणम्, राष्ट्ररक्षणम् इनके गम्भीर चिन्तन ओर नूतन आयामों का दर्पण है। यह कृतियाँ लेखक की विविध विधाओं में बहु आयामी प्रतिभा व विभिन्न शैलियों की परिचायिका है।

≈≈≈≈

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. साहित्यदर्पण : कविराज विश्वनाथ, डॉ. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ–2
2. संस्कृत नाटक : डॉ. जयकृष्ण प्रसाद खण्डेलवाल, परिमल पब्लिकेशन्स 27/28, शक्ति नगर, दिल्ली–110007
3. दशरूपकम् : आचार्य धनञ्जय, श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ–2
4. काव्यप्रकाश, मम्मटाचार्य, डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2
5. नाट्यशास्त्र : भरतमुनि, श्री सत्यप्रकाश शर्मा, चौखम्भा सुरभारती, वाराणसी
6. काव्यालंकारसूत्राणि : आचार्य वामन, डॉ. बेचेन झा
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास : डॉ. ए.वी. कीथ, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 2002
8. अलंकार शास्त्र का इतिहास : डॉ. कृष्ण कुमार, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ–2
9. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास : डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2001
10. संस्कृत साहित्य का इतिहास : डॉ. बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी, 1987
11. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास : डॉ. जयकृष्ण प्रसाद खण्डेलवाल, परिमल पब्लिकेशनस दिल्ली, 2001
12. मानव मूल्य संस्कृति और साहित्य : डॉ. नत्थुलाल गुप्ता, मोहित पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 1995

13. संस्कृत साहित्य का इतिहास : डॉ. वचनदेव कुमार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली–1990
14. संस्कृत साहित्य : डॉ. पुष्करदत्त शर्मा, अजमेरा बुक कम्पनी, जयपुर 1994
15. संस्कृत वाङ्मय का इतिहास : आचार्य देवीशंकर मिश्र, डॉ. राजकिशोर सिंह, रेलवे क्रॉसिंग, लखनऊ 1989
16. आधुनिक संस्कृत साहित्येतिहास : देवर्षि कलानाथ शास्त्री, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, झालानियों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर 2321518
17. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास : डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायण विजय कुमार, इलाहाबाद 2004
18. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना : डॉ. हरिनारायण दीक्षित, देववाणी परिषद्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1983
19. आधुनिक संस्कृत साहित्येतिहास : डॉ. रामकुमार दाधीच, हंसा प्रकाशन, 57 नाटाणी भवन, मिश्र राजाजी का रास्ता चांदपोल बाजार, जयपुर
20. भाति मे भारतम् : डॉ. रमाकान्त शुक्ल, देववाणी परिषद्, दिल्ली
21. जयभरतभूमे : डॉ. रमाकान्त शुक्ल, देववाणी परिषद्, 6 वाणी विहार, नई दिल्ली
22. प्राचीन भारत : डॉ. राजबली पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी
23. आधुनिक भारत : डॉ. सुमित सरकार, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली 8वाँ संस्करण, 2001
24. हमारे महापुरुष : डॉ. शिवकुमार, डायनामिक पब्लिकेशन्स, दिल्ली 2001
25. सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा : श्री व्यथित हृदय, पाण्डुलिपि प्रकाशक, दिल्ली
26. दहेज प्रथा, समस्याऐं और समाधान : सी.बी. स्वर्णकार, पाण्डुलिपि प्रकाशक, दिल्ली
27. अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद और साहित्य : डॉ. नगेन्द्र सिंह 'कमलेश', रघुवंशयीय सेल्स कर्पोरेशन आगरा

28. समकालीन भारत की सामाजिक समस्याएँ : डॉ. सुरेश चन्द्र राजौरा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
29. छन्द शाकुन्तलम् : शिवकुमार त्रिपाठी, मुद्रक टाईम्स प्रिन्टिंग प्रेस ब्रह्मपुरी, अजमेर
30. छन्दोमञ्जरी : श्री गंगाप्रसाद, परमेश्वर दीन पाण्डेय
31. शिक्षा, दीक्षा और दृष्टिकोण : डॉ. शंकरदयाल शर्मा, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली
32. नाट्य समीक्षा : दशरथ ओझा
33. कथानक वल्ली : देवर्षि कलानाथ शास्त्री, हंसा प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण 2002
34. प्रबन्ध परिजातः : कविशिरोमणि भट्ट, मथुरानाथ शास्त्री, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, केन्द्रिय संस्कृत विद्यापीठ, जयपुर

शोध प्रविधि ग्रन्थ

35. शोध (स्वरूप, मानक व्यावहारिक, कार्यविधि) : बैजनाथ सिंहल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1995
36. पाण्डुलिपी विज्ञान : डॉ. सत्येन्द्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर संस्करण 1996
37. शोध और सिद्धान्त : डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण 1996

कोश ग्रन्थ

38. अमर कोश : चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
39. भारतीय साहित्य शास्त्र कोश : डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा'
40. महाभारत कोश : डॉ. रामकुमार राय
41. वृहत् पर्यायवाची कोश : डॉ. रघुवीर
42. शब्द कल्पद्रुम : राजा राधाकान्त देव बहादुर

43. संस्कृत साहित्य कोश : डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा'

44. संस्कृत हिन्दी कोश : वामन शिवराम आप्टे

45. हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1 : स्वः डॉ. धीरेन्द्र वर्मा आदि

व्याकरण ग्रन्थ

46. महाभाष्य–पस्पशाह्निक : पतंजलि

47. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी : गोपालदत्त पाण्डेय

48. लघु सिद्धान्त कौमुदी : भट्टजोदीक्षित

49. कारक दीपिका : मोहन वल्लभ पंत

आंग्ल भाषा ग्रन्थ

50. Political Scence and Constitutional law : J.W. Barges

51. Theory of the modern state : J.K. Bluntschil

52. An Introduction to the study of literature : W.H. Hudson

पत्र–पत्रिकाएँ

53. भारती (मासिक) : भारती भवन बी–15, न्यू कॉलोनी, जयपुर

54. स्वरमंगला (त्रैमासिक) : राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर (राज.)

55. सागरिका : सागरिका समिति, सागर

56. संस्कृत प्रतिभा : साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

57. सारस्वती सुषमा : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिशिष्ट

परिशिष्ट

(साक्षात्कार)

रचनाकारों का वह वर्ग जिसे लिखने/छपने की ललक है और जो जल्दी छा जाना चाहता है वह सोशल मीडिया में जुड़ा रहना चाहता है। इससे साहित्य तो सार्वभौमिक और समृद्ध तो हो रहा है, किन्तु ऐसे साहित्य की चिरन्तनता बने रहना मुश्किल है। संस्कृत के क्षेत्र में देखें तो ऐसे रचनाकारों का कुछ प्रतिशत ही भाषा की शुद्धता बनाये हुए है शेष अपने लेखन की भड़ास निकालने को उतावले है। ऐसा कहना ही उपयुक्त होगा।

प्रो. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय'

साहित्य तो सार्वभौमिक एवं सर्वजन मङ्गलकारी होता है।

प्रियंका शर्मा : **सर्वप्रथम आप अपने जन्म स्थान, पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में बताएं ?**

प्रो. पाण्डेय : राजस्थान की राजधानी जयपुर नगर में 5 अगस्त 1957 को राष्ट्रपति–सम्मानित पं. मोहनलाल शर्मा 'पाण्डेय' के पुत्र रूप में मेरा जन्म हुआ। मेरे पितृचरण जयपुर के गलता तीर्थ के महन्त परिवार के पुरोहित वंश में जन्म संस्कृत साहित्य को अनेक प्रौढ़ ग्रन्थ–रत्न से समृद्ध करने वाले, पद्मिनी, रसकपूरम् जैसे उपन्यास एवं नतिति, पत्रदूतम् काव्यों के रचयिता पं. मोहनलाल शर्मा पाण्डेय को राष्ट्रपति सम्मान, श्रीवाणी अलंकरण, वाचस्पति पुरस्कार, माघ पुरस्कार आदि अनेक पुरस्कारों के साथ–साथ शास्त्र महोदधि, विद्या सागर, प्रतिनव बाणभट्ट आदि मानद उपाधियाँ प्राप्त की।

प्रियंका शर्मा : आप की शिक्षा कहाँ से हुई है?

प्रो. पाण्डेय : वंश परम्परागत धार्मिक और आस्तिक विचारों से परिपूर्ण संस्कृतमय वातावरण में ताराशंकर शर्मा ने अपनी शिक्षा का पहला कदम निवास स्थान के समीपस्थ श्री खाण्डल विप्र उपाध्याय संस्कृत विद्यालय जयपुर में रखा। इस विद्यालय में प्रारम्भिक प्राथमिक शिक्षा के पश्चात् अपने पिता के साथ अलवर जिलान्तर्गत कोटकासिम ग्राम गये और वहाँ से आठवीं तक अध्ययन किया नवीं से शास्त्री तक जोधपुर में अध्ययन किया। नवीं से शास्त्री तक जोधपुर में अध्ययन किया।

श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय से आचार्य (स्नात्तकोत्तर) में अध्ययन करते हुए साहित्याचार्य परीक्षा में राजस्थान विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते हुए स्वर्ण पदक प्राप्त किया। वर्ष 2004 में श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय जयपुर से राजस्थान विश्वविद्यालय से विद्यावारिधि (पीएच.डी.) की उपाधि प्राप्त की।

प्रियंका शर्मा : आपकी प्रथम रचना कब व कहाँ से प्रकाशित हुई ?

प्रो. पाण्डेय : मेरी पहली रचना जुलाई 1980 में संस्कृत पत्रिका भारती में प्रकाशित हुई।

प्रियंका शर्मा : आपके द्वारा लिखी गई अब तक की सबसे अच्छी रचना?

प्रो. पाण्डेय : एक कथा साहित्य–अकादमी की पत्रिका में प्रकाशित जिसका शीर्षक 'नारा' है जिसमें निर्भया जैसे घटना क्रम से मुक्ति के लिए प्रयास किया गया है।

प्रियंका शर्मा : रचनाकार का अपनी जड़ों से जुड़े रहना जरुरी है?

प्रो. पाण्डेय : रचनाकार ही क्यों? कोई भी अपनी जड़ों से जुड़ा रहकर ही हरा भरा रहते हुए पल्लवित और पुष्पित हो सकता है।

प्रियंका शर्मा : वह रचना जिसने आपको रचनाकार के रूप में स्थापित किया?

प्रो. पाण्डेय : मैं अपनी रचना के बारे में क्या कहूँ।

प्रियंका शर्मा : साहित्य–जगत् की वह उपलब्धि जिससे आपको सबसे अधिक प्रसन्नता हुई हो?

प्रो. पाण्डेय : वर्ष 2015 का संस्कृत अनुवाद पुरस्कार केन्द्रीय साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा 'अहमेव राधा अहमेव कृष्णः' पुस्तक पर इम्फाल में मिला।

प्रियंका शर्मा : आपने अब तक कुल कितनी भाषाओं में रचनाएँ की?

प्रो. पाण्डेय : संस्कृत भाषा में मुख्य रूप से तथा हिन्दी व राजस्थानी भाषा में मेरी रचनाएँ है।

प्रियंका शर्मा : आपके प्रिय रचनाकार कौन है?

प्रो. पाण्डेय : किसी एक रचनाकार की प्रियता को स्वीकारना न्यायोचित नहीं होगा। मेरा रुझान काव्य की सभी विधाओं में है। संस्कृत के बाणभट्ट, अम्बिकादत्त व्यास एवं कालिदास, भारवि, माघ, राधावल्लभ त्रिपाठी, अभिराज राजेन्द्र मिश्र तथा हिन्दी

भाषा के साहित्यकारों में मुंशी प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, हरिवंश राय बच्चन का नाम लेना पसन्द करता हूँ।

प्रियंका शर्मा : आपने कौन–कौन सी पत्रिकाओं का सम्पादन कार्य किया?

प्रो. पाण्डेय : पत्रिका सम्पादन में क्रीडांजलि (स्मारिका), संविरा, संस्तवः, स्वरमंगला, रचना विमर्श, अक्षरा, विप्रकीर्ति, वयम् वेदांगवाणी आदि में कार्य किया।

प्रियंका शर्मा : साहित्य सृजन के अलावा आपकी अन्य रूचियाँ क्या है?

प्रो. पाण्डेय : टी.वी. पर ताजा घटनाक्रम या फिर केबीसी और धार्मिक सीरियल देखना। खाली समय में प्रकृति से साहचर्य, नदियों, उपवनों, खुले आसमान जैसे प्राकृतिक स्थान पर तन्मय होना जो सर्जना के पास ले जाती है।

प्रियंका शर्मा : विदेशों में संस्कृत की क्या स्थिति है?

प्रो. पाण्डेय : अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों में संस्कृत के अध्ययन की ओर रूझान है। नासा में संस्कृत के अध्ययन के लिए कक्षाएँ लगती है। विश्व के शीर्षस्थ गायक संस्कृत के मन्त्रों, गीतों को संगीत के साथ प्रस्तुति दे रहे हैं।

प्रियंका शर्मा : संस्कृत के पाठ्यक्रमों एवं परीक्षा प्रणाली में क्या–क्या सुधार किये जाये?

प्रो. पाण्डेय : संस्कृत के पाठ्यक्रमों को रोजगार परक एवं शोधपरक बनाना उपयुक्त होगा। परीक्षा प्रणाली में वस्तुपरक प्रश्नों का अधिक समावेश हो तथा जाँच प्रक्रिया कम्प्यूटराईज्ड हो तो बेहतर होगा।

प्रियंका शर्मा : आप संस्कृत के उत्थान के लिए युवा वर्ग को क्या सन्देश देना चाहते है?

प्रो. पाण्डेय : संस्कृत से जुड़ा युवा वर्ग जनमानस को संस्कृत से जोड़ने का पुरजोर प्रयास करें किन्तु प्रचार–प्रसार के समय भाषा–प्रयोग में व्याकरण की शुद्धता बनायें रखना बहुत जरुरी है।

प्रियंका शर्मा : आपकी भावि योजनाओं के बारे में बताये?

प्रो. पाण्डेय : भावि योजनाओं में राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा पर शतक के रूप में खण्ड काव्य की योजना जारी है। वर्ण–वाग्विलास खण्ड काव्य की रचना–इस काव्य के अन्तर्गत दो उपजाति (युग्मक) में सम्पूर्ण वर्णमाला पंचमाक्षर सहित प्रयोग किया गया है।

≈≈≈≈

प्रकाशित शोध–पत्र

क्र. सं.	शोध–पत्र का शीर्षक	प्रकाशन वर्ष	शोध–पत्रिका / पुस्तक का नाम	ISSN NO.	संस्करण	राष्ट्रीय / अन्तर्राष्ट्रीय
01.	डॉ. तारा शंकर शर्मा (पाण्डेय) की कृतियों में सामाजिक चेतना	2019	जे. ई. टी. आई. आर.	2349–5162	हिन्दी विशेषांक Volume-VI Issue-6 जून 2019	अन्तर्राष्ट्रीय
02.	प्रो. डॉ. ताराशंकर शर्मा (पाण्डेय) की कृतियों का महिला सशक्तिकरण में योगदान	2019	कला समय	2581-446X	हिन्दी विशेषांक वर्ष–2 अंक 6, जून–जुलाई 2019	अन्तर्राष्ट्रीय

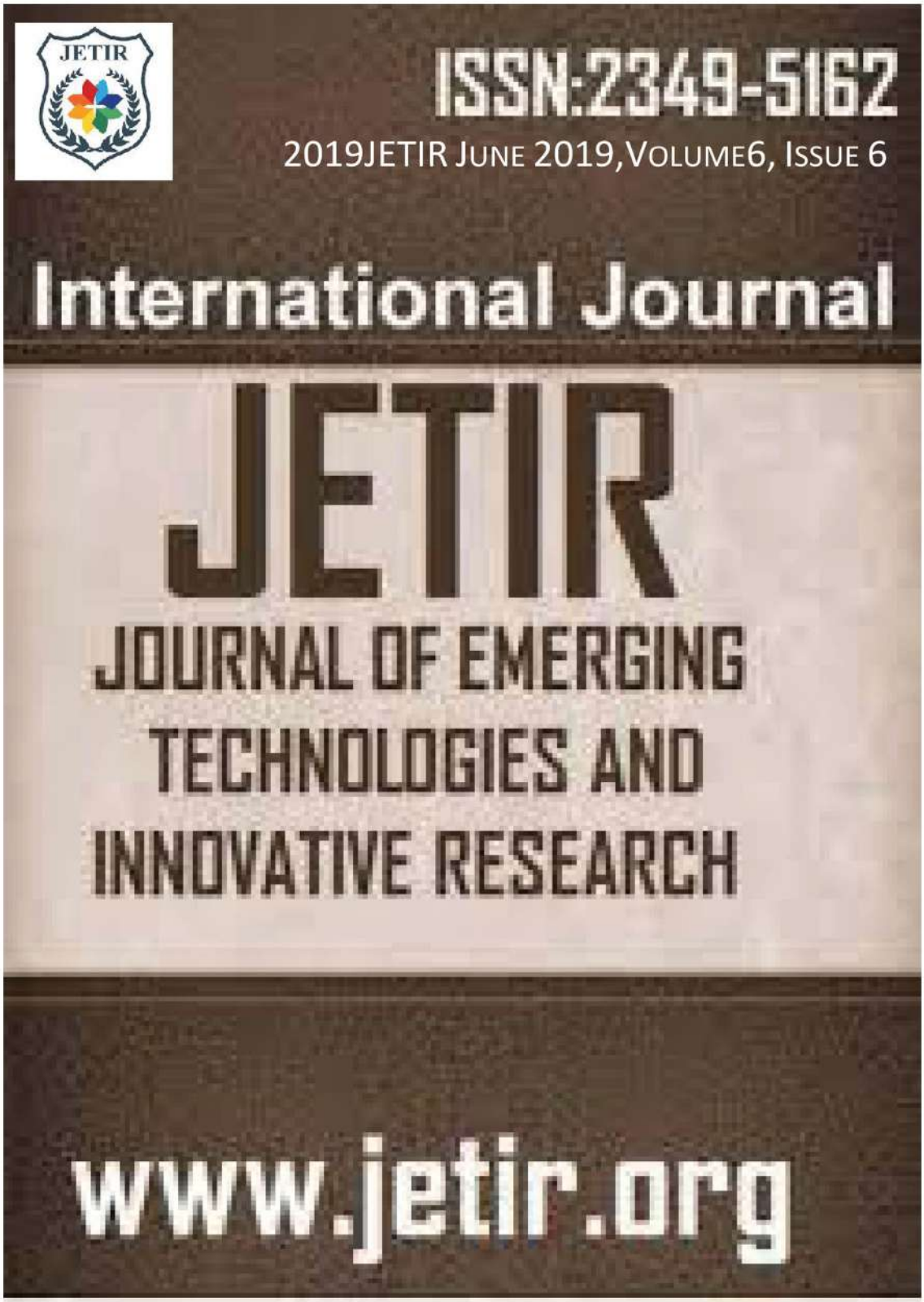

JETIR
ISSN:2349-5162
2019JETIR JUNE 2019,VOLUME6, ISSUE 6
International Journal
JETIR
JOURNAL OF EMERGING
TECHNOLOGIES AND
INNOVATIVE RESEARCH
www.jetir.org

International Journal

JETIR

JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH

INDEX

S.NO.	Title	Author Name	Page No.
1	Quantifying the Spatio-temporal Dynamics of Irrigated Agriculture in Thar Desert Using Time Series of MODIS Imageries	Rajesh bhakar, Rahul	1-4
2	Analysis of Annular Combustion Chamber of Jet Engine with Varying Air Inlet Velocity with Methane as Fuel	A Vamsi Krishna, Z Triveni	5-7
3	Adaptive Routing Protocol Analysis And Performance Evaluation In IPv6	Aditya Vaibhav Naik, Onkar Vilas Kolate, Omkar Somnath Kokane, Dr.S.B.Dhonde	8-10
4	"DR.BABU JAGAJIVAN RAM ROLE IN THE MAKING OF MODERN INDIA"	HARISH KUMAR	11-13
5	Social Reformation, Love and Feminine Virtuosity in the Novel 'The Immortals of Meluha' by Amish Tripathi	Dr.B.Chandana	14-16
6	Design & Development of Bio-Digester for Remote Location Adampur Chhawni	Manish Baweja, Dr. Prashant Baredar, Dr. R. R. Lal	16-18
7	Dr. Tarashankar Sharma(Panday) Ki Kratiyon Me Samajeik Chetana	Priyanka Sharma	19-23
8	Android Based Intelligent Irrigation System with Crop Selection	Venkatesh Jalnapure, Sachin Kokane, Samruddhi Kolekar	24-27
9	Analysis of Scheduling Algorithm in WiMAX Network	Sriramya M S, Surbhi Pathak, Samreen Irfan, Sphoorti S b, Ravishankar H	28-30
10	Critical Appreciation of Scientific Techniques for Assessment of Bricks made out of overburden mining waste	Navneet Kumar, A.K.Gautam	31-33
11	Natak Mein Rang Tatv	Renu Kukreti	34-38
12	Smart Camera System Using Machine Learning	siddharth sandbhor, Saurabh Solkar	38-40
13	Anti Theft Alarm System for forest trees using WSN	Pooja M, Rakshitha S, Sanjana A Maney, Shashi Ottikunta, Sangeetha V	41-43

डॉ. ताराशंकर शर्मा (पाण्डेय) की कृतियों में सामाजिक चेतना

प्रस्तौता–प्रियंका शर्मा
शोधार्थी– संस्कृत
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

मानव–समाज व समस्याएँ दोनों एक दूसरे से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। जहाँ–जहाँ मानव समाज है। वहाँ–वहाँ समस्याएँ भी है। वे अविच्छिन्न है अतः समाज और समस्याएँ दोनों एक ही सिक्के दो पहलू है। समाज के जन्म के साथ–साथ समस्याऐं भी प्रादूर्भूत होती है जो धीरे–धीरे विकसित होकर बाद में उग्र रूपधारण कर लेती है और उसके चिन्तन, विचार, क्रियाकलापों और कार्य करने के तौर–तरीकों में कुछ इस प्रकार समाहित हो जाती है कि व्यक्ति इन समस्याओं की कठपुतली बनकर रह जाता है। ये समस्याऐं शाश्वत् है क्योंकि प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे अवांछनीय व्यक्ति भी होते है जो जानबूझकर, लालचवश, अज्ञानवश अथवा परिस्थितियों के कारण ऐसा व्यवहार कर बैठते है, जो समाज के अन्य लोगों के प्रतिकूल अर्थात् उनके लिए हानिकारक अथवा घातक हो सकता है।

समाज में उत्पन्न ऐसी ही समस्याऐं 'सामाजिक समस्याओं' के नाम से जानी जाती है। मानव समाज कभी भी इन समस्याओं से पूर्णतः मुक्त नहीं रहा, किसी न किसी रूप में समस्याऐं समाज को प्रभावति करती रही है और यह प्रक्रिया आज भी जारी है। विश्व का प्रत्येक राष्ट्र नानाविध भयंकर सामाजिक समस्याओं से त्रस्त है।

भारत में अनेकों सामाजिक समस्याऐं अपना कुप्रभाव दिखाकर उसे अवनति की ओर उन्मुख कर रही है। जो चिन्ता का विषय है। ऐसी परिस्थितियों में भी देश में वर्तमान सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक रहकर उसके निवारण के लिए यथासामर्थ्य प्रयत्न करना प्रत्येक नागरिक का परम कर्त्तव्य है।

काव्य कवि की मानसिक शक्तियों के विकास की व्याख्या तक ही सीमित नहीं होता, वह इससे भी आगे बढ़ता है। जिस प्रकार वह अपने चतुर्दिक फैली प्रकृति में अपने मनोवेगों का स्पन्दन देखता है। उसी प्रकार अपने चारों और घिरे समाज में वह जीवन के सुख–दुख का इतिहास पढ़ता है। कवि चिन्तन करते–करते ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है। कि उसका जीवन समाज के जीवन का अभिन्न अंग बन जाता है।

नर और नारी एक दूसरे के पूरक हैं। भारतीय समाज में आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत गृहस्थाश्रम की अवस्था ही इसके सर्वथा उपयुक्त है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि अन्य तीनों आश्रमों की समुचित स्थिति इसी पर निर्भर हैं–

ब्रह्मचारी गृहस्थ श्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः।।
सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिधिधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्ति हि।।[1]

इसी प्रकार जिस समय कवि अपने काव्य की रचना करता है, उस समय में होने वाली घटनाओं, विचारों, भावनाओं, वातावरण की झलक उसके काव्य में अवश्य दिखाई देती है। अतः डॉ. पाण्डेय भी सम्प्रति समाज में व्याप्त निर्धनता, बेरोजगारी, यौतुक प्रथा आदि वर्तमान समय की कई समस्याओं के प्रति जागरूक एवं संवेदनशील है। उन्होंने अपनी सरस कृति 'सारस्वत सौरभम्' के अन्तर्गत संकलित कविताओं व कथाओं के माध्यम से सहृदय सामाजिकों का ध्यान इन समस्याओं के प्रति आकृष्ट किया है। कोऽयं तस्या अपराधः? किं नामधेयं यौतकम्?, आक्षेपः कस्मिन्?, उदरस्य कृते, आम्रपाली, परिवर्तनम् आदि ऐसी रचनाएँ है जिनमें इन सामाजिक समस्याओं का वर्तमान रूप व उनके दुष्परिणामों को उल्लेखित कर देशवासियों को इनके समूलोन्मूलन के लिए समुत्प्रेरित किया गया है।

अतः सामाजिक समस्या समाज में विद्यमान एक ऐसी कष्टप्रद दशा है जो न केवल व्यक्ति अपितु सम्पूर्ण समाज के लिए हानिकारक होती है, क्योंकि सामाजिक मूल्यों, आदर्शों और नैतिकताओं आदि के प्रतिकूल होती है तथा समाज की उन्नति में बाधक होती है। डॉ. पाण्डेय ने यौतुक प्रथा, स्त्री–पुरुष भेद, बेरोजगारी, निर्धनता, नारी अवमानना आदि सामाजिक समस्याओं का वर्णन किया है।

भारतीय संस्कृति में विवाह को एक आध्यात्मिक कर्म, दो आत्माओं का मिलन, पवित्र धार्मिक संस्कार और मानव जीवन का अनिवार्य अंग माना जाता है। मनु ने तीनों आश्रमों में श्रेष्ठ आश्रम गृहस्थाश्रम को माना है। जिसका आरम्भ

विवाह संस्कार द्वारा होता है। भारतीय संस्कृति में कहा गया है कि स्त्री–पुरुष का पारस्परिक सम्बन्ध तो उनके जन्म लेने से पूर्व ही निश्चित हो जाता है अतः विवाह मानव जीवन को ईश्वर प्रदत्त अनमोल देन है किन्तु वर्तमान समाज में लोगों में निरन्तर बढ़ रही अर्थलोलुपता तथा विलासी प्रवृति ने इस पावन धार्मिक परम्परा को भी कलुषित कर दिया है। इस कुप्रथा के कारण कभी जो नारी देवतातुल्य पूजनीय मानी जाती थी आज धन के लोभ में आकर अनेक अपशब्द संज्ञाओं से अभिहित कर प्रताड़ित की जा रही है। 'यौतुक प्रथा' कौढ़ की तरह समाज में फैलती जा रही है। जिसके भयंकर दुष्परिणाम सामने आ रहे है। कवि प्रश्नानुप्रश्न की शैली में 'दहेज' जैसी विकट समस्या पर व्यंग्यात्मक शैली में प्रश्न उठाते हुए कहते हैं कि–

"किं नामधेयं यौतकम्?
किं नित्योपयोगि वस्तु
गेहे तव पूर्वमस्तु।
नास्ति चेत् कुरु प्रयत्नं
पौरुषं किं ते सपत्नम्?।।"
सत्यम्! तर्हि तव भिक्षः
अथवा कारयाऽऽत्मनोऽपि यौतवम्।
किं नामधेयं यौतकम्?

कवि यहाँ नारी उत्पीड़न से व्यथित होकर समाज के समक्ष अनेक जीवन्त प्रश्नों को उपस्थित कर सामाजिक चेतना जाग्रत करना चाहते है। वे कहते हैं कि नारी का मूल्यांकन उसके गुणों के आधार पर किया जाता है। न कि दहेज से, उनकी दृष्टि में दहेज युक्त किन्तु निर्गुण नारी सर्वथा है। यथा–

"लज्जाऽऽभरण–भूषिता
प्रसन्ना भवेद् भूषिता।
गुरुशुश्रूषाऽऽ–चरणा
कान्तानुसारिचरणा।।
एवं गुणगयग्रथिता नास्ति चेत्
व्यर्थ ते सयौतकं यौवतम्।
किं नामधेयं यौतकम्?"

यौतुक प्रथा पर प्रश्न उठाने वाली 'परकीय धनम्' मुक्तक कविता में कवि ने यौतुक की तुलना राक्षस से की है–**'यौतुकमातुधानैर्विहितदुर्दशं तद्धनं।'**

कवि वर्तमान परिवेश में व्याप्त 'यौतुकप्रथा' के कारण नारी दुर्दशा पर चिन्ता व्यक्त करते हुए 'परकीयधनम्' कविता के माध्यम से समाज को यह सन्देश प्रदान कर जागरुकता उत्पन्न करना चाहते है। कि किसी भी सामाजिक को अपनी पुत्री को परकीय धन के रूप में प्रदान करने से पहले दहेज रूपी राक्षस पर भलीभाँति विचार कर लेना चाहिए तथा अत्यन्त सोच विचारपूर्वक ही कन्या रूपी धन को परकीय धन के रूप में प्रदान करना चाहिए। यथा–

"तत्पुनः
गृहस्थः/सामाजिक प्राणी
परकीयं किन्तु ममत्वेन नैजं
यौतुकयातुधानैर्विहितदुर्दश तत्रृनं
विलोक्य तादृशं दुःखमनुभवति
यस्यानुमानं तु ज्ञानी कण्वोऽपि कर्तुं नैव पारयति स्म।
परन्तु सावधानमनसो भवन्तु ते
ममत्वप्रदातृ परकीयं धनं।।"

समाज में बढ़ती हुई विसंगतियों को उठाते हुए समाज में स्त्री की दुर्दशा को देखकर कवि हृदय पुकारता है कि 'कोऽयं तस्या अपराधः।' हमारे समाज में यदि आज भी किसी नववधू के गर्भ से निरन्तर ही कन्या संतति उत्पन्न होती है

तो उसका घर एवं समाज में तिरस्कार होता है यहाँ तक कि उसे अनगिनत यातनाएँ दी जाती है। अतः कवि समाज के इस अपराध से दुःखित होते हुए समाज से प्रश्न करता है कि इसमें उसका क्या अपराध है–

"पुत्रं यदि सा न सूते
बालिकाततिꣳच तनुते।
भाग्याधीना किं कुरुते
तदपि सापराधां मनुषे।।
तदा त्यर्थ तवाक्षेपः, मार्गो नियतेरबाधः।
कोऽयं तस्या अपराधः?"

स्त्री–पुरुष के भेद के कारण वर्तमान में मनुष्य शिक्षित होते हुए भी अपने आपको कन्या–भ्रूण हत्या रूपी पाप के दलदल में धकेलता जा रहा है इस तरह के कुकृत्य ने सम्पूर्ण मानव जाति को कलंकित कर दिया है। ऐसा कलंक जो मानव के दुष्कृत्यों तथा अन्याय की पराकाष्ठा का सूचक है। कन्या भ्रूण हत्या के लिये भी 'दहेज प्रथा' जैसी सामान्य बुराई को उत्तरदायी माना जा सकता है। क्योंकि गरीब माता–पिता दहेज देने के भय से कन्या के जन्म को अपशकुन समझने लगते है और उन्हें जन्म के पूर्व ही कोख में ही समाप्त कर दिया जाता है।

नारी होने के बाद ही उसे सौभाग्य अर्थात् स्वस्थ पति का साहचर्य प्राप्त होता है और वह 'पत्नी' पद प्राप्त करती है। यह पत्नी यदि पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाते हुए दोनों ही सहधर्मिता बनाये रखे तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप समस्त पुरुषार्थ चतुष्टयी का फल सहज सुलभ हो जाता है, अत एव पुरुष का घर पत्नी से ही होता है–

पत्नीमूलं गृहं पुंसां यदिच्छन्दानुवर्तिनी।
तया धर्मार्थकामानां त्रिवर्गफलमश्नुते।।[2]

स्कन्दपुराण में भी मिलता है जिसमें गृहस्थ के सम्पूर्ण सुख का आधार भार्या को बतलाया गया है–

भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च।
भार्या धर्मफलावाप्त्यै भार्या सन्तानवृद्धये।।[3]

जन्मदाता और पालनकर्ता जनक और पिता श्रेष्ठ है, परन्तु अन्नदाता पिता उससे भी श्रेष्ठ है, इन सबसे सौ गुना श्रेष्ठ माता है क्योंकि वह गर्भधारण करने के साथ ही पोषण भी करती है–

जनको जन्मदातृत्वात् पालनाच्च पिता स्मृतः।
गरीयान् जन्मदातुश्च योऽन्नदाता पिता मुने।।
तयोः शतगुणे माता पूज्या मान्या च वन्दिता।
गर्भधारणपोषाभ्यां सा च ताभ्यां गरीयसी।।[4]

समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर अपने पति के साथ पोते–पोतियों और नाते–नातियों के साथ आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करती हुई नारी धन्य है–

क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे।[5]

नारी स्वभाव से सहनशील होती है। आरम्भ में वह ही प्रसव पीड़ा को सहन करती है। अन्त में भी अपने ऊपर अत्याचारों को सहन करती है। इसी भाव से व्यथित डॉ. पाण्डेय ने कहा है कि ग्राम से नगर तक नारी के प्रति जो सम्मान और आदर्श होना चाहिए वह उसे सुलभ नहीं है। पुत्र देने वाली नारी का सम्मान है और कन्या सन्तान वाली का अपमान है यह विसंगति समाज के लिए कोढ़ है। सभ्य समाज भी इस कदाचरण से अछूता नहीं है। अतः कवि ने एक ओर जहाँ समाज में नारी की अवमानना का चित्रण किया है तो दूसरी ओर कन्या संतति भी पुत्र के समान ही कल्याणकारी है यह कहकर पुत्र व पुत्री दोनों को समान समझने का संदेश प्रदान कर समाज में जागरुकता लाने का प्रयास किया है यथा–

"अग्रिमा नास्ति किमद्य नारी
नर एवं किं कल्याणकारी।
बालिकापि धत्ते पुत्रसाम्यं
मोदस्व तवेदं महद्भाग्यम्।।"

स्त्री–पुरुष को समान समझने का सन्देश प्रदान कर अंत में कवि ने राष्ट्रहित में 'परिवारकल्याण' सीमित परिवार को अपनाने का सन्देश प्रदान करते हुए कहा है कि–

"तत्स्वीकुरु निरोधम्, क्व वा रोधः विधेरब्धिरगाधः।
कोऽयं तस्या अपराधः?"[6]

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने न केवल मुक्तक कविताओं के माध्यम से अपितु कथा के माध्यम से भी सामाजिकता का चित्रण कर विविध समस्याओं को जीवन्त रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। 'आम्रपाली' कथा का उद्धेश्य कवि की दृष्टि में समाज में नारी के महत्त्व को स्थापित करते हुए गोरवान्वित करना है। समाज में होने वाले आम्रपाली के अपमान से डॉ. पाण्डेय ने सामान्य नारी की दुर्दशा का चित्रण किया है। सभा में होने वाले आम्रपाली के प्रति निर्णय को सुनकर लेखक का हृदय व्यथित हो जाता है तथा अपने हृदय की आह से वे समाज पर अत्यन्त तीक्ष्ण कटाक्ष करते हैं–

"किदृगश्लीलोऽसामाजिकोऽधार्मिकश्च निर्णयः। स्वयं राष्ट्ररक्षकैरबलैका निरपराधापि नगरवधूर्निर्मापिता, यस्या गुणो दुष्धातोरिव दोषाय कल्पितः।"

प्राचीनकाल में निरपराध होते हुए भी अबला नारी पर जो अत्याचार किए जाते थे वे आज भी शिक्षित समाज में उसी रूप में बने हुए है अतः समाज की इस अवस्था से दुःखित होकर डॉ. पाण्डेय नारी दशा के उत्थान के लिए समाज को जागरूक बनाना चाहते है। 'आम्रपाली नगरवधू होते हुए भी राष्ट्र सम्पदा थी' इस वक्तव्य के माध्यम से लेखक ने सामाजिक दृष्टि व नायिका के व्यक्तित्व को नए प्रतिमान दिए है। साथ ही समाज में नारी की महत्ता को गौरवान्वित कर समाज में नारी उत्थान के प्रति चेतना जागृत करते हुए समाज में स्त्री के प्रति जो पूजनीय भाव होना चाहिए उसे सत्य रूप में प्रतिष्ठापित किया है।

नारी उत्थान के प्रति अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को चेतना प्रदान करने के पश्चात डॉ. पाण्डेय ने समाज में अपने पैर मजबूती से जमाने वाली अन्य समस्याओं के विषय में भी पाठकों को अवगत कराते हुए सामाजिकों को जाग्रत करने का प्रयास किया है। 'परिवर्तनम्' कथा के द्वारा प्रो. पाण्डेय ने वर्तमान सामाजिक परिवेश की सत्यता को अतिसहजता के साथ यथार्थ रूप में चित्रित किया है। नई पीढ़ी आज भी हमारे समाज में अपने बुजुर्गों की उपेक्षा कर रही है, यह बुराई समाज में दिनोंदिन बढ़ती जा रही है जो अत्यधिक निन्दनीय है। जबकि हमारा समाज प्रारम्भकाल से ही वृद्धोपसेविनी रहा है जैसा कि मनुस्मृति में महाराज मनु ने लिखा है कि–

"अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलं।।"[7]

डॉ. पाण्डेय नवीन पीढ़ी में पुनः इसी भाव को जाग्रत करना चाहते है तथा समाज में वृद्धों को पुनः उसी प्रतिष्ठित पद पर देखना चाहते है जिसकी सत्यता मनु ने प्रतिपादित की है। अतः वर्तमान पीढ़ी को वृद्धों की सेवा के प्रति जागरुक होना चाहिए। समाज में व्याप्त बेरोजगारी जैसी विकराल समस्या के प्रति भी डॉ. पाण्डेय ने समाज को चेतनता प्रदान करने का प्रयास करते हुए 'आक्षेपः कस्मिन्?' कविता के माध्यम से व्यंग्यात्मक शैली में प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। भारत में बेरोजगारी की समस्या अपनी चरम सीमा पर है। भारत जैसे समृद्ध राष्ट्र में आज भी बेरोजगारी रूपी पिशाच मजबूती से अपनी जड़े जमाय हुए है यद्यपि सरकार द्वारा बेरोजगारी उन्मूलन हेतु कई योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है तथापि यह समस्या अभी भी विकट रूप में विद्यमान है। बेरोजगारी जैसी विकाराल समस्या से जूझते हुए नवयुवक के अन्तर्द्वन्द्व को परिभाषित करते हुए डॉ. पाण्डेय कहते है कि अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति किए बिना गृहस्थ का सम्मान भी शेष नहीं रह पाता, व्यक्ति हरपल आजीविका की तलाश में भटकता रहता है। किसे बुरा कहे या किस पर आरोप मढ़े यथा–

"विवशः सः,
गृहे पत्न्या परिभाषणापेक्षया,
अधिकारिणः प्रलाप श्रोतुम्।
पश्यति गृहे दर्पणे, यत्र विलोक्यते
विलपन् पृथुकः, दुग्धबिन्दुप्राप्त्यै।
न कदाचिदपि मिलति
निजस्य नियतकर्मणः

आक्षेपः कस्मिन्
कार्यालये
अथवा पृथुकः?"[8]

यहाँ भी कवि अन्त में प्रश्न उपस्थित करते हुए इस सामाजिक समस्या के प्रति लोगों में चेतनता उत्पन्न करना चाहते है।

बेरोजगारी के कारण गरीबी व अमीरी के बीच की दूरी ओर अधिक बढ़ती जा रही है। लक्ष्मी निर्धनों का उपहास करती हुई धनिकों के पास संचित होती जा रही है जिससे उच्च व निम्न वर्ग में और अधिक अन्तराल आता जा रहा है। जो सामाजिक विसंगतियों का प्रधान कारण है। क्योंकि समाज में अर्थ की प्रधानता को कौन नहीं जानता? आज का युग अर्थप्रधान युग है सभी अर्थातुर है तथा जिसके पास धन है वही व्यक्ति गुणवान् व विद्वान् है। जैसा कि नीतिशतक में भर्तृहरि ने भी कहा है कि–

"यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते।।"[9]

लक्ष्मी अपनी विपरीत प्रकृति के कारण धनिकों के पास ही संचित हो रही है तथा निर्धन वर्ग विविध समस्याओं से जूझने पर भी निर्धन ही बने हुए है। इससे समाज में जो अन्तराल आ रहा है वह राष्ट्र की सामाजिक दशा के लि अभिशाप है। अतः यहाँ कवि ने 'अन्तरालः' कविता के माध्यम से लक्ष्मी की विपरीत प्रवृत्ति का वर्णन करते हुए समाज में व्याप्त निम्न वर्ग की दयनीय दशा का चित्रण किया है साथ ही लोगों को इस समस्या के प्रति जागरूक किया है। यथा–

"फलतो लक्ष्मीः
दरिद्राणां प्रसन्नतां विलोक्य
तद्भाग्योपरि हसन्ती
धनिकानामन्धकारपूर्णेषु तलगृहेषु संस्थाय
धनिकतादरिद्रतान्तरालं गभीरीकरोति।"

अन्ततः हम कह सकते हैं कि डॉ. पाण्डेय ने 'सरस्वतसौरभम्' में वर्तमान समाज में व्याप्त विविध समसामयिक समस्याओं यथा यौतुक प्रथा, स्त्री–पुरुष भेद, बेरोजगारी, नारी उत्पीड़न, उच्च व निम्न वर्ग के बीच बढ़ता अन्तराल आदि को अपनी लेखनी का आधार बनाकर उन समस्याओं के प्रति लोगों में चेतनता उत्पन्न करने का प्रयास किया है। विविध सामाजिक समस्याओं की वेदनाओं से त्रस्त कवि ने सामाजिकों के समक्ष अनेक जीवन्त प्रश्नों को प्रस्तुत किया है। जो अनुत्तरित है, जिनके द्वारा लेखक समाज में जागृति उत्पन्न करना चाहते है तथा भारतीय समाज को एक आदर्श समाज के रूप में स्थापित करना चाहते है। लेखक ने सामाजिकों के समक्ष जो प्रश्न उपस्थित किए है वे अनुत्तरित है, बौद्धिक चेतना ही इस जागरण को मूर्त्त रूप दे सकती है।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. मनु स्मृति, पृ.सं. 6/87/89
2. दक्षस्मृति
3. काशीखण्ड, 4/67
4. ब्रह्मवैवर्तपु., पृ.–40
5. ऋग्वेद, 10/85/42
6. सारस्वतसौरभम्, पृ.–36
7. मनुस्मृति
8. सारस्वतसौरभम्, पृ.–37
9. नीतिशतक

1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-2, अंक-6, जून - जूलाई 2019 ₹ 25/-

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

विशेष : संसार का पहला नाटक...

राधावल्लभ त्रिपाठी

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

शोध पत्र

प्रो. डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' की कृतियों का

महिला सशक्तिकरण में योगदान

शोधार्थी प्रियंका शर्मा

डॉ. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' की कृति 'सारस्वत-सौरभम्' 'किं चतुष्कम्' खण्ड चार मुक्तक कविताओं में डॉ. पाण्डेय ने समसामयिक बिन्दुओं का स्पर्श किया है। शनैः शनैः कवि हृदय ने जैसे-जैसे समाज को निकट से देखा वैसे ही उसे समाज की अनेक विकृतियाँ झकझोरने लगी। समाज में बढ़ती हुई विसंगतियों के उठाते हुए समाज में स्त्री की दुर्दशा को देखकर कवि हृदय व्यथित होकर व्यंग्यात्मक शैली में समाज से अनेक प्रश्न करता है।

विवाह मानव जीवन को ईश्वर प्रदत्त अनमोल देन है। किन्तु वर्तमान समाज में लोगों में निरन्तर बढ़ रही अर्थलोलुपता तथा विलासी प्रवृत्ति ने इस पावन व धार्मिक परम्परा को भी कलुषित कर दिया है। इस कुप्रथा के कारण कभी जो नारी देवता तुल्य पूजनीय मानी जाती थी, आज के धन के लोभ में आकर अनेक अपशब्द, संज्ञाओं से अभिहित कर प्रताड़ित की जा रही है। 'यौतुक-प्रथा' कौढ़ की तरह समाज में फैलती जा रही है। जिसके भयंकर दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं। कवि प्रश्नानुप्रश्न की शैली में 'दहेज' जैसी विकट समस्या पर व्यंग्यात्मक शैली में प्रश्न उठाते हुए कहता है-

'किं नामधेयं यौतकम्
किं नित्योपयोगि वस्तु
गेहे तव पूर्वमस्तु।
नास्ति चेत् कुरु प्रयत्नं
पौरुषं किं ते सपत्नम्।।'[1]

नर-नारी एक पूर्ण के दो अंश है अतः जब तक दोनों का समन्वय, संयोग नहीं होता तब तक सृष्टि का विस्तार असम्भव है। इनमें भी नर की पूरयित्री नारी है जिसे जाया की संज्ञा दी गई है-

यावन्न विन्दते जायां तावदर्धो भवेत् पुमान।[2]

पुरुष आधा है और उस पुरुष का परार्ध है जाया, जिसे शतपथ ब्राह्मण का वचन सिद्ध करता है-

अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जायेति।[3]

'आत्मा वै जायते पुत्रः' कहा गया है। पुरुष के इस प्रकार पुनः उत्पन्न होने पर ही जाया का जायात्व सिद्ध होता है ऐतरेय ब्राह्मण में जाया शब्द को इस प्रकार व्युत्पन्न किया गया है-

तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः।[4]

महर्षि मनु ने इस जाया शब्द की व्युत्पत्ति को और भी अधिक स्पष्ट किया है कि पति भार्या में पुत्ररूप में उत्पन्न हो तभी जाया जाया कहलाती है।

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः।।[5]

यौतुक प्रथा पर प्रश्न उठाने वाली 'परकीयधनम्' मुक्तक कविता में कवि ने यौतुक की तुलना राक्षस से की है-

'यौतुकयातुधानैर्विहितदुर्दशं तद्धनं'।[3]

कवि वर्तमान परिवेश में व्याप्त 'यौतुकप्रथा' के कारण नारी दुर्दशा पर चिन्ता व्यक्त करते हुए 'परकीय धनम्' कविता के माध्यम से समाज को यह सन्देश प्रदान कर जागरूकता उत्पन्न करना चाहते हैं कि किसी भी सामाजिक को अपनी पुत्री को परकीय धन के रूप में प्रदान करने से पहले दहेज रूपी राक्षस पर भलीभांति विचार कर लेना चाहिए तथा अत्यन्त सोचविचार पूर्वक ही कन्या रूपी धन को परकीय धन के रूप में प्रदान करना चाहिए।

'तत्पुनः
गृहस्थः/सामाजिक प्राणी
परकीयं किन्तु ममत्वेन नैजं
यौतुकयातुधानै र्विहित दुर्दशं तद्धनं
विलोक्य तादृशं दुःखमनुभवति
यस्यानुमानं तु ज्ञानी कण्वोऽपि कर्तु न पारयतिस्म
परन्तु सावधान मनसो भवन्तु ते
ममत्वप्रदातृ परकीयं धनम्।

समाज में बढ़ती हुई विसगतियायें को उठाते हुए समाज में स्त्री की दुर्दशा को देखकर कवि हृदय पुकारता है कि 'कोऽयं तस्य अपराध:'। हमारे समाज में यदि आज भी किसी नववधू के गर्भ से निरन्तर ही कन्या सन्तति उत्पन्न होती है तो उसका घर एवं समाज में तिरस्कार होता है। यहाँ तक कि उसे अनगिनत यातनाएँ दी जाती है। अत: कवि समाज के इस अपराध से दु:खित होते हुए समाज से प्रश्न करता है कि इसमें उसका क्या अपराध है-

'पुत्रं यदि सा न सूते
बालिकाततिं×च तनूते
भग्याधीना किं कुरुते
तदपि सापराधां मनुषे।।
तदा व्यर्थ तवाक्षेप: मागों नियतेरबाधा
कोऽयं तस्या अपराध: ?

स्त्री-पुरुष के भेद के कारण वर्तमान में मनुष्य शिक्षित होते हुए भी अपने आपको कन्या-भ्रूण हत्या रूपी पाप के दलदल में धकेलता जा रहा है। इस तरह के कुकृत्य ने सम्पूर्ण मानव जाति को कलंकित कर दिया है। ऐसा कलंक जो मानव के दुष्कृत्यों तथा अन्याय की पराकाष्ठा का सूचक है। कन्या-भ्रूण हत्या के लिए भी 'दहेज प्रथा' जैसी सामान्य बुराई को उत्तरदायी माना जा सकता है। क्योंकि गरीब माता-पिता दहेज देने के भय से कन्या के जन्म को अपशकुन समझने लगते हैं और उन्हें जन्म से पूर्व ही कोख में समाप्त कर दिया जाता है।

जाया शब्द के माध्यम से नारी की महिमा वेदों में यत्र तत्र देखने को मिलती है-

जायेदस्तं मघवन् त्सेदुयोनि:।
कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते।।[6]

जहाँ पहले सामाजिक जीवन में नारी के विषय में कहा जाता था कि 'नाना नार्या निष्फला लोकयात्रा' अर्थात् नारी के बिना लोक यात्रा निष्फल है उसी आदर्श की मूर्ति नारी का वर्तमान समाज में जो अपमान हो रहा है। वह निश्चय ही निन्दनीय है। जीवन संघर्षों में परिपातित व आपदाओं की अग्नि में तापित नारी जीवन की कहानी मैथलीशरणगुप्त जी के शब्दों में यूँ व्यक्त करते हैं-

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखों में है पानी।।'

प्रसाद जी ने नारी की सुन्दर अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है-

'यह आज समझ तो पायी हूँ,
मैं दुर्बलता की नारी हूँ।
अवयव की सुन्दर कोमलता,
लेकर मैं सबसे हारी हूँ।

नारी स्वभाव से सहनशील होती है। आरम्भ में वह ही प्रसव पीड़ा को सहन करती है अन्त में भी अपने ऊपर अत्याचारों को सहन करती है। इसी भाव से व्यथित डॉ. पाण्डेय ने कहा है कि ग्राम से नगर तक नारी के प्रति जो सम्मान और आदर्श होना चाहिए वह उसे सुलभ

नहीं है। पुत्र देने वाली नारी का सम्मान है और कन्या सन्तति वाली का अपमान है। यह विसंगति समाज के लिए कौढ़ है। सभ्य समाज भी इस कदाचरण से अछूता नहीं है। अत: कवि ने एक ओर जहाँ समाज में नारी की अवमानना का चित्रण किया है तो दूसरी ओर कन्या सन्तति भी पुत्र के समान ही कल्याणकारी है यह कहकर पुत्र व पुत्री दोनों को समान समझने का संदेश प्रदान कर समाज में जागरूकता लाने का प्रयास किया है यथा-

'अग्रिमा नास्ति किमघ नारी
नर एव किं कल्याणकारी
बालिकाऽपि धत्ते पुत्रं साम्यं
मोदस्व तवेदं महद्भाग्यम्।।[7]

स्त्री-पुरुष को समान समझने का सन्देश प्रदान कर अंत में कवि ने राष्ट्रहित में 'परिवार कल्याण' सीमित परिवार को अपनाने का सन्देश प्रदान करते हुए कहा है कि-

'तत्स्वीकुरु निरोधम्, क्व वा रोध: विधेरध्विरगाध:
कोऽयं तस्या अपराध: ?'

प्राचीनकाल में निरपराध होते हुए भी अबला नारी पर जो अत्याचार किए जाते थे वे आज भी शिक्षित समाज में उसी रूप में बने हुए हैं अत: समाज की इस अवस्था से दु:खित होकर डॉ. पाण्डेय नारी दशा के उत्थान के लिए समाज को जागरूक बनाना चाहते हैं। समाज में नारी की महत्ता को गौरवान्वित कर समाज में नारी उत्थान के प्रति चेतना जागृत करते हुए समाज में स्त्री के प्रति पूजनीय भाव होना चाहिए।

संदर्भ सूची-

1. सारस्वत-सौरभम्, पृ.सं.-35
2. व्यास-संहिता, पृ.सं.-2/14
3. शतपथ ब्राह्मण, 5/2/3/10
4. ऐतरेय ब्राह्मण 7/13
5. मनु स्मृति, 9/8
6. ऋग्वेद, 3/53/4/6
7. सारस्वत-सौरभम्, पृ.सं.-36

- वार्ड नं. 19, मंगरोल, जिला-बारन-325215, मो. 9982491567

■

'कला समय' के संपादक को
दिल्ली का राष्ट्रीय विशिष्ट साहित्यकार सम्मान

2 जुलाई 2019 ''समर्पण भवन'' विकासपुरी नई दिल्ली द्वारा डॉ. निर्मल वालिया के अभिनन्दन ग्रंथ के लोकार्पण समारोह में चैन्सन ग्रैण्ड वेस्टेण्ड होटल जी-6, कम्यूनिटी सेटर पी.वी.आर. विकासपुरी नई दिल्ली के समारोह में देश के विभिन्न राज्यों से पधारे साहित्यकार, सम्पादकों के इस समागम आयोजन में राष्ट्रीय सम्मान समारोह में 'कला समय' पत्रिका के सम्पादक भँवरलाल श्रीवास को राष्ट्रीय विशिष्ट साहित्यकार सम्मान से सम्मानित किया गया। समारोह में मुख्य अतिथि प्रो. सुधा बालकृष्णन, केन्द्रीय विश्वविद्यालय केरल अध्यक्ष, प्रो. विजय महादेव गाडे बाबा साहेब चितले महाविद्यालय मिलड़ी महाराष्ट्र, मुख्य वक्ता प्रो. वृषाली सुभाष मान्द्रेकर गोवा विश्वविद्यालय, गोवा, सारस्वत अतिथि प्रो. मंजु रानी सिंह, विश्वभारती, शांतिनिकेतन, अभिनंदन ग्रंथ संपादक प्रो. अमरसिंह वधान, प्रो. एमरिट्स डी.लिट् चंडीगढ़, कवयित्री एवं लेखिका डॉ. निर्मल वालिया, नई दिल्ली विशेष रूप से उपस्थित थे। मंच संचालन डॉ. रेशमी पांडा मुखर्जी कोलकाता ने किया इस गरिमापूर्ण राष्ट्रीय सम्मान समारोह में सभी विद्वान साहित्यकारों सम्पादकों का शाल, स्मृति चिन्ह, प्रशस्ति पत्र और निर्मल वालिया का अभिनंदन ग्रंथ देकर विशिष्ट साहित्यकार सम्मान से सम्मानित किया गया। इस समारोह में डॉ. निर्मल वालिया का सम्मान भी साहित्यकारों ने किया।

●●●

विश्व रंग का प्रतीक चिन्ह जारी

TAGORE INTERNATIONAL LITERATURE & ARTS FESTIVAL
विश्व रंग

विश्व रंग

टैगोर अंतर्राष्ट्रीय साहित्य एवं कला महोत्सव

हिंदी और भारतीय भाषाओं पर केंद्रित अंतर्राष्ट्रीय साहित्य एवं कला उत्सव. विश्व भर के 30 देशों के 100 से अधिक लेखक, रचनाकार, नाटक, कला एवं फिल्म से जुड़े कलाकार, देशभर में 10,000 से अधिक प्रतिभागी, 50 से अधिक सत्र, नोबल विजेता, बुकर सम्मान विजेता, साहित्य अकादेमी एवं पद्म पुरस्कारों से सम्मानित रचनाकार, विश्वभर से विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर एवं छात्र. टैगोर के कविता, चित्रांकन, कथा एवं नाटक पर केंद्रित पूर्वरंग, वैश्विक और भारतीय भाषाओं के साहित्य पर केंद्रित चार दिन, हिंदी के 600 से अधिक कथा लेखकों को शामिल करते 'कथादेश' का लोकार्पण, पुस्तक एवं कला प्रदर्शनियाँ, नाट्य प्रदर्शन, लोकरंग, पुस्तक यात्रा एवं चुनिंदा पुस्तकों पर चर्चा, राष्ट्रीय वनमाली कथा सम्मान, और भी बहुत कुछ.

रबिंद्रनाथ टैगोर यूनिवर्सिटी का उपक्रम

संपर्क :
संतोष चौबे - choubey@aisect.org
लीलाधर मंडलोई - leeladharmandloi@gmail.com
मुकेश वर्मा - vermamukesh71@gmail.com

कला समय
कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

आगामी
100 वाँ अंक

सांस्कृतिक भूमिका के
सार्थक 22 वर्ष....

निवेदन
आगामी अंक के लिए
अपनी रचनाएँ,
आलेख तथा चित्र
आमंत्रित है...

-सम्पादक